सन्त कवि मीतादास व्यक्तित्व एवं कृतित्व

पी-एच० डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

वर्ष १९८१

निदेशक :

डा० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित'

प्रवक्ता,

प० जवाहरलाल नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय,

बांदा (उ० प्र०)

शोधकर्ता :

गोपाल प्यारे

एम० ए० (हिन्दी, अंग्रेजी)

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय
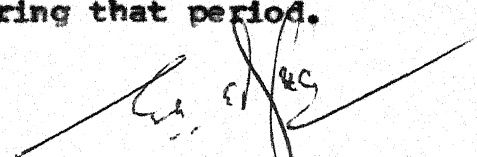
(हिन्दी विभाग)

झांसी

THIS IS CERTIFIED -

(a) that the thesis embodies the work of the candidate himself,

(b) that the candidate worked under him for the period required under ordinance 7 and

(c) that has put in the required attendance in his department during that period.

Dated: 6/12/81

Dr. (Chandrika Pd. Dixit 'Lalit')
Supervisor
Lecturer,
Pt. J.L.Nehru Post-graduate College,
Banda.

आ भा र

` सन्त मीतादास ` जी का काव्य शताब्दियों से उनके सीमित शिष्यों के भजन-भक्ति का ही प्रमुख विषय रहा । उनका वाणी-वचन महत्वपूर्ण रहते हुए भी प्रमुख पात्रता की अनुपलब्धि के कारण जन सामान्य का विषय न बन सका । हमारे गुरु परम पूज्यनीय प्रात: स्मरणीय डा० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित `ललित` ने मुझे उनके सम्पूर्ण कार्य पर शोध करने की प्रेरणा दी । उनकी प्रेरणा स्रोत ही मेरे मन में शोध-कार्य के बीज अंकुरण में सहायक हुआ । गुरु के ऋण से न तो कोई उऋण हुआ है और न होगा । अत: केवल `धन्यवाद` के तुच्छ शब्दो को प्रस्तुत करना उनके साथ अन्याय करना होगा । यह सम्पूर्ण शोध-प्रबन्ध भी उनको समर्पित कर दिया जाय तो भी उनके आशीर्वाद की तुलना में नगण्य होगा ।

प्रगतिवाद के प्रबल समर्थक एवं आधुनिक कविता को नया आयाम देनेवाले डा० रणजीत, रीडर एवं अध्यक्ष, पं० जवाहर लाल नेहरु महाविद्यालय (बांदा) का आशीर्वाद एवं सहयोग शोध कार्य में बहुत सहायक सिद्ध हुआ । उनको धन्यवाद देकर मैं उनके महत्व को क्षीण करने का साहस नहीं कर सकता क्योंकि शिष्य होने के नाते उनका सहयोग पाने का मुझे अधिकार था । डा० (श्रीमती) मनोरमा अग्रवाल एवं प्रो० बी०एन०मिश्र के रूप में हिन्दी और अंग्रेजी का जितना सामिप्य मुझे बांदा में देखने को मिला वैसा सर्वत्र देखने को मन लालायित रहता है । चाहे पिकनिक हो या अध्यापन-कक्ष उनका युगल आशीर्वाद एवं सलाह मेरे शोध में सहायक सिद्ध हुआ । उनको धन्यवाद देकर मैं अपने आप में गर्व का अनुभव कर रहा हूं ।

डा० डी०पी०मिश्र, रीडर एवं अध्यक्ष, बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झांसी का भी आभारी हूं जिन्होंने समय-समय पर अपना अमूल्य समय एवं सलाह देकर शोध-प्रबन्ध पूर्ण होने में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की । पूज्यनीय श्री देवेन्द्र नाथ खरे, प्रवक्ता, डी०ए०वी०कालेज, बांदा के पुत्रत्व स्नेह की

सराहना से मैं इनकार नहीं कर सकता जिन्होंने अपने पुत्र श्री अमिताभ खरे और मुझको अभिन्न समझते हुए सदा अपने आशीर्वाद से हमारी कठिनाइयों को दूर करने का प्रयास किया ।

डा० कान्तिकुमार चतुर्वेदी, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, रामपुर स्नातकोत्तर महाविद्यालय का असीम सहयोग भी भुलाया नहीं जा सकता ।

श्री एस०सी०वर्मा, प्रवर अधीक्षक डाकघर, वाराणसी तथा सरदार गणेश सिंह, उपडाकपाल-मुगलसराय का मैं बहुत आभारी हूं जिनका समय-समय पर असीम सहयोग प्राप्त होने का प्रतिफल ही प्रस्तुत शोध प्रबन्ध है ।

अपने मित्रों - श्री अमिताभ खरे, श्री अशोक दीक्षित, नीरज अग्रवाल, सुनील कुमार, रश्मि दुआ, मोहिनी गोयल, सुषमा निगम के सहयोग को भुलाया नहीं जा सकता जिनका अप्रतिम सहयोग मुझे प्राप्त हुआ ।

शोध प्रबन्ध के पूर्ण होने में मेरे शिष्यों की भी प्रमुख भूमिका रही । चाहे कु० मीनू बंसल का रहस्यमय तथ्यों की दुरूहता का प्रश्न हो या कु० सुमिता चक्रवर्ती की बाल सुलभ चंचलता से युक्त शब्दों के सरलीकरण की व्याख्या सबने शोध प्रबन्ध के दुरूह तथ्यों के अन्वेषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी । अतः वे साधुवाद के पात्र हैं । अपने शिष्य श्री ओमप्रकाश खत्री के सहयोग को मैं भुला नहीं सकता जिसने मीतादास जी के अलिखित पदों को टेप कराने में महत्वपूर्ण सहयोग किया ।

अपनी प्रमुख शिष्या कु० लता शर्मा जिसने मेरे शोध प्रबन्ध को लिपिबद्ध करने में विशेष योगदान किया, सहयोग के लिए धन्यवाद के पात्र हैं ।

मैं अपने परम मित्र श्री गुलाम जिलानी को उनके किये गये सहयोग के निमित्त धन्यवाद देकर मित्रता के बीच औपचारिकता की एक दीवार नहीं खड़ा करना चाहता, क्योंकि एक सच्चे मित्र के कर्तव्य को उन्होंने पूरा किया ।

श्री प्रकाश वैध, अध्यक्ष, बुद्धिजीवी संघ एवं डा० रामधनी प्रसाद,संस्थापक-अध्यक्ष, बुद्धिजीवी संघ भी सहयोग के लिए धन्यवाद के पात्र हैं ।

श्री शत्रुघ्न प्रसाद, आशुलिपिक, प्रवर अधीक्षक, डाकघर-वाराणसी एवं श्री दुलारे राम का शोध-कार्य में सराहनीय सहयोग रहा अन्यथा शोध-प्रबन्ध अर्थ के अभाव में पंगु हो गया होता । वे भी विशेष धन्यवाद के पात्र हैं । श्री मोहन प्रसाद गुप्त, श्री रामचन्द्र चौहान, श्री केदार प्रसाद का सहयोग भुलाया नहीं जा सकता । मात्र धन्यवाद की औपचारिकता उनके सहयोग के तुल्य नहीं है ।

संत मीतादास के वचन-वाणी के मर्मज्ञ संत ठाकुर ज्ञान सिंह एवं उनके शिष्य श्री गुरु प्रसाद श्रीवास्तव मेरे लिए श्रद्धा एवं पूजा के पात्र हैं जिन्होंने मीतादास के ग्रंथों को अध्ययन करने एवं योग के दुरूहतम तथ्यों को सरल बनाने में विशेष सहयोग किया ।

पिता श्री बी०डी० राम चौहान एवं माता श्रीमती श्यामा देवी का आशीर्वाद तथा पत्नी श्रीमती आशालता चौहान की कर्तव्य निष्ठा एवं मधुर प्रेरणा ही शोध प्रबन्ध के पूर्ण होने में अग्रसर रहा । अपने पुत्र-पुत्रियों के असामयिक (मात्र ३ माह के अन्दर) देहावसान होने पर भी कर्तव्य की ओर इंगित करना वास्तव में उनके असीम धैर्य का परिचायक है, वे भी धन्यवाद की पात्रा हैं ।

अन्त में शोध प्रबन्ध के पूरा होते-होते भगवान् को प्यारी होने वाली सात वर्षीय पुत्री `कु० अंजू चौहान` की पवित्र आत्मा की शान्ति की कामना करते हुए, अपने छोटे-छोटे हाथों से पुस्तकों को लाकर देते हुए अविस्मरणीय क्षणों को ध्यान में रखकर उसे धन्यवाद का पात्र घोषित करता हूँ । उसकी मृत्यु के तीन मास पश्चात् उसके छोटे भाई `बाला` की मृत्यु यद्यपि शोध प्रबन्ध में कुछ बाधक बनी लेकिन उसकी किलकारियाँ शोध प्रबन्ध

के पूर्ण होने में प्रेरणा की स्रोत बनी रही । अत: उसकी पवित्र आत्मा धन्यवाद की पात्र है । कुमारी लेखा मुकर्जी एवं श्री अशोक कुमार अम्बष्टा का असीम सहयोग भी शोध प्रबन्ध के पूर्ण होने का एक प्रमुख कारण बना अपितु वे भी धन्यवाद के अधिकारी हैं । चाचा श्री एल०सिंह त्यागी के सहयोग की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती । उनके बताये गये पुस्तकों का निर्देश मेरे मार्ग को सरल बनाने में सहायक हुआ ।

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे अन्तर्राष्ट्रीय विद्वान का वरद हस्त मेरा प्रमुख सहायक बना । जीवन की अन्तिम क्षणों में आशीर्वाद देकर उन्होंने मेरा जो कल्याण किया उसका मैं सदा आभारी रहूंगा । आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का देवतुल्य दर्शन एवं आशीर्वाद तथा प्रेरणा मेरे कार्य को सफल बनाने में पूर्णरूपेण सहायक सिद्ध हुआ अस्तु वे धन्यवाद के सदाम पात्र हैं ।

अन्त में मैं एक बार पुन: अपने परम पूज्यनीय गुरू डा० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित `ललित` का नाम स्मरण कर उन्हें धन्यवाद देता हूं जिनकी प्रेरणा एवं निर्देशन से मुझे बहुत से महान विद्वानों का सहयोग प्राप्त हुआ ।

दिनांक: १० नवम्बर, १९८१ - गोपाल प्यारे -

विषयानुक्रमणिका

प्र थ म   प्र क र ण

(क) व्यक्तित्व का संठन

(ख) जीवन - वृत्त

राजनीतिक स्थिति

मीता दास जी का उदय (१६६०-१७६८ ई०) में हुआ था । इस समय दिल्ली की सल्तनत मुगल सम्राट औरंगजेब के हाथ थी । औरंगजेब यद्यपि अपने शासन के प्रारम्भिककाल में बहुत सशक्त था लेकिन अन्तिम दिनों में उसका शासन शिथिल पड़ता जा रहा था । दुर्गादास राठौर ने राठौरों का नेतृत्व करते हुए बुंदी के दुर्जनसाव हाड़ा के संयोग से मेवाड़ तथा दिल्ली तक मुगल सीमाओं पर आक्रमण कर दिया था । यद्यपि उसने १६६० ई० में अजमेर के राज्यपाल को हरा दिया था लेकिन मारवाड़ के नये बुद्धिमान शक्तिशाली राज्यपाल शुजातखां से उसे सन्धि करनी पड़ी ।[१]

राजपूतों और राठौरों का युद्ध औरंगजेब से १७०१ से १७०७ तक चलता रहा । राजपूत राजा अजीत सिंह ने मारवाड़ पुन: प्राप्त करके अपने को स्वतंत्र शासक घोषित किया । १७०१ में जब जोधपुर का राज्यपाल आजमशाह दुर्गादास को कैदकर मरवाना चाहा तो वह मेवाड़ भाग गया । अजीत सिंह की सहायता से उसने औरंगजेब के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया । औरंगजेब को मजबूर होकर उससे सन्धि करनी पड़ी । परन्तु १७०६ ई० में जब मराठों ने गुजरात पर आक्रमण कर दिया तो अजीत सिंह और दुर्गादास को पुन: मुगलों के विरुद्ध एकत्र होना पड़ा । औरंगजेब की १७०७ में मृत्यु का समाचार सुनकर अजीत सिंह ने मुगल सम्राट के वफादार अधीनस्थ नागौर नरेश हुकुम सिंह को हरा दिया तथा मुगल राज्यपाल पर आक्रमण कर साजोत, पाली तथा मेठा को भी मुगलों से छीनकर १७०७ ई० में उसने अपने आपको मारवाड़ का महाराजा घोषित किया ।[२]

---

[१] डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृष्ठ-६५२ ।

[२] वही, पृष्ठ-६५६ ।

मराठों की दशा भी इस समय शान्त न थी । मराठा लोग गुजरात तथा मालवा पर आक्रमण करके वहां के लोगों को तंग किया करते थे । मराठे मालवा पर प्रथम धावा कृष्णा सावन्त के नेतृत्व में नवम्बर,१६९९ ई० में किये और धामोनी को लेकर लूटपाट की । इसके पश्चात् भी मराठे बरार पर आक्रमण करते रहे तथा स्थानीय जमींदारों के सहयोग से वे खानदेश तथा मालवा को लूटते रहे । मार्च, १७०६ ई० में धनाजी जादव ने गुजरात में प्रवेश करके मुग़लों की सेना के दो दस्तों को हराकर दो सेनानायकों सफदरखां और नजरअली खां को कैद कर लिया ।[1]

बुन्देलखण्ड की राजनीतिक स्थिति भी शान्त न थी । औरंगजेब की धार्मिक असहिष्णुता की नीति से तंग आकर बुन्देलखण्ड की जनता ने राजा छत्रसाल का स्वागत किया एवं उसे बुन्देलखण्ड का राजा निर्वाचित किया । कुछ ही वर्षों में छत्रसाल ने कालिंजर और धामिनी पर अधिकार प्राप्त कर लिया और समस्त मालवा को ध्वस्त कर दिया । १७०५ ई० में विवश होकर औरंगजेब को छत्रसाल से सन्धि करनी पड़ी लेकिन १७०७ में औरंगजेब की मृत्यु हो जाने पर छत्रसाल ने अपने को स्वतंत्र राजा घोषित किया ।[2]

औरंगजेब से मराठों की स्वतंत्रता का युद्ध १६८९-१७०७ तक चलता रहा । १६८९ में शिवाजी के दामाद शंभाजी के मृत्योपरान्त राजाराम ने जिन्जी प्रदेश पर अधिकार कर लिया परन्तु १६९० ई० में सितम्बर के मध्य में जुल्फिकार खां ने उसे वहां पर घेर लिया । यह घेरा १२ जनवरी,१६९८ तक

---

[1] डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृष्ठ-५७० ।

[2] वही, पृष्ठ-५६१ ।

पड़ा रहा । इस दिन दुर्ग पर भीषण आक्रमण किया गया और राजाराम को भागकर विशालगढ़ जाना पड़ा । उन दोनों में गुप्त सन्धि हो गयी ।[1]

महाराष्ट्र वास में भी शीत-युद्ध चलता रहा । मराठों ने ४ जून, १६९० ई० में शरजाखां पर विजय प्राप्त की और उसे उसके पूरे परिवार और सम्पूर्ण शिविर सहित सतारा के निकट बन्दी बना लिया । शीघ्र ही उनका अधिकार १६९२ ई० में पन्हाला पर भी हो गया । जनवरी, १६९६ ई० में मराठों के एक सरदार धान्ता जी ने हिम्मत खां नामक एक अन्य मुग़ल सेनाध्यक्ष को हराकर उसका काम तमाम कर दिया । मराठों का मुग़लों से यह युद्ध १६८७ से प्रारम्भ होकर १६९८ तक होता हुआ अन्त में १७०० ई० तक चरम सीमा पर था जब तक सिंहगढ़ में राजाराम की मृत्यु नहीं हो गयी ।[2]

औरंगजेब की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र बहादुरशाह १७०७ ई० में गद्दी पर बैठा । बहादुरशाह का सम्बन्ध मराठों के प्रति अच्छा था । शाहू ने अपने वकील राममानजी भोंसले को शाही दरबार में बादशाह के प्रति अधीनता प्रकट करने के लिये भेजा जिससे संतुष्ट होकर बहादुरशाह ने उसे स्थायी रूप से मनसबदार बना दिया ।[3]

बहादुरशाह की मृत्यु (१७१२) के पश्चात् फर्रुखसियर दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ जो १७१९ तक सिक्खों के विद्रोह तक शासक बना रहा ।[4]

---

[1] प्रो० एस०आर०शर्मा, भारत में मुग़ल साम्राज्य, पृष्ठ-५४६ ।

[2] डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृष्ठ-५४७ ।

[3] प्रो० एस०आर०शर्मा, भारत में मुग़ल साम्राज्य, पृष्ठ-६६२ ।

[4] वही ।

१७१९ ई० में रफीउद्दौला को दिल्ली की गद्दी पर आसीन किया गया । वह भी केवल ३ माह तक शासन कर सका । तत्पश्चात् मोहम्मद शाह गद्दी पर बैठा जो १७१९ से १७२४ तक दिल्ली का शासक बना रहा ।

राजसत्ता का स्वरूप:

मीतादास के समय के सभी मुसलमान शासक निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी थी । सुरा और सुन्दरी उनकी प्रमुख कमजोरी थी । राजसत्ता के लोभ में भाई को कत्ल कर देना उनके वंश परम्परागत नियम सा बन चुका था । कानून का कोई मापदण्ड या लिखित आदेश न था । सम्राट की इच्छा ही कानून समझा जाता था । हिन्दुओं को मुसलमान बनाना एवं उनकी पत्नियों तथा पुत्रियों को दासी बनाना वे ईश्वर का प्रमुख सन्देश मानते थे । उनके जीवन का केवल एक ही परम लक्ष्य था काफिरों को मुसलमान बनाना । यदि वे इसके लिये राजी न हो तो उनका समूल नष्ट कर देना वे अपना परम कर्तव्य समझते थे ।[१]

हिन्दू राजाओं में राजनीतिक बुद्धि का सर्वथा अभाव था । वे अपने स्वार्थ की तुष्टि के लिये दूसरे हिन्दू राजा को सदा नीचा दिखाने के लिये तैयार रहते थे । धर्म के प्रति उनकी कट्टर भावना थी । राजपूत अपनी शान में आकर तुच्छ बातों पर भी लड़कर अपनी शक्ति का ह्रास कर बैठते थे । मुसलमानों के प्रति उनके मन में घृणा की भावना अवश्य थी लेकिन आपस में एकता स्थापित कर एक जुट होने का प्रयास उन्होंने कभी नहीं किया ।

---

[१] डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, भारत का इतिहास, पृष्ठ-

अमीर-उमरा, काजी तथा पण्डित:

मुसलमानों में सर्वत्र अमीरों-उमरावों का प्रभुत्व था । काजी से सुल्तान तक भय खाते थे । मौलवी धर्म के कठोर नियमों के पालन पर बल देते थे । अमीरों के बल पर सुल्तान को सैन्य शक्ति बढ़ाने में बहुत सहायता मिलती थी । वास्तव में सैन्य संचालन, शासन-प्रबन्ध और सुल्तान को परामर्श देने का कार्य अमीर-उमराव ही करते थे । सुल्तान को सिंहासन आरूढ़ करने में भी इनका विशेष हाथ रहता था । कोई भी सुल्तान इनकी उपेक्षा नहीं कर सकता था ।

काज़ी लोगों के ऊपर मुस्लिम धर्म का संचालन था । धार्मिक मामलों पर सुल्तान सदा काज़ी की सलाह लेते थे । काजी के सलाह की उपेक्षा करने का साहस सुल्तानों में न था ।

पण्डितों की स्थिति भी हिन्दू राजों के दरबार में काजियों की भाँति थी । राज्याभिषेक से लेकर प्रत्येक धार्मिक प्रतिष्ठान इनके द्वारा ही सम्पन्न होते थे । हिन्दू-धर्म के नियमों को पंडितों ने इतना कठोर बना रखा था कि तनिक सा खान-पान रहन-सहन का स्तर गिर जाने पर व्यक्ति हिन्दू धर्म से च्युत हो जाता था ।

राज कर्मचारी वर्ग:

सम्पूर्ण राज्य को संचालित करने के लिये विभिन्न कर्मचारियों की नियुक्ति होती थी । हिन्दू राजाओं के यहाँ मंत्री एवं मुसलमान सुल्तानों के यहाँ वजीर सबसे ऊँचे पद पर होते थे । शासन के सभी विभाग उनके अधीन थे । वे पूर्णरूप से सम्राट के प्रति उत्तरदायी थे । राजस्व पर उन्हीं का पूर्ण नियंत्रण होता था । मीरा दास जी के समय तक मुगलों की राज्य-संचालन व्यवस्था उनके पूर्व सम्राटों की ही देन थी । वजीर अपने एक विभाग का

स्वतंत्र शासक था । उसकी सहायता के लिए नायब वजीर रहता था । इसके अतिरिक्त शासन में विभिन्न कार्यों के लिए अधोलिखित विभाग थे -

(१) दीवाने अर्ज या अपीलों का विभाग

(२) दीवाने रिसायत या सैन्य विभाग

(३) दीवाने इंशा या पत्र-व्यवहार विभाग

(४) दीवाने कजाए मुमालिक या न्याय विभाग

(५) दीवाने अमीर कोही या कृषि विभाग आदि[१]

स्थानीय शासन:

बड़े-बड़े नगरों का शासन कोतवाल के हाथ में होता था । वह नगर में शान्ति व्यवस्था के कार्य में योगदान करता था ।

ग्राम पंचायतें:

हमारे देश में ग्राम-पंचायतें बहुत प्राचीन परम्परागत हैं । छोटे-छोटे आपसी झगड़ों को निपटाने में इनका प्रमुख सहयोग होता रहा ।

राजकीय आय के साधन:

मीता साहब के समय राजकीय आय के प्रमुख साधन अधोलिखित थे । तत्कालीन सम्राट औरंगजेब तथा उसके बाद के कुछ शासकों द्वारा इन्हीं स्रोतों से राजकीय आय के कोष की वृद्धि होती थी -

---

[१] श्रीराम शर्मा, कबीर व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त, पृष्ठ-१५२ ।

(१) हिन्दू सामन्तों एवं जागीरदारों से प्राप्त भूमि कर ।

(२) कृषकों से प्राप्त भूमिकर । यह कर पैदावार के रूप में भी कभी-कभी लिया जाता था ।

(३) चुंगी कर

(४) प्रत्येक सीमा और नाव पर लिया जाने वाला राहगीर कर

(५) पानदारी नामक गृहकर (यह कर प्रत्येक व्यापारी, कसाई, कुम्हार और कुजड़े से लेकर कपड़े के व्यापारी, जौहरी और हुण्डी वाले सेठ को देना पड़ता था)

(६) सुर-शुमारी, बुज-शुमारी, बरगादी और बराई (बंजारों से), तुवआना भेलों से वसूल किया गया कर

(७) मद्यकर, द्यूतकर, वेश्यालयकर, अर्थदण्ड, नजर, रसूम आदि दूसरे कर

(८) अन्नकर ।

इसके अतिरिक्त जजिया कर केवल हिन्दुओं को देय था ।[१]

दण्ड विधान:

मुस्लिम शासनकाल में अपराधियों को कठोर दण्ड दिया जाता था । औरंगजेब जैसा कट्टर सुन्नी मुसलमान इस्लाम धर्म के अनुसार हाथ-पैर काट लेने का कठोर दण्ड साधारण अपराधी को भुगतना पड़ता था । देश-द्रोह की सजा प्राणदण्ड थी । इस्लाम को न माननेवाले काफीर समझे जाते थे एवं उसकी आलोचना करनेवालों को प्राणदण्ड का भागी होना पड़ता था ।[२]

---

[१] डा० एस०आर०शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृष्ठ-५७९ ।

[२] वही, पृष्ठ-५८१ ।

आर्थिक ढांचा:

शाही खजाना सोने, चांदी, हीरे जवाहरातों से भरा रहता था। विभिन्न प्रकार के करों से निरन्तर उसमें वृद्धि हो रही थी लेकिन समाज का आर्थिक ढांचा चरमरा सा गया था। जहां अमीर उमरावों के पास अपार दौलत थी वहीं गरीब हिन्दू परिवार के पास जजिया कर देने की भी सामर्थ्य न थी। फलस्वरूप हिन्दू शूद्र मुसलमान बनते जा रहे थे। कृषकों की स्थिति भी अच्छी न थी। अकाल आदि से वे पीड़ित थे। यद्यपि शासक समय-समय पर लगान आदि में रियायत देकर उनकी दशा सुधारने का प्रयत्न किये लेकिन उसमें कोई विशेष लाभ उन्हें नहीं मिल सका।[1] पंडित मौलवी लोग साधारण मध्यम वर्ग की तुलना में संपन्न थे। पंडितों का मुख्य व्यवसाय गुरुआई थी जिससे उन्हें धन की अच्छी उपलब्धि होती थी। अपनी यजमानी में पथभ्रष्ट लोगों को कर्मकाण्ड के संस्कारों द्वारा शुद्ध करने में उनको विपुल धन की प्राप्ति होती थी।[2] वैश्य समुदाय भी अपने व्यापार से संतुष्ट था। बैलों पर सामान लादकर बाहर ले जाकर अत्यधिक लाभ लेकर वह बेचता था जिससे वैश्य समुदाय की आर्थिक स्थिति अच्छी थी।[3] शूद्र जैसे केवट आदि का मुख्य व्यापार नाव चलाकर जिविकोपार्जन करना ही था।[4] शूद्रों को कोई प्रमुख निश्चित व्यापार न होने से उनकी आर्थिक दशा शोचनीय थी।

---

[1] प्रो० एस०आर०शर्मा, भारत में मुगल साम्राज्य, पृष्ठ-४७९।

[2] `अशुद्ध करि शुद्ध करावे त अपनी कहपायी।`, पाण्डुलिपि मीतादास। पदसंख्या-

[3] `टाड़ा लादा अगम भार का------`, पाण्डुलिपि मीतादास। पदसंख्या-

[4] `सतगुरु केवट संगति अपना दैं थहाय`, पाण्डुलिपि मीतादास। पदसंख्या-

सामाजिक स्थिति

मीता साहब ने अपनी मुक्तक रचनाओं के माध्यम से समाज के यथार्थ स्वरूप का निरूपण किया है । यद्यपि मुक्तक काव्य की विशेषता के कारण उसके क्रम का तारतम्य टूटा सा जान पड़ता है लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से उसकी पूर्णता पर सन्देह नहीं प्रकट किया जा सकता । चाहे समाज के वैवाहिक व्यवस्था का चित्र हो या सांसारिक नश्वरता का । सबमें यथार्थ की एक स्पष्ट झलक परिलक्षित होती है समाज की कुरूपता या उसकी उत्कृष्टता का यथार्थ रूप चित्रण ही उनकी वचन-वाणी का लक्ष्य था । यथार्थ घटनाओं को कृत्रिम बनाकर प्रस्तुत करना उन्हें स्वीकार नहीं था ।

मीता साहब अपनी वचन-वाणी के माध्यम से स्वयं को एक सामाजिक व्यक्ति के रूप में व्यक्त करने का सफल प्रयास किया है । समाज से भिन्न होकर निरपेक्षा के अस्तित्व की कल्पना का प्रस्तुतिकरण वे व्यर्थ समझते थे । इन्होंने देश-काल को दृष्टिगत रखकर व्यक्ति और समष्टि के दृष्टिकोण से समाज के बाह्यान्तर वृत्तियों का स्पष्टीकरण किया । व्यक्ति और समाज की कुरीतियों पर व्यंग कसकर उसकी दुर्बलताओं को प्रस्तुत करने के साथ-साथ दंभ और पाखण्ड को निर्मूल करने का उद्देश्य उनकी वचन-वाणी में चित्रित है । सुख-दुख, हानि-लाभ, पाप-पुण्य आदि के सन्ताप से तप्त व्यक्ति को शान्ति की ओर अग्रसर करना ही उनका परम लक्ष्य था । यद्यपि योग-परक तथ्यों के माध्यम से मीता साहब समाज के एक विशिष्ट श्रेणी गण्य हैं लेकिन उन्होंने किसी विशेष धारा का चित्रांकन करने की अपेक्षा समाज के सभी पहलुओं का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया । मीता साहब के समय की सामाजिक स्थिति को ऐतिहासिक परम्परागत सूत्रों में ढूढ़ना न्यायोचित नहीं है । इनकी वचनवाणियों के परिपेक्ष में तत्कालीन समाज की दशनि में एक नये इतिहास के प्रकाश का सूत्रपात हो सकता है । परन्तु वाणी के इतिहास में इतिहास के परम्परागत सूत्र को अन्वेषित करने की चेष्टा अन्य इतिहासज्ञों

के लिये एक भूल होगी क्योंकि इतिहास किसी युग का चित्र अंकित करता है। किसी व्यक्ति विशेष का नहीं। समाज की आन्तरिक स्थितियों का यथार्थ चित्रण ऐतिहासिक तथ्यों का चित्रण नहीं इतिहास से केवल समाज के बाह्य रूपों का किंचित स्वरूप ही परिलक्षित हो सकता है। यही कारण है कि मीतादास तथा उनका काव्य तत्कालीन ऐतिहासिक पृष्ठों का अंग न बन सके लेकिन जनमानस और तत्कालीन समाज के हृदय पटल पर उनका स्वरूप अंकित हो सका जो आज भी परम्परागत रूप में उनके समाधि स्थलों पर पूजा भक्ति आदि रूपोंमें व्यक्त है।

मीता साहब ने यद्यपि तत्कालीन सामाजिक स्वरूप का कोई प्रमुख रूप हमारे सामने प्रस्तुत नहीं किया लेकिन फिर भी उनके वाणी-वचनों के रूप में समाज का पूर्ण प्रतिबिंबित रूप प्रकट हो जाता है। समाज के सुरुप और कुरुप दोनों रूपों को उन्होंने बहुत ही सतर्कता से दृष्टिगत रखा है। समाज का सुरूप कुरुप की तुलना में नगण्य था। अत: इस समाज के इस कुरुप अवस्था को अपनी वाणी का विषय बनाकर मानव जीवन की अभिव्यंजना की। सामाजिक भविष्य को ध्यानगत रखकर मानवीय कुरुपता का विशद वर्णन करना ही इनके जीवन का परम लक्ष्य था। यही कारण है कि उनके वचन-वाणी केअधिकांश अंश सामाजिक कुरुपता से भरा पड़ा है। समाज के केवल नग्न चित्र का वर्णन देखकर हम मीता साहब को यथार्थवादी नहीं कह सकते। क्योंकि उन्होंने आदर्शवाद की पूर्णतया उपेक्षा नहीं की है। सामाजिक यथार्थवाद के प्रस्तुतिकरण के साथ मानव को आदर्श की ओर उन्मुख होने का सदा उपदेश दिया है। अत: हम मीता साहब को आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के प्रेरक के रूप में उपस्थित करें तो अत्युक्तिनहोगी।

मीता साहब का आदर्शवाद सामाजिक विघटन के स्थान पर मानवीय एकता का पोषक है। कथनी-करनी, योग-साधना, व्यक्ति-समिष्टि व्यवहार-विचार में वे एकरूपता लाना चाहते हैं। यही एकरूपता

का आदर्शवाद उन्हें साधना-सिद्धि के पार्थक्य की भावना को निर्मूल करता है। उन्होंने बाह्य वृत्तियों से पृथक होकर अन्तर्मुखी दृष्टिकोण से बाह्यान्तर की अनेकता में एकरूपता लाने का सफल प्रयास किया । सारे ब्रह्माण्ड अपनी आस्था में आत्मसात् करना उनके सामाजिक आदर्शवाद का परम लक्ष्य था ।

कुंभ का जल नाहिं सागर समाति है बाढ़ी भई[१] ।

सांसारिक नश्वरता को देखकर जीव की अनश्वरता का सन्देश देना उनकी पलायनवादी प्रवृत्ति का द्योतक नहीं है । वे स्वयं की ईश्वरानुभूति की प्राप्ति करने पर उन्हें आत्मवादी की संज्ञा भी नहीं दी जा सकती । धर्म कर्मच्युत पाखण्डियों की कड़े शब्दों में भर्त्सना भी उन्हें असन्तुष्ट होने का द्योतक नहीं वरन् समाज की दुर्व्यवस्था एवं अज्ञानता से दुखित उनकी दुःखावस्था का परिचायक है । क्योंकि धर्म की अज्ञानता उसका खोखलापन समस्त ब्रह्माण्ड को एकता के सूत्र में बांधने के मार्ग में अवरोध उत्पन्न किया,अतः जहां वे एक ओर पतनोन्मुख समाज की दशा पर दुःख प्रकट करते हैं वहीं दूसरी ओर पाखण्डियों के कार्य-कलापों पर आक्रोश प्रकट करते हैं । पलायनवादी ऐसी स्थिति में यथार्थ के ठोस धरातल से पलायन करता है । लेकिन मीता साहब ने समाज की कुरीतियों का डटकर विरोधकर अपनी समिष्टि भावना का परिचय देता है । समाज के कल्याण के प्रति चिन्ता व्यक्त करते हुए उन्हें कहना पड़ा -

अभिमानी सब बूड़िहै नरक कुकुरा देई,
कह मीता कोई दीन जन, गुरुमिल रामै लेइ ।
जो देखा सो भाखिया मीता ताकिा दास,
भूला जग अंधा हवै नामहि विस्वास ।।

---

[१] पाण्डुलिपि मीतादास, पद संख्या- ।

समाज के कल्याण के साथ-साथ पाखण्डियों के पाखण्ड को निर्मूल करने की योजना का भी कार्यान्वयन मीता साहब ने किया। लोककल्याण के निमित्त अपनी वचन-वाणी में इसका साक्ष्य स्पष्ट परिलक्षित होता है।

समाज में वर्ण-संघर्ष का इतिहास:

हिन्दू समाज में वर्ण व्यवस्था आर्यों की देन है। प्रारम्भ में यह व्यवस्था लोक कल्याण के निमित्त बनायी गयी थी परन्तु कालान्तर में रूढ़ियों और आडम्बरों के कठोर आवरण से इसका मूल रूप आच्छन्न होता गया और एक दिन ऐसा आया कि इसका कठोरपन इसके अपने ही अंगों के विघटन का कारण बना। परिणामस्वरूप कठोर वर्ण-व्यवस्था के स्थान पर वर्ण संकरता ने अपना स्थान स्थापित करना आरम्भ कर दिया। इस वर्ण संकरता के अध्याय के निर्माण में विदेशी जातियों का प्रमुख हाथ रहा है। यद्यपि इन विदेशी जातियों का आगमन यहाँ पर लूट-मार के साथ शासन के उद्देश्य से हुआ था, किन्तु कुछ विदेशी जातियों का उद्देश्य व्यापार या सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करने का था। भारतीय संस्कृति पर इनका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। आर्य संस्कृति अनेक संस्कृतियों को अपने आत्मसात् करते हुये अनेक बाधाओं को पार करते हुये आगे बढ़ी।

यद्यपि अनार्यों के प्रवेश से आर्य धर्म का विस्तार हुआ लेकिन उसकी कट्टरता उसकी दुर्बलता का कारण बनता गया। वर्ण व्यवस्था का निर्माण जहाँ एक ओर लोक कल्याण हेतु हुआ था अब वही समाज का एक कोढ़ बनकर जातियों और उपजातियों के रूप में उसे विघटित करने लगा। मीता साहब के समय तक आते-आते इसका रूप इतना विभत्स हो गया कि जिसकी कल्पना भी आर्यों को नहीं थी।

वर्ण कट्टरता और पाखण्ड ने आर्य धर्म के भीतर अनेक धर्मों को जन्म लेने की प्रेरणा दी । बौद्ध, जैन और चार्वाक इसके उदाहरण हैं । जहां बौद्ध धर्म के प्रादुर्भाव से जाति प्रथा का कठोर विरोध हुआ वहीं सिद्धों के कार्यकलापों ने बौद्धों की जड़ उखाड़ने का पूरा प्रयास किया । ब्राह्मणों का कर्मकाण्ड भी सिद्धों की आलोचना से बच न सका । समय के प्रहार से आर्य धर्म का ब्रह्मचर्य आश्रम संयम की ओर से विरक्त होकर "प्रेम मार्ग" की ओर मुड़ गया । ब्रह्मचर्य,गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम, सिद्धियों और साधनाओं में परिवर्तित हो गया ।

मीता साहब के आगमन से शताब्दियों पूर्व भारत पर मुस्लिम साम्राज्य स्थापित हो चुका था । मुसलमानों का मुस्लिम धर्म तलवार के बल पर हिन्दुओं को अपने पैरो तले रौंदता जा रहा था । हिन्दुओं में भय और लोभ की प्रवृत्ति ने उन्हें मुस्लिम धर्म स्वीकारने की ओर प्रेरित किया । आर्यों का वर्ण-भेद केवल ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य और शूद्र तक ही सीमित न रहे । ब्राह्मणों ने बहुत सी उपजातियां (कान्यकुब्ज, सरयूपारी, पराशर आदि) कल्पित गोत्रों के आधार पर उत्कृष्टता एवं निकृष्टता की श्रेणी में विभाजित किया । क्षत्रियों के साथ भी यही घटना घटी । कहीं सूर्यवंशी तो कहीं चन्द्रवंशी क्षत्रीय के साथ-साथ बन्देल, चौहान, पमार आदि जाति श्रेणियां प्रचलित हो गयी । वैश्य और शूद्रों में भी उपजातियों की सीमा न रही । शूद्रों में चमार, धोबि, डोम, मुसहर, नाई, दुसाध आदि पृथक-पृथक उप-जातियां हो गयी । इन उप-जातियों के प्रसार का प्रमुख कारण तत्कालीन व्यवसाय था । इस प्रकार समाज में वर्ण व्यवस्था का बोया हुआ बीज समाज को टुकड़े-टुकड़े करके रख दिया ।

धर्म भेद:

यद्यपि धर्म की दीवार बहुत सुदृढ़ है क्योंकि उसका निर्माण धर्म

के मूल तत्वों से हुआ है । इस मूल तत्व में मुक्ति ही प्रमुख विषय रहा है लेकिन भीखा साहब तक आते-आते मुक्ति प्राप्ति के भी अनेक मार्ग हो गये । इन मार्गों में कुछ नाम ही मनुष्य को उसके मन्तव्य स्थान तक ले जाने में सक्षम थे अन्य मार्गों पर रूढ़ियों की गहरी परत चढ़ी हुयी थी ।

यद्यपि आर्य-धर्म की मांस-भक्षण प्रवृत्ति से ऊबकर बौद्ध और जैन आदि मतों का पृथक सृजन हुआ था लेकिन उससे आर्य धर्म की धार्मिक कुरुपता का ह्रास न हुआ वरन् मुसलमानों के आगमन से वह बढ़ता गया । आर्य धर्म का सबसे अधिक विखण्डन और ह्रास इस्लाम धर्म के आगमन से हुआ । हिन्दू और मुसलमान के बीच खाई बढ़ती गयी । यद्यपि कबीरदास का आगमन इस खाई को पाटने में बहुत कारगर सिद्ध हुआ लेकिन परवर्ती संतों के आडम्बरों में धर्मान्धता की प्रवृत्ति को और बढ़ावा मिला । भीखा साहब ने कबीर से छूटे हुये हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव को मिटाने का सफल प्रयास किया । उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम दोनों धर्मों के मूल तत्वों का स्पष्टीकरण करते हुये उनके आडम्बरों पर व्यंग किया, उनकी तात्विक संरचना नहीं ।

कबीर के शिष्यों में धर्मदास को छोड़कर कोई ऐसा संत नहीं हुआ जो उनके कार्य को आगे बढ़ा सके । भीखा साहब ने उनके शिष्यों पर कठोर व्यंग करते हुआ कहा है

> जब आँधी मा संत थे, कबीर औ धरमदास ।
> वाही घर ठगवा बसे, परखै भीखा दास ।।

भीखा साहब ने तत्कालीन समाज में हिन्दू और मुसलमान की हिंसक प्रवृत्तियों को धर्म के विरुद्ध बतलाया । समाज में जहाँ एक ओर हिन्दू मूर्ति पूजा, छाप-तिलक, संध्या-होम कर्मकाण्ड को करते हुये अपनी मांस-भक्षण की प्रवृत्ति को नहीं त्यागते थे वहीं मुसलमान बकरी-भैंस काटकर [illegible] स्वयं को दरवेशी की उपाधि से विभूषित करते थे । भीखा साहब ने तत्कालीन समाज

की इस परिस्थितियों का सफल चित्रण किया है और कहते हैं कि----

ओ मियाँ का दरवेशा------------

हिन्दुओं में श्रेष्ठ कहे जाने वाले ब्राह्मणों के मांस भक्षण का चित्र अंकित करते हुये भीखा साहब कहते हैं -

रे कवर पढ़े तोरी कमाई ।

भीखा साहब ने तत्कालीन समाज में मुसलमानों के पीर,काजी, मुल्ला और शेख आदि के आचरण को लोक कल्याण के अनुरूप न देखकर उनको उचित कार्य करने का उपदेश दिया है जिससे तत्कालीन समाज की झांकी का दिग्दर्शन होता है -

मियांजी मुसलमान सोइ दीना
जे पीर मिले परवीना ।।

हिन्दुओं के धर्मगुरु पण्डित आदि के कार्य समाज को उसके मूल कर्तव्य से विचलित कर रहे थे । कर्मकाण्ड का पाखण्ड तत्कालीन समाज में इतना फैला था कि उसका वास्तविक स्वरूप अलक्ष्य हो गया था । धर्मग्रंथों की मर्यादा को भूलकर पण्डित अधर्म की ओर अग्रसर होने लगे थे । भीखा साहब ने उनके आडम्बरों, पाखण्डों का बहुत ही सजीव चित्र प्रस्तुत किया है -

तेरे काम दोउ कुल केरे
का पढ़ वेद पुराना रे ।।

तत्कालीन समाज में सिद्ध-नाथ मतों के साथ-साथ योग की भी बड़ी बुरी दशा थी । पाखण्डियों और हठकर्मियों की समाज में भरमार हो गयी थी । हठकर्मी योग रेचक कुंभक क्रियाओं के अपभ्रंश रूप में ऊर्ध्व मुख करके पवन को पीना रेचक कुंभक योग मानते थे । कुछ मन के प्रक्षालन को त्यागकर मुंह द्वारा

पढ़ी निगलते थे । कुछ मन के अन्दर शून्य स्थिति को प्राप्त करने के स्थान पर आकाश में निरन्तर ध्यान करते थे । कुछ चौरासी आसन लगाने की क्रिया को योग मानते थे । उस समय गया जाकर मुक्ति प्राप्त करने की एक प्रथा सी चल पड़ी थी । मीता साहब ने तत्कालीन समाज के सत्कर्मियों का बहुत सफल चित्र प्रस्तुत किया है ।

'साधक':

तत्कालीन समाज में हिन्दू मुसलमान ब्राह्मण-शूद्र के बीच बहुत बड़ी दीवार खड़ी होचुकी थी । साधना का क्षेत्र अनेक मतों और सिद्धान्तों में प्रसारित हो रहा था । साधकों की भिन्न-भिन्न स्थितियों का चित्रण कर मीता साहब ने तत्कालीन समाज के साधकों का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत किया है । गृहस्थ-वैरागी, ज्ञानी, योगी, पण्डित वेदपाठी, ब्रह्मचारी, नग्न, सिद्धव्रती जटाधारी मौनी, सन्यासी, तपस्वी आदि का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है ।

मुसलमानों के पीर, औलिया, मौलाना आदि का भी स्पष्ट चित्र तत्कालीन समाज की एक झलक प्रस्तुत करता है ।

नारी:

मीता साहब ने तत्कालीन समाज में नारी की बहुत ही दयनीय स्थिति का चित्रण प्रस्तुत किया है । नारी को उस समय पुरुष के समकक्ष अधिकार प्राप्त न थे । वह केवल पुरुष भोग्या समझी जाती थी । मीता साहब ने ऐसी नारियों का चित्र प्रस्तुत किया है जो दिन रात अपने पति से कलह करके गृह को नरक बनाये हुये थी ।

चलनी दुहि दूधै चहै, कुमति लिये वह राम ।
कलहनी नारि कुल छिनी का करै पिया तन मान ।।

समाज में उन दिनों घूंघट की प्रथा प्रचलित थी । नारी घर की चहार दीवारी में कैद होकर अपना जीवन व्यतीत कर रही थी । हिन्दू और मुसलमान दोनों में बहुत कठोर पर्दा-प्रथा व्याप्त था । ऐसी घूंघट प्रथा का प्रतीक रूपों में वर्णनकर मीता साहब ने तत्कालीन समाज की एक झांकी प्रस्तुत किया -

लोक लाज छूटे नाहिं सतगुरु से ये जाय ।
कह मीता ते कानचे, घूंघट देखि डेराय ।।

नारी को समाज में योग, तप आदि करने की अनुमति नहीं थी । विधवा होने के पश्चात् कुछ नारियाँ सन्यासिनी बनकर गृह परित्याग करती थी तो कुछ गृह में ही जीवन-यापन करती थी । समाज में सती प्रथा की प्रथा लागू थी । पति के शव के साथ सती हो जाने पर कोई रोक नहीं था । मीता साहब इस सती प्रथा का सजीव चित्र भी उपस्थित किया है -

मृतक संग पद तनुसारी तेउ बकोरिनी होइ है नारी
\+ + + +
एक ई संग जो मुरदाना तेउ बकोरिनी होइ निदाना
\+ + + +
विधवा नारी जिन तप ठाना तेऊ किरवा होइ निदाना

नारी तत्कालीन समाज में केवल भोग लिप्सा की वस्तु और आकर्षण का केन्द्र मानी जाती थी । पुरुष के उन्नति में नारी का योग बहुत सीमित था ।

मन रखु सो कहे रहा कहिं नारी कोइ दाम ।
दूजा कहवा माइये । जौन मिलावे राम ।।

गमनागमन:

तत्कालीन समाज में अधिकतर लोग पैदल यात्रा करते थे । हाथी, घोड़ा, पालकी, ऊँट, बैल, टट्टू (खच्चर) का भी उपयोग सवारी के लिये होता था । हाथी का उपयोग बड़े-बड़े उमराव लोग करते थे । छोटे तपके के लोगों को आवागमन के लिये टट्टू का सहारा लेना पड़ता था । भीखा साहब ने व्यंग रूप में हाथी और टट्टू की सवारी का वर्णन किया है -

मन हस्ती मन चढ़त है करमन टट्टू होय ।
नाक परी की विधि करै मुकुति कहाँ ते होय ।।

व्यापारी लोग टाँगे पर माल लादकर व्यापार करते थे -

टाड़ा लादा अगम नगर का, जहाँ न सुर मुनि जाईं ।
चौखा माल बिकाना तहवाँ भय बनिजा मन आई ।।

आवागमन के लिये नदियों पर पुल आदि नहीं बंधे थे । लोगों को केवट का सहारा लेना पड़ता था । वे नाव के द्वारा नदी पार करते थे -

नदिया बीच भयानक डोंगवा ना जाय ।
करि केवट सो नेहरा तब थाहै पाय ।।

साहित्यिक स्थिति

संस्कृति, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में जिस साहित्य की रचना भीखा साहब के समय तक हो चुकी थी उसका प्रभाव किसी न किसी रूप में बना हुआ ही था । साथ ही जन-भाषा में भी साहित्य की सृष्टि हो रही थी । जन साहित्य में दो प्रकार की धारायें प्रवाहित हो रही थी । मुक्तक प्रबन्ध रचनाओं में वीर गाथायें तथा प्रेम गाथाओं का ही विशेष प्रभुत्व

था । इस प्रेम और वीर गाथाओं का नायक लौकिक पुरुष होता था । उनमें शौर्य और प्रेम के अभिव्यक्ति की प्रधानता रहती थी परन्तु मुक्त रचनाओं का नायक प्रायः लौकिक पुरुष न होकर आध्यात्मिक पुरुष था । कबीर, रैदास, नानक, नामदेव, धर्मदास आदि संतों की महान कृतियों ने संसार को संत विचारधारा की ओर प्रेरित कर दिया था । संतों का योग मार्ग और उनकी वचन-वाणी गुप्त न रहकर साधारण लोगों के मानस तक पहुंच चुकी थी यद्यपि इन मुक्तक काव्यों से अपूर्ण साधुसंतों की वचनवाणी की भरमार हो रही थी लेकिन उससे साहित्य जगत को कोई क्षति नहीं हुई अपितु उसका कोष भण्डार और अधिक भरा है । धार्मिक वातावरण में रचना होने के कारण मुक्तक काव्यों का प्रचुर बाहुल्य था । मुक्तक काव्यों में भक्ति भजन के माध्यम से अपनी परम्परागत रूढ़ि की सीमाओं को तोड़ा । संगीत का सहारा लेकर साहित्य वृहद् रूप में पल्लवित और पुष्पित हुआ । भीखा साहब के समय तक भाषा में तुकान्त का पूर्ण प्रचार हो चुका था । पदावलियों में इसका सफल प्रयोग परिलक्षित होता है । दोहा, सोरठा आदि छंदों के प्रयोग से तत्कालीन साहित्य गीतों के रूप में लोक में महत्वपूर्ण स्थान पाने में सक्षम हो सका।

भीखा दास के समय समाज में लोकोक्तियों और क्षेत्रीय मुहावरों का प्रचलन सामान्य बात थी । दोहा, चौपाई आदि सरल छंदों को साहित्य के प्रमुख तत्वों के रूप में प्रमाणित हुये। भीखा साहब के समय तक आते-आते केशवदास जी की क्लिष्ट अलंकारिक योजना का प्रारूप समाप्त हो चुका था । उसका स्थान ब्रजभाषा ने ले लिया था जिसमें क्षेत्रीय भाषा-तत्वों की प्रधानता रही । शैली विषयक तत्व भी भीखादास जी के समय तक पूर्ववर्ती कवियों की भांति रहे । पदों, दोहों आदि में रहस्यवाद शैली की प्रधानता रही । जहाँ एक ओर प्रबोधन शैली में गुरु-शिष्य उपदेश की परम्परा यथावत् रही वही दूसरी ओर प्रतिबोधन शैली में लोगों की सांसारिकता का भंग प्रकाशन एवं मिथ्या तत्वों की भर्त्सना भी इस युग का प्रमुख देन रहा । अपनी तन्मयी

को प्रमाणित करने हेतु साक्ष्य-प्रस्तुतिकरण शैली के साथ-साथ दो विरोधी तत्वों को प्रदर्शित करने हेतु विशेष व्यंजना शैली का भी बाहुल्य तत्कालीन साहित्य में मिलता है । संबोधन शैली में लोगों को संबोधित करना ही तत्कालीन साहित्य का उद्देश्य न था वरन् उलटवासी और कूट शैली में योग की तत्वों का दिग्दर्शन कराना भी उनका परम लक्ष्य था ।

मीका दास जी के पूर्ववर्ती कुछ संतों का उद्देश्य अलंकारों के माध्यम से काव्य को अलंकृत करना था भले ही उसे विकृति आ जाय लेकिन मीकादास जी के समय अलंकारों का सम्बन्ध लोक-जीवन से जुड़ चुका था । अलंकार लोक जीवन को प्रभावशाली बनाने हेतु ही काव्य में स्थान पा रहे थे उसे अलंकृत करने के लिये नहीं । 'ग्यान बान नहीं लगा अभागा', 'सुरति-निरति मीरी भई पद्मिनी', मन दरपन का माज थनि तब लखि परै' आदि अलंकारों से लोक भावना की ही ध्वनि निकलती है । काव्य के अलंकरण की नहीं । तत्कालीन साहित्य में उपमा, रूपक की अपेक्षा प्रतीकों को अधिक स्थान प्राप्त हुआ क्योंकि प्रतीक ही योग परक तत्वों की आत्मा थे । प्रतीकों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकार समाहित हो गये । तत्कालीन सभी रचनाओं में शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों को ही अधिक मान्यता दी गयी क्योंकि शब्दालंकारों से केवल काव्य के बाह्य सुन्दरता व्यंजित होती है । आन्तरिक नहीं और सन्तों के बचन-वाणी आभ्यांतर के विषयों को व्यक्त करते थे । शब्दालंकारों का प्रयोग कला प्रदर्शन के लिए होता है जबकि अर्थालंकारों का प्रयोग काव्य की आत्मा की पूर्ति के लिये होता है । मीका दास जी के बचन वाणी में यत्र-तत्र शब्दालंकार के भी दर्शन होते हैं लेकिन वे बलात् नहीं अपितु प्रसंगवश उद्भूत हो गये हैं । मीकादास जी के बचन-वाणी में इनका उदाहरण स्पष्ट परिलक्षित होता है -

(१) हरि हीरा हिरदै बसै, का ढूँढे कहीं दूर ।

(२) डार-डार हीरा फिरै, पात-पात फिरै कूर ।

(३) प्रेम पियाला पीजिया। पदम झलका सीस ।

अत: भीतादास जी के तत्कालीन साहित्यिक वातावरण को देखने से ज्ञात होता है कि साहित्य में लोकानुभूति को अत्यधिक स्थान मिल रहा था। साहित्य बाह्य-दर्शन का नहीं अपितु आन्तरिक अभिवृत्ति का विषय था। सामाजिक विषय धर्म को साहित्य में विशेष योगदान प्राप्त था। मुक्तकों के माध्यम से खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति को प्रस्तुत करना ही तत्कालीन संत-साहित्य का प्रमुख लक्ष्य जान पड़ता था। आर्य धर्म का विघटित रूप विभिन्न रूप साहित्य के तत्व बन गये थे। आर्यों की वर्ण-व्यवस्था का जर्जर रूप भी तत्कालीन साहित्य का एक प्रमुख विषय रहा। संतों का प्रमुख उद्देश्य वर्गों की बीच बढ़ती खायी को पाटना था। मुस्लिम धर्म के आडम्बरों में सना मुस्लिम सम्प्रदाय भी सन्तों की बचन-वाणी में अपना उद्धार देखने का प्रयास करने लगा था। अत: तत्कालीन साहित्य वातावरण में हिन्दू-मुस्लिम धार्मिक तत्वों की प्रधानता रही।

जी व न - वृ त्त

जब भारत में दिल्ली नरेश औरंगजेब अपना एक छत्र राज्य स्थापित करने का प्रयास कर रहा था, जब छत्रपति शिवाजी के पुत्र (शाहजी भोसले) रायगढ़ के सिंहासन पर आरूढ़ होकर औरंगजेब की चुनौती को स्वीकार करने का अथक प्रयास कर रहे थे, जिन दिनों धार्मिक क्षेत्र में समर्थ गुरु स्वामी रामदास जी का नाम व्याप्त था, उन्हीं दिनों संवत् १७४७ विक्रमी (सन् १६९० ई०) में फतेहपुर जिले के ग्राम फतुल्लाबाद (बजुहा) में दस्सन दोसर बनिया के घर संत भीतादास जी का जन्म हुआ था।[१] ग्राम फतुल्लाबाद

---

[१] भीतादास जी द्वारा हस्तलिखित `बचन बानी` कैथी लिपि में। जो भीतादास के शिष्य बदन सिंह चौहान की समाधि स्थान दोस्ती नगर उन्नाव में रखी है।

बकेउर और भिन्द की के बीच में शिवराजपुर से पाँच मील तथा बारा के घाट से चार मील(2कोस)की दूरी पर है ।

यद्यपि अपने विषय में कुछ न लिख जाने की महापुरुषों एवं संतों की परम्परा आदिकाल से चली आरही है । तथापि कबीरदास की शिष्य परम्परा में आनेवाले भीखा दास इसके अपवाद हैं उन्होंने अपनी तथा अपने शिष्यों का जीवन परिचय कैथी-लिपि में लिपि-बद्ध किया जो आज भी 'दोस्तीनगर' उन्नाव में ठाकुर ज्ञानसिंह के यहाँ सुरक्षित हैं[१] । इसीलिये संत भीखादास के पूर्वकालिक महापुरुषों एवं महान संतों की जीवन गाथा संदिग्ध थी । वास्तव में यह एक प्रकार का अभिसमय (Convention) सा बन गया था कि जिस महापुरुष के जीवन-गाथा के बारे में जितना कम ज्ञात हो उसका महत्व उतना ही अधिक आंका जाता था । सम्भव है कि इस रूढ़िवादिता को समाप्त करने वाले कबीर के परवर्ती सन्त भीखा दास ने भी इसी अभिसमय को तोड़ने के उद्देश्य से ही अपने महत्वपूर्ण रचनाओं के साथ-साथ अपना जीवन परिचय भी लिखा हो । अतएव इनका जीवन परिचय सम्प्रति काल में भी प्रामाणिकता का आधार ग्रहण किये हुये हैं । यद्यपि भीखादास जी ने स्वयं अपनी लेखनी से अपने जीवन के बारे में लिखा है फिर भी शोधकार्य की वैज्ञानिकता की रक्षा के लिये उसकी प्रामाणिकता की परीक्षा आवश्यक है ।

---

[१] (क) आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परम्परा, भारती भण्डार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्रकाशन संस्करण १९७२, पृष्ठ-७५९ ।

(ख) 'आज' दैनिक के विशेषांक में कैप्टेन सुरवीर द्वारा प्रकाशित जीवन विषयक तथ्य ।

जन्म:

मीतादास जी ने अपनी वचन-वाणी के एक स्थान पर अपने पूर्व के बहुत से सन्तों का वर्णन किया है जिनमें `सन्त मलूक दास जी` अन्तिम रहे हैं । अत: सन्त मलूक दास जी के बाद ही मीतादास जी का जन्म समय निश्चित हो पाता है[1]।

यद्यपि संत मलूकदास जी के जन्म संवत् आदि के विषय में विद्वानों में मतभेद है । कुछ विद्वान उनको कबीरदास जी का समकालीन बताते हैं । कहते हैं कि मलूकदास जी लगभग दो सौ से भी अधिक वर्ष तक जीवित रहे । डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने अपने `हिन्दी साहित्य के इतिहास` में कड़ा जिला इलाहाबाद निवासी मलूकदास जी का जन्म सं० १६३१ (सन् १५७४ ई०) में माना है । आचार्य पं० परशुराम चतुर्वेदी तीन मलूकदास

---

[1]बानी अगम अपार है, तुम सुनो मलूका ज्ञान हो
पुं अग्र एक धार है तहां, जन बीरला ठहराय हो ।
बीचै में नानिक रहा रे, गुरु सो थोरा किन्ह हो ।
ताते सब धन ना मिलो, कुछ दास कबीरा दीन्ह हो ।
जन कमाल रैदास का रे, कबिरा सर्वस दीन्ह हो ।
पीपा सदना, भारी भी, सोई धरमदास का कीन्ह हो ।
नामा मिला कबीर का रे, भए ब्रह्म मां लीन्ह हो ।
जैसे का तैसा किया, जिन सांच[2] सिर दीन्ह हो ।
बीचै मा बहुत रहे रे, और कबिरै लीन्ह हो ।
तहां की बाते मैं कहुं तोहि बोली परै न चीन्ह हो ।
धनी हुकुम मोहि ना किया रे, ताते ढोल न चीन्ह हो ।
सम्वत् सतरह सौ अस्सी, आए एक सोई जन का जीत हो ।
बिना हुकुम-जिन पद किया रे, ते सब डारि काटि ।
पुरि अदल चलाइहैं, बाकी कुपी न पुरा बाटि हो ।
टूटा ज्ञान कबीर का रे, सोई लेहैं बढ़ाय ।
अब लेनी अब होयगा, तुरि अपनी देहैं बढ़ाई हो ।

नामक संतों का उल्लेख करते हैं जिनमें कड़ा (जहानाबाद) जिला इलाहाबाद निवासी मलूकदास जी का समय सन् (सं० १६३१) १७३९ मानते हैं। हो सकता है ऐतिहासिक तिथियों में कुछ परिवर्तन हो गया हो लेकिन भीखा साहब ने अपने एक पद में मलूकदास को संबोधित करते हुए बहुत सी बातें कही हैं। जिससे ज्ञात होता है कि मलूकदास उनके समकालीन थे। अतः वे भीखा साहब के समकालीन नहीं रहे होंगे।

विवेक भीखा कीन्ह मलूक का समुझावा।[1]

उक्त पद में भीखादास जी के जन्म (सं० १७४७) से एक वर्ष पहले कड़ा जिला इलाहाबाद निवासी संत मलूकदास ने संत भीखासाहब से मानव-कल्याण के लिए कुछ बानी वचन कहने का अनुरोध किया। संत भीखा साहब ने उत्तर दिया कि निकट भविष्य में ही भीखादास नाम के एक महान संत का जन्म होनेवाला है जो अपने बानी-वचन से मानव जाति का कल्याण करेंगे। भीखाराम सकरब की भविष्यवाणी सत्य प्रमाणित हुई। संवत् १७७५ में श्री भीखादास ने अपने बानी-वचनों को कैथी-लिपि में लेखनी-बद्ध करना आरम्भ किया तथा संवत् १७९० तक अनेक ग्रंथों की रचना की।[2]

अपनी बानी में भीखा साहब ने परवर्ती काल में कबीरदास जी के धर्मोपदेशों में आ जाने वाली अशुद्धियों और आडम्बरों का निराकरण किया।[3]

---

[1] भीखा साहब की हस्तलिपि में ये पद (दोस्तीनगर) उन्नाव में सुरक्षित है।

[2] भीखादास, हस्तलिखित ग्रंथ।

[3] जब आयो माँ सन्त थे, कबीर औ धरमदास।
बाही घर लावा कै। परखे भीखादास।।
हस्तलिखित ग्रंथ, भीखादास।

मीता साहब ने कबीरदास जी के प्रति पूर्ण श्रद्धा व्यक्त करते हुए उनके नाम पर चलने वाले सभी सम्प्रदायों का खण्डन किया है।[१]

यद्यपि मीता साहब अपने को दूसरा कबीर मानते हैं अर्थात् वे अपने को कबीरदास का वास्तविक अनुगामी बताते हैं।[२] लेकिन फिर भी कबीरदास, दादू, नानिक आदि सन्तों के वचन-वाणी में जो अशुद्धियां पाखण्डियों द्वारा मिला दी गयी हैं उनको तुच्छ और हेय समझते हैं। पाखण्डियों के उस ज्ञान को वे संत-पथ से विपरीत मार्ग मानते हैं।[३]

मीतादास जी ने कबीर आदि के धर्मोपदेशों की चोरी का जो उल्लेख किया है वह संत साहित्य में प्रचलित और विश्वसनीय है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक `कबीर` में भी इसका उल्लेख किया है।[४]

---

[१] दास कबीरा, नानिक नाभा, धर्मदास और दादू।
इन संतन नहीं पंथ चलावा, झूठे करें वादू ।।

[२] जो काशी कब गया जुलाहा, सोतो है टकसारी,
मीता वाकी साख देत है, वो पहुंचारी दरबारी।
देखि-देखि सब करी जुलाहे सो तिन्हु ना पायी,
मीता ताकी साख देत है, या स्वारथ फरमायी ।।
गीता, वेदा ना लिखी जो कब गया जुलाहा।
तीनो देव जहां नहीं पहुंची तहां की थाही थाहा ।।
मीता के माग चलें, कबीर सरीखा होय।
मीत कबीरा एक है, कहवे के है दोय ।।
कबीरा चोला सरीर का, मीत बताना सोय।
जो हमरे मारग चले, कबीर सरीखा होय ।।

[३] तीन घर चोरी भई, भिक्षान किन्ही जाय।
कबीर दादू नानिक, जग का जान जाय ।।
जो तिनु के ज्ञान का मान लें रासबार।
सो सतगुरु सो विमुख है, मीता करो विचार ।।

[४] (क) सन्तो बीजक मत परमाना, कैयक खोजी खोजि थके कोई बिरला जन पहिचाना।
(ख) डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृष्ठ-३१।

द्विवेदी जी इस विषय में लिखते हैं " महाराज विश्वनाथ सिंह जू के अनुसार स्वयं बीजक के विषय में परम्परा है कि भगवान दास नामक किसी शिष्य ने कबीरदास जी की जीवितावस्था में ही बीजक का अपहरण किया। कहते हैं कि इस शिष्य ने बीजक को विकृत कर दिया।" सम्भव है यही कारण हो जिससे बाध्य होकर कबीरदास जी ने 'सायर बीजक को पद' की रचना की हो।

अत: सैनी साहब की भविष्यवाणी कि सं० १७८० में एक संतलोगा जो पाखण्डियों के ज्ञान और वितण्डावाद को काट-छाँटकर रख देगा, अक्षरश: सत्य प्रमाणित हुई।

सन्त भीखादास जी के जीवन-काल के निर्धारण में उनके समकालीन कवियों का उल्लेख विशेष प्रमाणिक होगा। भीखादास जी ने अपने समकालीन बहुचर्चित सतनामी संत जगजीवन जी का उल्लेख किया है। जगजीवन जी का जन्म डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने सतनामी सम्प्रदाय की परम्परा के अनुसार सं० १७२७ तथा मृत्यु संवत् १८१८ में मानी है।[1] इनके जन्म का समय कुक साहब ने सं० १७३६ माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनका जन्म सं० १७३६ माना है।[2] डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में 'जगजीवन जी का कार्यकाल संवत् १८०७ माना है। इसी समय इन्होंने लखनऊ और अयोध्या के बीच कटवा (बाराबंकी) नामक स्थान में सतनामी सम्प्रदाय का संगठन किया।[3] चाहे कोटवा (बाराबंकी) निवासी संत जगजीवन जी का जन्म सं० १७२७ रहा हो या सं० १७३६। यह

---

[1]आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परम्परा।

[2]आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास।

[3]डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, हिन्दी साहित्य का इतिहास।

निर्विवाद सत्य है कि वे सं० १८१८ तक अपने कार्यक्षेत्र में रहे ।

मीतादास जी का जन्म सं० १७५७ और मृत्यु सं० १८३५ का कार्यक्षेत्र उन्नाव था । उन्नाव से ठीक उत्तर में ५ मील दूर कोटवा (बाराबंकी) है । मीता साहब ने जगजीवन जी की लम्बी साधना एवं दूसरों के पदों की काट-छाँटपर उनकी बहुत ही तीक्ष्ण आलोचना की है -

जगजीवन उत्तर में है सो पाखण्डी आय ।
काट कूट करता बहुत, मन भय नाही पाय ।।
जगजीवन जग ठहकिया, जग ठहकि है नाहि ।
मोंहू गया होयगा, समुझत काहे नाहि ।
जगजीवन धृग जीवन, गांग बात है मीख ।
अपना परे नरक में, औरन का करे सिख ।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मीता साहब सतनामी सम्प्रदाय के प्रवर्तक कोटवा (बाराबंकी) स्थान के जगजीवन के समकालीन थे अत: मीता साहब का जन्म सं० १७५७ वास्तव में उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर प्रामाणिक माना जा सकता है ।

स्थान:

मीतादास जी का जन्म फतेहपुर जिले के ग्राम फतुहाबाद (बकुवा) में हुआ था । ग्राम फतुहाबाद, बकेउर और बिन्दकी के बीच में शिवराजपुर से पाँच कोस तथा बारा के घाट से चार कोस (१२ कि०मी०) की दूरी पर है ।[१]

---

[१] मीतादास द्वारा हस्तलिखित जीवनी के पद: (१) पद्द बीते सं०१८७०, (२) सतगुरु मिले सं० १७८०, (३) तब उमरि रहे बरस ३२ की (४) वतन कौराई (५) जनम फतुहाबाद ।

सं० १७६४ के लगभग मीतादास जी अपना निवास स्थान फर्रुखाबाद को छोड़कर उन्नाव जिले के रनबीरपुर गांव में बस गए । इस गांव को आजकल रनजीतपुरवा या केवल पुरवा कहते हैं । आजकल पुरवा उन्नाव जिले की एक तहसील है ।[1] संवत् १७४७ से १७६५ तक फर्रुखाबाद में रहने के पश्चात् पुरवा के मबरा (कटरा) में मीतादास जी ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी सं० १८२५ तक रहे ।

परिवार:

मीतादास जी ने अपना जीवन परिचय बहुत संक्षेप में लिखा है । परिवार के सभी सदस्यों का उल्लेख नहीं है । केवल अपने पिताजी के बारे में उल्लेख किया है कि उनके पिता का नाम दस्सर था जो दोसर बनिया थे । उन्होंने अपनी माता या अन्य पारिवारिक सदस्यों के विषय में कहीं उल्लेख नहीं किया है । अतः अन्य पारिवारिक सदस्यों के प्रामाणिक पुष्टि के अन्तःसाक्ष्य के अभाव में अज्ञात है । वैसा और सन्तों की परम्परा में उनके शादी-शुदा और उनके स्त्री-बच्चों के बारे में प्रामाणिक तथ्य नहीं मिल पाते। वैसे मीतादास ने कहीं उल्लेख नहीं किया है । जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि उनके स्त्री-बच्चे थे वास्तव में मीतादास के अनुसार माया के चक्कर में पड़कर बंधने वाला व्यक्ति संत नहीं बन सकता और इसी कारण ही उन्होंने शादी न किया हो ।

---

[1]आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परम्परा ।

संस्कार:

मीतादास जी का जन्म वैश्यों में बहु प्रचलित दौसुर वैश्य कुल में हुआ था। इनके पूर्वज फतुहाबाद में उसी जिले के कोराई नामक ग्राम से आकर बस गए थे।[1] अपनी जाति के बारे में मीतादास जी ने अपने हस्तलिखित ग्रंथ में विस्तार से वर्णन किया है। इतना ही नहीं मीतादास जी द्वारा लिखित बहुत से पदों में उन्होंने संतों को तथा स्वयं को किरखी (उद्यम। रोजगार व्यापार) द्वारा जीविकोपार्जन करने पर बल दिया है जिसके अनुसार उनका वैश्य जाति का होना सिद्ध होता है।

मीतादास जी पर जातिगत संस्कार का बहुत प्रभाव पड़ा था। जाति-गत संस्कारों का स्पष्ट प्रभाव उनके वचन-वाणी में यत्र-तत्र मिलता है। झूठे बनिये का व्यापार[2], हानि-नफा[3] आदि वैश्य-वर्ग के दैनिक संस्कारों का स्पष्ट प्रभाव उनपर देखा जा सकता है। इसके साथ-साथ हुण्डी चलाना, टांडा (बैल पर) माल लादकर शहर ले जाना, चोखा माल बचकर बेचना, दिवाला निकलना, बरीदना आदि[4] वैश्य-कुल के संस्कार उन पर स्पष्ट पड़े हैं।

---

[1] मीतादास, हस्तलिखित ग्रंथ।

[2] झूठा बनिज किया दुनिया मा -----

[3] पाप-पुन्य की खेती करते हानि-नफा उपजाना रे।

[4] टाड़ा लादा अगम नगर का, जहां न सुर मुनि जायी।
चोखा माल बिकाना तहवां, मै बनिया मनभायी ।।
सब कोई हवै देवाना निकसा, हम तो साची पायी।
हरि दरवाजे कोठा किन्हा, हुण्डी अदल चलायी ।।
जगत साहु जम लूटत देवै, मोहि डर लागा नाहीं।
या की सौदा मीता छाड़ी, कोई दूर बड़ाई ।।

यद्यपि वे संत गति को प्राप्त हो गये थे लेकिन कुल के संस्कारों से वे पूर्णतया विरत न हो पाये थे । पूंजी रखना आदि वैश्य कुल के संस्कार उनपर पूर्णतया छाये हुये थे ।[१]

नामकरण एवं प्रयोग पद्धतियां: मीतादास जी का नाम मीता क्यों पड़ा इस विषय में कोई निश्चित अन्त: साक्ष्य प्राप्त नहीं है । सबका प्यारा (मीत) होने के कारण स्वयं उन्होंने अपना नाम मीता रखा हो । मीतादास जी ने अपने काव्य में पदों और दोहों पर अपने नाम की छाप देते समय उसे चार प्रकार से प्रयोग किया है

(१) मीतादास[२]
(२) मीता[३]
(३) जनमीता[४]
(४) मीत[५]

पदों में दासमीता अधिकतर मीता का ही प्रयोग हुआ है जबकि दोहों में मीता, मीतादास और जनमीता तथा मीता नाम का प्रयोग हुआ है । कुछ दोहे लिखा

---

[१] रामधन पूंजी हमरे आयी, सुनि लो सांची प्रार्ह ।

[२] ठहरेगा कोई सूर संगति मीतादास की ।
जिनका अंकुरा पूर, लोक लाज तजि जगत की ।।

[३] चौदह पुर भवसागर, बहै ते दुखिया लोग ।
मीता पहुंचा अगमपुर, सतगुरु दीन्हा जोग ।।

[४] सांचे ते तो हरि मिले, निदंक नर के जाई ।
जनमीता सांची कहै, धोखा कुछी न आई ।।

[५] मीता के मारग चले, कबीर सबीता होय ।
मीत कबीरा एक है कहबे के है दोय ।।

छाप के भी लिखे गये हैं ।[1] मीता साहब ने अपना नाम मीता, मीतादास, दास मीता, जन मीता, मीते आदि को छ: पद्धतियों में प्रयोग किया है -

(१) <u>सविशेषण पद्धति</u>:[2]- इस पद्धति में मीतादास जी ने भक्त को भगवान के विशेषण के रूप में प्रयोग किया है एवं भगवान के समक्ष अपनी हीन-भावना एवं दुर्बलता दर्शाने का प्रयास किया है । उस अलख-निरंजन, अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक ईश्वरीय सत्ता के समक्ष भक्त, दास या जन सभी सेवक तुल्य हैं ।

(२) <u>निर्विशेषण पद्धति</u>:[3]- इस पद्धति में मीता साहब ने सामान्य रूप से अपने भावों को व्यक्त किया है ।

(३) <u>नाम विकृति पद्धति</u>:- इस पद्धति में मीता साहब ने अपने आपको बहुत छोटा बनाकर अपने नाम को बोलचाल की भाषा में तोड़कर विकृत करके प्रयोग किया है । जैसे बोलचाल में मिश्र का मिसवा, कबीर का कबीरा, मोहन का

---

[1] तिमिर जाति रवि दरस ते, कुमति जाति गुरु ज्ञान ।
सील जाति सन्मान बिन, भगति जाति अभिमान ।।

[2] (क) साचे ते तो हरि मिले निंदक नाके जाई ।
जनमीता साँची कहै, धोखा कुछो न आई ।।

(ख) प्रेम प्रीति चिन्तामनि धरि चरन कवल जो पावई
दास मीता चरन ध्यावै, साँची साँच पुकारई
नरक तेहिं जाय झूठा जो न रामै पावई ।।

(ग) साखी मीतादास की सबै मीता का जीव
मदन जारि मन बस करै, पावै आपन पीव ।।

[3] लोक दीप सब नगर तर येही के व्यवहार ।
तिनकि छिपते ना तरे कह मीता सिरजनहार ।।
आशा तिष्णा कठिन है, बाढ़े बिरला कोय ।
मीता हरिमन सो लगै, दाग न लागै कोय ।।
काम क्रोध बैरी बड़े तिनका करिए नास ।
तब मीता साहब मिले, होई अमरपुर बास ।।

मोलना ही जाता है उसी प्रकार 'मीता' की जगह 'मीत' का प्रयोग किया है ।[1]

(४) सविभक्तिक या कारक चिह्न सहित पद्धति:- इस पद्धति में मीता साहब के आगे का, की, ने आदि चिह्नों का प्रयोग हुआ है ।[2]

(५) निर्विभक्तिक पद्धति:- इस पद्धति में मीतादास जी का प्रयोग स्वतंत्र रूप में हुआ है ।[3]

(६) सक्रिय प्रयोग:- इस पद्धति में मीता शब्द का प्रयोग 'कहै' क्रिया के कर्ता रूप में हुआ है ।[4]

(७) निष्क्रिय या क्रियाहीन प्रयोग:- इस पद्धति में 'मीता' शब्द का प्रयोग किसी क्रिया के कर्ता के रूप में नहीं वरन् स्वतंत्र रूप से हुआ है ।[5]

---

[1] चाहै बड़ाई जगत में ते नर बड़े न होय ।
मीत दीनता जो करै, हरि समान सो होय ।।
जिन्है चाहै सो हरि चाहै, सैसे हरि का होय ।
देह बिसारे तब मिलै, बड़वा मीत न होय ।।

[2] मीता के मारग चलै, कबीर सरीखा होय ।
मीत कबीरा एक है, कहबे के है दोय ।।
मीता के मारग चलै, कबीर सरीखा होय ।
भोंदू कथनी का कथै, मत राखा है गोय ।।

[3] बरन अठारह वहां नहीं, जहां सांचा दरबार
मीता वहां पहुंचे हवै, झूठी कथै लबार ।।

[4] घटहि बाहर का भए, जो सो जाना ठौर ।
कहै मीता जिन पहचाना, ते माथे की मौर ।।
नरक पंथ मां भीड़ बड़ी है खाली कबहु ना होई ।
कहै मीता संतन के मारग, देखा बिरला कोई ।।

[5] मीता मीठी भक्ति है और नहीं अस मीठ ।
जिनका साथी लब परै, जग लागै तेही फीक ।।
मीता पांचों सी लग, बाध उरध के बीच ।
प्रेम पियाला पीजिया, पद्म झलका सीस
थिर ते बांदी हो ते नर मालिन बेकार ।
मीता कबहुँ न छूटै, हरि मिलन के द्वार ।।

<u>काव्य-रूपों में नाम प्रयोग</u>:- यद्यपि मीता साहब ने कुछ दोहों को छोड़कर प्राय: दोहों पदों में अपने नाम की छाप रखा है । तथापि उन स्वतंत्र दोहों की विशेषता यह है कि छाप न होने पर भी वे छापहीन दोहे किसी और कवि की रचना में मिल नहीं सके हैं । मीतादास जी ने अनिश्चित क्रम से दोहों में अपना नाम प्रथम, द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ चरणों में व्यक्त किया है । इसी प्रकार पदों में भी उनका नाम कहीं-कहीं पद की अन्तिम पंक्ति में है तो कहीं-कहीं अन्तिम से एक पूर्व की पंक्ति में प्रयुक्त किया है । मीता साहब के पदों में अपना नाम छ: प्रकार से प्रयुक्त किया है -

(१) उपदेशक, (२) व्याख्याता, (३) प्रबोधक, (४) सम्बोधक, (५) प्रश्नकर्ता (६) आह्वानकर्ता ।

(१) <u>उपदेशक के रूप में</u>:- उपदेशक के रूप में मीतादास जी ने सामान्य-जन को अपने विस्तृत अगाह ज्ञान का दिग्दर्शन कराया है । उपदेश के एक शब्द उनकी लौकिक और पारलौकिक ज्ञान को स्पष्ट करते हैं । वास्तव में उपदेश के पद उनको एक महान संत सतगुरु की श्रेणी में ला देता है ।[१]

---

[१] जिन दूसमारि दीन्ह बड़ाई, तिन राम संजीवनी पायी ।
जहं कुमिता की ठकुराई, तेहि जन ते कौन कड़ाई ।।
सुनि कथा कवित्त चतुराई, हरि भक्ति न हाथे आई ।
सर चंदन लादा जाई, सोई पण्डित जानो भाई ।।
हीरा मोती ले जाई, ता दाम भेद कैसे पाई ।।
ऐसे पण्डत रे भाई, किया पढ़ी बहुत मुकाई ।।
जन मीता पारिख आई किया झूठ सांच गोहराई ।
बकु मीन का ध्यान लाई, पण्डित माया धुनि लाई ।।
+ + + +
साधो संतन मां अविनाशी ताते बत सैबरे जासी
तन सोधि ते हाथे आवै, मिटे कटे जम फांसी ।
नहीं द्वारिका नहीं उड़ीसा, ना मथुरा ना काशी ।
प्रयाग अयोध्या तहवां नाहीं, भरमिर भर वासी ।
जैसे मृग तृष्णा का देखत, फिरि फिरि आवै काशी ।
प्रान गए पानी ना पाए, भई तुम्हरि गति ऐसी ।
कहे मीता है भली गरीबी, भए अमरपुर वासी ।
सतगुरु की सेवा के किन्हे, पायी सुख की राशी ।

(२) <u>व्याख्याता के रूप में</u>:- दुनिया के लोगों के भ्रम का निवारण मीता दास जी ने अपने पदों में सरल प्रवाहमय व्याख्यान से किया है । जीवन एवं ब्रह्म के गूढ़तम रहस्यों का उद्घाटन जिसे साधारण-जन समझ नहीं पाता मीता साहब ने उनका सरल समीकरण किया है । उन्होंने अलौकिक ब्रह्म, जीवजगत और माया को सरल पदों में समझाकर अपने व्याख्याता-पद का पूर्ण निर्वाह किया है ।[१]

(३) <u>प्रबोधक के रूप में</u>:- समाज में प्रबोधक की स्थिति व्याख्याता से ऊँची होती है । जब बहुत ही सरल शब्दों में समझाने पर भी काम-क्रोध, मद लोभ में लीन मनुष्य को सच्चाई समझ में नहीं आती वह सत्य का अनुकरण करने में भयभीत होता है उस समय मीतादास जी का प्रबोधक के रूप में मनुष्यों को संकेत करने के लिये सामने आता है ।

(४) <u>सम्बोधक के रूप में</u>:-[२] सम्बोधक के रूप में मीतादास जी का नाम अपने पदों में दो प्रकार से प्रयुक्त हुआ है -

---

[१] भरम तज रामचन्द्र कौन कन्हाई, भजुले सता साई ।
रामचन्द्र सोई तू कान्हा, दूजा कौन गवाई ।।
उपज बिनसे सो नर प्रानी, वा तो साहब नाही ।
दिल दरियाव खोजु तब पावे, नाहित हाथ न आई ।।
ब्रह्म अखण्ड बिनस नहीं जाता, देह धरे वा नाही ।
कह मीता हम सत्य शब्द किया, सतगुरु केरी दुहाई ।।

[२] हरिजन हरि से होई न न्यारे, सुनि ले तत्त्व विचारा,
किरबी करे भेष नहीं धारे, बड़े रहे दरबारा ।
जल तरंग जल ही ना मिल्यिा, कौन करे तेहि न्यारा,
मन मतंग जब हाथे आए, ताही के व्योहारा ।
पांच पची सो, दृढ़ के बांधि जिन बाधा संसारा,
कथनी बदनी दोऊ बेकारा, करनी दुख बेदारा ।
साखिया भए पुकार करत है, करे न संवारा ।
कहे मीता सुज्जन के काजे, जो है अंश हमारा ।।

(१) लोक सम्बोधक के रूप में (२) आत्म सम्बोधक के रूप में ।

(१) <u>लोक सम्बोधक</u>:- लोक सम्बोधक में नाम का प्रयोग कई प्रकार से हुआ है-
(क) भाई या भ्राता के रूप में, (ख) बाबा रूप में, (ग) सखि रूप में,
(घ) साथी रूप में (च) ब्राह्मण के रूप में (छ) मुसलमान के रूप में (ज) सेठ के रूप में तथा (झ) साकठ के रूप में ।

(क) <u>भ्राता के रूप में</u>:[1]- मीतादास जी ने लोगों को अपना भ्राता कहकर उनसे निकटस्थ सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया है । भ्राता के हित के लिए जिस पर उपयुक्त बात बतायी जाती है । मीतादास जी ने उसी स्वर में भ्राता को सम्बोधित करते हुए कहा है -

(ख) <u>बाबा रूप में</u>:[2]- कहीं-कहीं सामान्य जन को अपने से बड़ा मानकर बहुत ही सम्माननीय शब्द "बाबा" जैसा सम्बोधन किया है ।

---

[1] रे भाई हरि बिसराए बूड़ा का माथे में मूला ,
बीत गए रावन राजा का तू नहीं बाकी तूला ।
गरभ वास तो हवै हिंडोला, जो आवा सो झूला ,
डार थाम पारै ना पाइहो, पार होहि गहि मूला ।
कटि गए डार मूल ना लावै, समझो गुरुव बिमूला,
जानै मोरि कगाय कहा बहु, अन्त होहि तोहि सूला ।
जाते गरभ वास नहिं छोड़ै सो समरि है भूला,
सखियाँ हासे मीत गोहरावै, दुनि करै ताकी गीला ।

[2] बाबा ५ धोखे या जभारा, गुरु शब्द न जाय बिचारा
पाखण्डहीन का भरम न राखै है संत ब्यौहारा ।

(ग) सखि के रूप में[1]:- अखिल ब्रह्माण्ड नायक परम परमेश्वर को प्रियतम तथा स्वयं को दुल्हन मानते हुए मीता साहब ने सारे संसार के लोगों को अपना सखि (मित्र) माना है । इस प्रकार का नाम प्रयोग सखाओं को सम्बोधित करते हुए भी व्यक्त किया गया है ।

(घ) साथी के रूप में[2]:- मीता दास जी ने सज्जन मनुष्यों या साधो के सम्बोधन में भी अपने नाम का प्रयोग किया है ।

(च) ब्राह्मण के रूप में[3]:- मीता साहब ने ब्राह्मण (पण्डित) के सम्बोधन में भी अपने नाम का प्रयोग किया है । ब्राह्मण से उनका अभिप्राय जाति से ब्राह्मण नहीं बल्कि उत्तम पुरुष है ।

---

[1] सखि एक देखा, अजब तमाशा अगम पंथ जब ताका,
बिनु बादर दामिनी दमकै, बिनु बरखा झर लाड़ा ।
बस्त अगिन पर साखा बाढ़ी, बिन बारि फल लागा,
चाखन हार बिन सिर देखा, बरन कवल अभिलाषा ।
धरती बरसै अम्बर भीगै, मछरी चढ़ी अकासा,
उलटा ससा सिंह का मारा, मुस बिलारी त्रासा ।
वेद किताब नहीं या लिखी, है अगम्य परगासा ।
मीता दिख परम पद पाए, ह्वै संतन का दासा ।

हस्तलिखित ग्रंथ, मीतादास

[2] साधो भजन भरोसा भारी, करता की बात न्यारी,
बिनु सतगुरु वै हाथ न आवै, पढ़ि २ मरे अनारी ।
तिरथ बरत नहीं कोई तरई, भूली रहि दुनिया सारी,
करम हिंडोले भूलि मरे सब, संत भले विचारी ।
तिन देव चौबिस अवतारा, रिषि देवा संसारी,
हरि के दास ह्वै निनारे, उनकी मति है भारी ।
कहै मीता साधो सुनि, लोभ चौरासी है भारी,
कंठी माला पहिरन छूटिहौ, मां लागिया तोहि भारी ।

हस्तलिखित ग्रंथ, मीतादास

[3] पंडित ले बड़ी पंडिताई, बरनन का ले आयी
रे बार पढ़े तोरी अनाई, बकरी मछरी जब साई

हस्तलिखित ग्रंथ, मीतादास (९००)

(ख) मुसल्मान के रूप में:-[1] देश के मुसल्मानों के सम्बोधन में उनका नाम प्रयुक्त हुआ है ।

(ज) सठ के रूप में:-[2] मीतादास जी ने कुछ लोगों को जो धर्म से विरुद्ध आचरण करते हैं उनको `सठ` के रूप में सम्बोधित किया है ।

(झ) साकठ के रूप में:-[3] संसार के कुछ भक्त बनावटी दिखावे से भगवत् भक्ति करते हैं उनको साकठ के रूप में सम्बोधित करते हुये मीता साहब अपने नाम का प्रयोग करते हैं ।

(२) आत्म सम्बोधक के रूप में: मीतादास जी ने अपने नाम का प्रयोग आत्म सम्बोधन के रूप में भी किया है ।[4]

५- प्रश्नकर्ता के रूप में: मीतादास जी ने अपने नाम का प्रयोग प्रश्नकर्ता के रूप में भी किया है लेकिन स्वयं प्रश्न करके उसका उत्तर भी उन्होंने उसी पद

---

[1] औ मियाँ दाद दरवेशा, जिन हक साबित के देखा ।

-हस्तलिखित ग्रंथ, मीतादास, पृष्ठ-६१ ।

[2] सठ बाँधि बौटे दाम का, मीलावे लाल का ।

- हस्तलिखित ग्रंथ, मीतादास, पृष्ठ-४०८

[3] काड़-काड़ साकठ चतुराई, बूढ़ि जाति तोहि जानि न जाई ।

-हस्तलिखित ग्रंथ, मीतादास, पृष्ठ-८०

[4] मनुवा काहे ते तु भूला, राम बिना है सूला,
मारग खोज मिले रघुपति का, वे सबही के मूला ।
चौबीस दस इन्हहीं की माया, दू नहीं संतन तूला,
तिन देव जाकी पार न पावै, औगत करता लीला ।
भिन्न भाव संतन को नाही, सकल गुनन के सीला,
इनकामिले सो तेहिका पावै, जो पद परम दुहेला ।
जहं नहीं ज्ञान नहीं घट दाया, नहीं प्रेम नहीं दीना,
कहे मीता ते पशु समाना, करे स्तुति औ मीला ।,वही,पृष्ठ-३४ ।

में दे दिया है ।[1]

६- आह्वानकर्ता के रूप में:- मीतादास जी ने लोगों को संसार की नश्वरता एवं सांसारिक भ्रम-जाल से विरत होकर वास्तविकता एवं सच्चाई की ओर उन्मुख होने के लिए मीतादास जी ने आह्वान किया है । इस प्रकार उनका नाम एक आह्वानकर्ता के रूप में प्रयुक्त हुआ है ।[2]

शिक्षा-दीक्षा:

मीतादास जी के समय समाज में हिन्दू और मुस्लिम दो मुख्य जातियां थीं । हिन्दू जाति में शिक्षा का उद्देश्य वेद पुरान आदि धर्मग्रंथों को पढ़कर सनातन धर्म की लीक को आगे बढ़ाना था एवं पूजा-पाठ, होम-जप आदि नित्य कर्म को मानव-जीवन का प्रमुख धर्म मानना था । मुस्लिम सम्प्रदाय मे शिक्षा का उद्देश्य कुछ दूसरा था । उस समय कोर्ट-कचहरी राज-काज की भाषा उर्दू थी क्योंकि मुस्लिम शासक का ही आधिपत्य भारत देश पर था । अत: शिक्षा के द्वारा राजकाज में हाथ बटाने की एक प्रथा थी ।

मीतादास जी ने इन दोनों प्रकार की शिक्षा से अपने आपको दूर रखा क्योंकि उनका उद्देश्य न तो सनातन धर्म की रूढ़िवादिता की लीक को आगे बढ़ाना था और न राजकाज में ही उनकी कोई अभिरुचि थी । वे तो अखण्ड ब्रह्माण्ड नामक परम परमेश्वर से मिलने के लिए व्याकुल थे । अत:

---

[1] भव जल अगम अगाधि, पार कैसे पावै हो,
नहीं केवट नहि नाव तो कौन उबारै हो ।
-हस्तलिखित पुस्तक, मीतादास,९८

[2] भरम गढ़ तोरि हम डारा है ज्ञान का बाड़ा, वही पृष्ठ १०१ ।

उन्होंने उसी शिक्षा का ग्रहण किया जिससे उनका बिछुड़ा हुआ प्रियतम (आतम राम) मिल जाय तथा इस मृत्यु-लोक से उनकी मुक्ति हो जाय । उनके सामने विद्या का प्राचीनतम आदर्श रहा -

` सा विद्या या विमुक्तये `

अन्य संतों के विषय में विभिन्न अटकलबाजियों की तरह यह कहना उचित नहीं होगा कि भीखा साहब पढ़े लिखे नहीं थे । भीखा साहब वेद के अध्ययन के बारे में स्वयं लिखते हैं -

गीता-वेदों ना लिखी, जो कुछ कह गया जुलाहा,
तीन देव जहां नहीं पहुंचे, तहां की थाही थाहा ।

इससे स्पष्ट है कि भीखा साहब ने गीता, वेद, कुरान की आयतों का गहन ज्ञान प्राप्त किया था तभी वे पूर्ण विश्वास के साथ कह गए कि कबीर का मत गीता-वेद में नहीं लिखा गया है । यह केवल मेरे और कबीर के पदों से ज्ञात होना सम्भव है ।

भीखादास जी पोथी की विद्या को कोई महत्त्व नहीं देते थे । उनके अनुसार पुस्तकों की पाण्डित्य विद्या निरर्थक थी उसे वे बोझ समझते थे ।[1]

भीखादास जी के द्वारा लिखे पदों से ज्ञात होता है कि उन्हें वेद, पुराण, कुरान आदि हिन्दू धर्म-ग्रंथों का पूरा ज्ञान था । अपने निर्गुण ब्रह्म के ज्ञान के कारण उन्होंने पौराणिक गाथाओं को एक चुनौती दी है ।

---

[1] कहै भीखा हरिदास की, सरनै पहुंचै कोय ,
ब्रह्म तिन्हे न पावई, पोथिन पढ़े का होय ।
-हस्तलिखित ग्रंथ, भीखादास, पृष्ठ-५८

एक पद में उन्होंने वेद और किताब (कुरान) में सत्य ज्ञान के न होने का उल्लेख किया है।[1] मीतादास जी कहते हैं कि मैंने व्यर्थ की पंडिताई वाली, खाने कमाने वाली निरर्थक विद्या नहीं पढ़ी मैंने योग के उस विद्यालय में शिक्षा ग्रहण की जहाँ मूल (सारतत्व) की विद्या पढ़ायी जाती है। इस मूल सारतत्व की विद्या का अभ्यास कर मन को जीतकर पण्डित बन गया तथा इस दुःखमय संसार रूपी समुद्र से पार उतर गया।[2] मीतादास जी ने उन समस्त विद्याओं को निरर्थक ज्ञान की संज्ञा दी है जो परम-ब्रह्म परमात्मा के मिलन में सहायक नहीं है। वे कहते हैं मैंने ऐसी योगपरक विद्या पढ़ी जिसके ज्ञान से उस अलख-निरंजन अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक पुरुषोत्तम राम की प्राप्ति हुई और मैं निर्वाण प्राप्त करने की स्थिति में हो गया।[3]

मीतादास जी ने पण्डितों की विद्या की बड़ी कटु आलोचना की है उन्होंने कहा है कि हे पण्डित तुम व्यर्थ ही अपने ज्ञान पर गर्व करते हो, तुम अपनी इस विद्या को पढ़कर जड़ हो गए हो इससे समाज का या तुम्हारा भला होनेवाला नहीं।[4] मीतादास जी वास्तविक विद्या उस ज्ञानार्जन को कहते हैं जिसके प्राप्त हो जाने पर मनुष्य काल का ग्रास नहीं बनता है। यह विद्या परा विद्या है अपरा विद्या से सांसारिकता का ज्ञान

---

[1] साधि एक देखा अजब तमाशा, अगम दरस तब ताका,
वेद किताब नहीं या लिखी, है अभय परगासा।

[2] मीता विद्या ना पढ़ी, पढ़ी मूल चटसार,
मन जीते पंडित भया, उतरा भव जलपार।

[3] विद्या सबै अविद्या, बिन भेंटै भगवान्,
मीता विद्या सो पढ़ी, पुरुष मिला निरबान।

[4] पढ़ी विद्या पथरा भए, लखा नहीं तत ज्ञान,
कह मीता सुन पंडिता, नाहक करत गुमान।

होता है । इससे मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती है । बिना ईश्वर का सुमिरण किए किसी विशेष जाति समुदाय की प्रशंसा करने वाली विद्या निरर्थक है ।[१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मीतादास जी इस लोक की सामान्य विद्या को कोई महत्व न देकर उस अलौकिक विद्या पराविद्या को महत्व दिया है । उसका ज्ञान भी ग्रहण किया है । अपरा-विद्या को वे सांसारिक विद्या कहकर उसे निरर्थक मानते हैं ।

गुरु:

सन्त परम्परा में प्रत्येक कवि का एक अंग-रूप गुरु की अनिवार्यता रही । ऐसी मान्यता रही है कि बिना गुरु के परा विद्या का ज्ञान नहीं हो सकता तथा बिना परा-विद्या ज्ञान के मनुष्य को ईश्वरी सत्ता का बोध असंभव है साथ ही बिना उसकी अलौकिक सत्ता के बोध के मनुष्य को मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता ।[२]

---

[१] वा विद्या सठ औरि है, जाते काल न जाय,
जाति बड़ाई, विद्या झूठी, बिन सुमिरे रघुराय ।

[२] अगम पंथ का जो कोई जाय सो या अचरिज देखै,
बिहरि उंटवै धरि ले जाय, उंटवा मरत न नावैं गाय
तब पानी मा आगी लगाय, ससा भून सिंह का खाय
सुई डार हथिया कढि जाय, वह हथिया के हाथ न पाय
बुझिहै हरिजन जो या आय, निगुरा का कुछ जानि न जाय
करु चतुराई ज्ञानी आप, नाहित नरक पहुंचिहो आय
मीता पद गावै थिर लाय, गरभ वास का चाल दुराय
सतगुरु देहिं भरम पद जाय, अगम भया कुछ सब पाय ।

निर्गुण सन्त परम्परा के कवियों के गुरुओं के विषय में पर्याप्त विवाद है परन्तु सन्त मीतादास पहले ऐसे सन्त कवि हुए है जिन्होंने अपने गुरु के नामकरण को अपने पदों में उल्लेख किया है । मीतादास जी के गुरु बिठूर निवासी हिमांचल गिरि के शिष्य श्री बेनीराम कायस्थ थे । मीतादास के सद्गुरु बेनी राम कायस्थ कानपुर जिले के सरसौल ग्राम के समीप बहरं कुरावा के निवासी थे । इन्होंने अपनी बानी में बेनीराम को अपने गुरु के रूप में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है ।[1]

मीतादास जी ने गुरु की महिमा को अपरम्पार बताया है । उनके अनुसार वही मेरा सच्चा गुरु हो सकता है जो सच्चे ब्रह्म को पाने की विधि पर बल दे । वह पण्डित, जो चतुर्युगों का केवल वर्णन करके कथामात्र सुनाता है जो निर्गुण ब्रह्म को जानता तक नहीं वह मीतादास जी का गुरु कदापि नहीं हो सकता । सतगुरु ही वास्तविक सत्य का ज्ञानबोध कराता है अत: पण्डित लोग अपने गर्व में गुरु की पहचान नहीं कर सकते ।[2] मीतादास जी कहते हैं कि बिना सतगुरु के "राम" नहीं मिल सकते । जो सतगुरु से वारी करते हैं उनको नरक की प्राप्ति होती है ।[3] सतगुरु की कृपा से ही

---

[1] गुरु मिले बेनीराम तो मंगल गावो हो ।
कबीर, नानिक कोटि तिन्हे समुझावें हो ।
कोटि काढ़ो तौल तो राह बतावें हो ।
उर हैं ज्ञानी लोग जीत तिन्हे आवे हो ।
साकठ देखि डेराव तो हां हां खावो हो ।
सज्जन का गुरु होऊं तो पार लगावें हो ।
साहब का सिर नाई गर्भ ना आवो हो ।
कहै मीता हरिदास, तिन्हे समुझावो हो ।

[2] आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत कीसंत परम्परा ।

[3] सतगुरु बिनु रामि कहै, मुख में परिहै छारि,
कहै मीता ते नरक है, जे सतगुरु ते क्वारि ।

मानव भवसागर से पार हो सकता है।[१]

मीतादास जी ने गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए बताया है कि संत और सतगुरु घर में गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए श्रम (कृषि) करके खाते हैं। भीख मांगकर खाना संतों का पथ नहीं है। सतगुरु बनावट और पाखण्ड से दूर रहते हैं। उन्हें पाखण्ड से घृणा होती है।[२] मीतादास जी ने बताया है कि सद्गुरु भी उन्हीं लोगों पर कृपा करके अपना शिष्य बनाते हैं जो श्रम करके खाते हैं।[३]

मीतादास जी ने गुरुओं के लक्षण में कहा है कि कुण्डलिनी को भेदकर प्राणवायु को ब्रह्माण्ड में स्थिर करने वाले गुरु विरले ही मिलेंगे जबकि पाखण्डी तथा बनावटी गुरुओं की संख्या अनगिनत है। वास्तविक सच्चा गुरु वही है जो त्रितापों (दैहिक, दैविक और भौतिक) से परे है तथा अपने शिष्य को इससे परे रखता है।[४] सच्चे गुरुओं का लक्षण बताते हुए मीता साहब कहते हैं कि उनको न तो किसी प्रकार की चिन्ता व्यापती है न जीवन में कभी ज्वर, बुखार आदि उन्हें सताती है। इस नश्वर शरीर से प्राण त्यागते समय वे प्रसन्नतापूर्वक अपने प्रीतम (ईश्वर) के प्यारे हो जाते हैं।[५]

---

[१] सतगुरु केवट संग ले, अथहा पैठ थहाई
कहै मीता सच्चे तरे, या बिधि पारे जाई।

[२] संतशाह गृह मां भए, किरषी कै कै खाय,
कहै मीता है भेष का, सतगुरु जा पतियाय।

[३] बिना उबीला चाकरी, सही कहां ते होय,
कहै मीता सतगुरु बिना, रामदरस ना होय।

[४] भेदी गुरु विरले हवै, अभेदि है कोटि,
कहै मीता ते गुरु हवै, तीनताप जहां दूरि।

[५] फिकिर न व्यापै, बुखनी आवै जिनकी पूर कमाई,
कहै मीता उहि दिहि, छूटते चले निशान बजाई।

भीतादास जी के अनुसार अखिल ब्रह्माण्ड नायक परब्रह्म "राम" सभी देवताओं के भी देवता हैं। करोड़ों सूर्यों का प्रकाश जोड़कर भी उस ब्रह्म के तुल्य प्रकाश की समता आंकी नहीं जा सकती है। ऐसे परब्रह्म परमेश्वर की पहचान सतगुरु की सेवा से ही सम्भव हो सकता है।[1]

भीता साहब गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए बताते हैं कि सतगुरु ने हमें उस अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक सुन्दर अलौकिक रूप का दिग्दर्शन कराया है जो निर्गुण हैं, अविनाशी हैं।[2] गुरु की कृपा से शरीर का शोधन करने का साधन समझनेवाला ही उस अलौकिक परब्रह्म को पा सकता है।[3] भीतादास जी को सच्चे गुरु बेनीराम जी आसानी से तुरन्त ही नहीं मिल गये। सच्चे गुरु को प्राप्त करने के निमित्त उन्हें बड़े कष्ट उठाने पड़े। भीता साहब लिखते हैं कि जब मैं सर्वप्रथम सन्यासी बनने के निमित्त एक गुरु की शरण में गया तो वे सच्चे गुरु न होकर एक पाखण्डी थे। ऐसे पाखण्डी की हमें बहुत समय तक सेवा करनी पड़ी। मेरी सेवा से वे संतुष्ट न हो सके क्योंकि उन्हें रुपये की आशा थी। वे जैसे पाखण्डी थे वैसा ही पाखण्ड का उपदेश देते थे। हमारे समझ में उनका एक भी उपदेश नहीं आता था। अन्त

---

[1] कोटि भानु छवि ना जुरै, ते देवन्ह के देव
सो भीता पहचानिया, सतगुरु केरी सेव।

[2] रूप अनूप महब्रह्म का, काया धारी नाथ,
तन सोधै सो पाइया, सतगुरु दई बताय।

[3] सतगुरु सरनै जाय तो, मन न डोलाय हो।
गुरु देवन के देव भाग्य ते पावै हो।

में जब हमें सतगुरु बेनीराम जी मिले तो वास्तविक तत्व-ब्रह्म का ज्ञान हुआ ।[1]

किंवदन्तियां:- किंवदन्तियों को प्राय: ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं मिला करता । मीता साहब के बारे में भी बहुत सी किंवदन्तियां उनके शिष्य समुदायों में प्रचलित हैं । कहा जाता है कि एक बार अवध के नबाव ने मीता साहब की शिकायत अपने दरबारियों से सुनी जो उनकी प्रसिद्धि से ईर्ष्यालु थे । उसने सिपाहियों के द्वारा मीतादास जी को पकड़वाकर कैद में डाल दिया । वाद-विवाद करने पर जब उसे मीतादास जी के आध्यात्मिक शक्ति का परिचय मिला तो वह बहुत लज्जित हुआ उसने उनको ससम्मान कैद-मुक्त कर दिया । मीता साहब ने स्वयं इसका उल्लेख किया है ।[2]

व्यवसाय:

मीता साहब के समय उत्तरी भारत में वर्ण व्यवस्था पूरी तरह कायम थी । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अपने-अपने जाति के अनुसार कार्य करते

---

[1] प्रथमै जब हम भयेन उदासा, ऐसै भेष जान हरिदासा
बहुत दिना बैठे तिन पासा, उनकै सो माया की आशा
जो जैसा सो सोई बतावै, हमरे मन कुछ एक न आवै
पाछिल अंकुरा आय जनावा, बड़ी भाग्य ते सतगुरु पावा
तब ठगियन का दूर बहावा, चोर साव जब नजरी आवा ।

[2] बहु दिनन मे यहै जनावा, तब सब जन हमरे निकटै आवा,
तत्त बयान तब उन्हें सुनावा, झूठ सांच उन्हें लख पावा ।
जब ठगियन का डिंभ गिरावा, धायि फिरे राजा गोहरावा,
तब हम राजा का समझावा, ह ठग हरि का गिरही पावा ।
सत्य सत्य राजा मन आवा, मै कायल तब पार न पावा,
किसान धोब जो खेत बनावा, ऐसै सब मिल भेष बनावा ।
जनाउर धोखा देख डरावा, अंधरिन भेखिन का सिर नावा,
संत संगति कै मगन डिगावा, कहैं मीता हम हरिका पावा ।

थे । मीता साहब जाति के वैश्य होने के कारण किरषी या उद्यम व्यापार करते थे जो वैश्यों का मुख्य व्यवसाय है । यही कारण है कि उन्होंने सन्त गति को प्राप्त करने का साधन उद्यम (किरषी) बताया है । ईश्वरी सत्ता से मिलने का मार्ग भी किरषी (उद्यम) ही है ।[१] केवल भिक्षा-वृत्ति तो अपना जिवीकोपार्जन करने का साधन है । पुराने सन्तों का उल्लेख करते हुए मीता साहब कहते हैं कि सभी महान व्यक्ति व्यवसाय (उद्यम) कृषि करके ही महान सन्त बने ।[२] मीतादास जी उद्यम (व्यवसाय) या चाकरी (नौकरी) पर जोर देते हुए कहते हैं कि बिना इनको किए मनुष्य सच्चाई के मार्ग पर कभी चल नहीं सकता ।

मीतादास जी स्वयं किरषी (व्यवसाय, उद्यम) करते थे एवं लोगों को करने का उपदेश देते थे उनके अनुसार जो व्यक्ति जात-बड़ाई के कारण सच्ची बात छिपाकर झूठी बात चलाने का प्रयास करता है । वह

---

[१] घर माही हरि मिले रे बौरे, बन का जाइ गंवारारे,
संतन संग प्रिती के किन्हे तन मन धन जिन वारा रे ।
सही सींग कबहु ना छूटे, छूटे हरि दरबारा रे,
जहाँ संसो तहँ मुक्ता नाही, मुक्ता राम पियारा रे ।
मुड़ मुड़ाए भेष धरि बैठे, ठगने का संसारा रे,
हरि के दास गिरही मैं उपजे किरषी के निस्तारा रे ।
जाकी हरि जीव करै सहाई, दोनों दल हथियारा रे,
राम सनिपी गृही के भीतर, मीता किया विचारा रे ।

[२] दादु नानिक संत थे, किरषी कहँ कहँ बाय,
भीखिन के मुंह कोयला लावे इनका ना पतियाय ।

सच्चा ईश्वर प्रेमी नहीं हो सकता वैश्यों को उद्यम (कृषि, व्यवसाय) शूद्रों की सेवा एवं क्षत्रियों को दया का व्यवहार करना चाहिए[१]।

इन पदों से प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जाता है कि मीतादास जी वैश्य होने के कारण अपनी पारिवारिक पेशा किरषी (व्यवसाय) करते थे। यही कारण है कि वे परिवार में रहते हुए भगवद् भक्ति एवं साधना पर बल देते हैं। मीतादास जी ने अपना सारा जीवन व्यापार करने के साथ भगवद् भक्ति एवं साधना में लगा दिया। वे गृह में रहते हुए ही योग-साधना पर बल देते हैं। वन में जाकर दिखावा मात्र के लिए साधना करने का उपक्रम करना मीतादास जी का लक्ष्य नहीं है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मीतादास जी कहे हुए पदों से व्यापार (कृषि) के प्रति उनकी विशेष आकर्षण प्रकट होता है जिससे पता चलता है कि मीतादास वास्तव में व्यापार करते थे। मीता साहब ने कहीं-कहीं बैल में माल ले जाकर बाहर बेचना, खोटा माल बिकाना, देवाला निकलना, हानि-नफा आदि का उल्लेख किया है जिससे उनके व्यवसाय रत होने की पुष्टि होती है।

---

[१] सबै शुद्र जहां भक्ति न होई, भक्ति पुनीत कहा सुख सोई
नारद व्यास कहा है सोइ, पशुवा भूले जात बड़ोई।
झूठ बतावें सांच छुपाई, साकठ का कुछ समझ न जाई,
सुज्जन इनका ना पतियाई, इनके संग नरका का जाई।
अपने मुंह करै अपनी बड़ाई, भगवत भक्त हँसि कै पाई,
ब्रह्म मिले सो ब्राह्मन कहाई, सो धना रैदासा भाई।
किरखी वैश्य शुद्र सेवकाई, दाया क्षत्रिय मूल बताई,
ह गुन मीता जेहि घर होई, ब्रह्म मिले सो ब्राह्मन होई।

गार्हस्थ्य:

मीता साहब ने लोगों को वानप्रस्थ की अपेक्षा गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करने की आवश्यकता पर बल दिया है । वे संतों को भीख माँगकर नहीं अपितु गृहस्थाश्रम में रहकर श्रम के द्वारा जीविकोपार्जन पर बल देते हैं[1]। हरिजन (सन्त) प्राय: गृहस्थाश्रम में रहकर ही अपनी साधना में लगे रहते हैं[2]। सन्त लोग पाखण्ड से दूर गृह में ही श्रम के मार्ग से साधना में रत रहते हैं[3]। वन में सन्यास के बहाने से भ्रमित होना केवल कुत्तों को प्राप्त करता है ईश्वर को नहीं[4]। गृहस्थाश्रम में रहकर नाना प्रकार के सांसारिक जंजालों से विरत होकर शान्त बैठना सम्भव नहीं है कुछ दाना के लिये उन्हें उलझना ही पड़ता है । संसार में नित्य नये-नये संघर्षों का सामना करना ही पड़ता है ।

संघर्ष:- प्रत्येक सन्त को अपने सम्पूर्ण जीवन में वाह्य और अन्त: संघर्षों का सामना करके ही अपने लक्ष्य को प्राप्त कर पाता है । मीतादास जी इसके अपवाद नहीं थे । यद्यपि उनके पारिवारिक तथ्यों का अच्छी तरह जानकारी न हो सकने के कारण परिवार के सदस्यों के कष्ट-विपदा एवं

---

[1] हरि के जीव भीख नहीं मांगे किसे के निस्तारा रे ।

[2] भिक्षा भरम मे वे परे, अधिकी जाय भुलाय,
कह मीता परतीती कर, हरिजन ए गिरही भखय ।

[3] सन्त साह गृह मां भये, किसी के वे साथ,
भौखिन का मुंह कोयला लावे, इनका ना पतियाय ।

[4] कह मीता वन का फिरे, बन में कित्ते होय ।

में ब्राह्मण है । ब्राह्मण के कोख या परिवार में जन्म लेने से मनुष्य ब्राह्मण नहीं बन सकता ।[1]

अपने अच्छे कार्यों के बल पर जो मनुष्य ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए उनका नाम गिनाते हुए भीखा साहब बताते हैं कि संत, रैदास, नामदेव, कबीर, सदन कसाई, नानक आदि संत कोख से ब्राह्मण न होकर भी कर्म से ब्राह्मण बने ।[2] भीखादास जी अपनी मान्यताओं को स्थापित करने में रूके नहीं । ब्राह्मणों द्वारा अतिशय प्रतिरोध करने पर भी वे दृढ़ रहे । उन्होंने समाज में प्रचलित वेदपाठी की ... द्विवेदी, त्रिवेदी व चतुर्वेदी की मान्यता को ध्वस्त कर दिया ।[3] उन्होंने उपाधिधारी (दुबे, तिवारी, चौबे, पाण्डेय) आदि जातियों पर तीखा व्यंग किया है । उपाधिधारी ब्राह्मण की धोखे से पूजा होती है । ये ब्राह्मण नहीं है । ब्राह्मण के धोखे से ये लोगों से अपनी पूजा करवाते रहे हैं एवं संसार के लोगों को ठगा करते हैं ।

भीखा साहब को अपने समय में ब्राह्मण में प्रचलित मांस भक्षण की प्रथा को रोकने में अत्यन्त संघर्ष करना पड़ा । यद्यपि ब्राह्मणों की मांस

---

[1] पूरन ब्रह्म जो मिले, सो जन ब्राह्मण होय,
नाहि तो सब शुद्र है, कोनो कुच्छा होय ।
जीव ब्रह्म का जब मिले, सो जन ब्राह्मण होय,
कोखे ब्राह्मण झूठ है, भूले हैं जग लोग ।

[2] करनी से ब्राह्मण भये, से जन संत भाय,
नामा और रैदास, कबीरा, सदना दिया गन्वाय ।

[3] जग ब्रह्मा का जानई, कोखो ब्राह्मण आय ।
जाका हरि ब्राह्मण कहा, सो तो नास्तिक आय ।।
भेद भाव जाने नहीं, मूरख लागे पांय,
जेहि ब्राह्मण का हरि कहा, सो तो पाया आय ।
जग में ब्राह्मण एक है, तिनका लखेन न कोय ।
उं फिर गरम ना आवहुं, कोनो कुच्छा होय ।।
दुबे, तिवारी, पाण्डे चौबे, ब ब्राह्मन न होय ।
ब्राह्मन के रे धोखे, इनकी पूजा होय ।।
इतो आहिं दुबे तिवारी, इ ब्राह्मण ना आय ।
इ तो आहि पाण्डे चौबे, झूठ जग ठग खाय ।।

परिवार की समस्याजनित उद्विग्नता का पता नहीं चलता फिर फिर भी समाज की कुरीतियों एवं धार्मिक अंधविश्वासों के प्रति उन्होंने अपनी मान्यता स्थापित करने में बहुत ही संघर्ष किया । कामादि की शारीरिक-विकृतियाँ भी उन्हें आन्तरिक संघर्ष में उलझाए रहीं ।

वाह्य संघर्ष:- भीखा साहब ने अपने समय में प्रचलित ब्राह्मण जाति की बहुत ही कटु आलोचना की है क्योंकि यह जाति जन्म से अपने आपको श्रेष्ट मानकर निम्न कर्म की ओर उन्मत हो रही थी । भीखादास जी ने ब्राह्मण की परिभाषा को नया आयाम दिया । परिणामस्वरूप हिन्दू समाज में एक भूचाल आ गया । ब्राह्मणों एवं सवर्णों द्वारा उपेक्षित एवं तिरस्कृत होने पर भी उन्होंने वर्ण-व्यवस्था के प्रति अपने संघर्ष को जारी रखा । ब्राह्मण समुदाय को जन्म से नहीं वरन् कर्म से ब्राह्मण मानना समाज को उनकी एक गम्भीर चुनौती थी । अन्त तक उन्होंने सन्त-मार्ग से अनुसरण किया । सन्त मार्ग को अनुसारित करते हुये भी उससे विचलित नहीं हुये ।

उन्होंने सनातन धर्म की प्राचीन परिभाषा को खण्डन किया - "मुख में ब्राह्मण का, हाथ में क्षत्रिय का, पेट में वैश्य का एवं पैर में शूद्र का निवास कहना कहाँ तक सही है ? ये शरीरांग तो सभी मनुष्यों में होते हैं । अत: जाति प्रथा की इस परिभाषा को स्वीकार नहीं किया जा सकता ।[1]

उनके इस कथन का ब्राह्मणों द्वारा बहुत ही विरोध हुआ । लेकिन भीखादास संघर्षों से पीछे हटने वाले व्यक्ति नहीं थे । उन्होंने आगे स्पष्ट शब्दों में कहा कि जो अपने कर्म के बल से ब्रह्म का साक्षात्कार करले वही वास्तव

---

[1] मुख ब्राह्मण कर क्षत्रिया, पेट वैश्य पग शूद्र,
ह अंग सबही जग में, को ब्राह्मण को शूद्र ।

महात्मा की निंदा करने के कारण उन्हें ब्राह्मणों का कोप-भाजन बनना पड़ा लेकिन वे रास्ते से विचलित न हुए ।

' हे ब्राह्मणों जब तुम बकरी एवं मछरी के मांस को खा रहे हो तो तुम्हारे ब्राह्मणत्व पर वज्राघात हो जाय । इस संसार में कसाई कोई और नहीं तुम्ही लोग कसाई के सगे भाई हो । मूर्ख लोगों की बुद्धि नहीं है वर्णाश्रम की कथा कहकर तुमने सबका धन लूट डाला । जो खान-पान तुम्हारा है वही मांस एक डोम का है तो किस प्रकार वह तुमसे छोटा है । शरीर में जनेउ एवं चन्दन धारण करके, अपने नाकों को दबाकर तुम पवित्र दर्शाने का उपक्रम करते हो । तुम्हारे ये सारे ब्राह्मणत्व के उपकरण बहुत सस्ते में मिलते हैं । तुम वेद पढ़ते हो लेकिन उसका भेद कुछ भी नहीं जानते ।'[1]

ब्राह्मणों की मांसाहारी प्रवृत्ति की निंदा करते हुए भीखा साहब कहते हैं कि -

' हे पण्डित जी तुमको कौन सी बड़ाई मिल गई जिसके भ्रम में

---

[1] रे बजर पड़े तोरी बम्हनाई, बकरी मछरी जब खाई ।
और का कस कहे कसाई, तू तो वाही का भाई ।।
बरन सुनाय जगत सब मूसो, अंधरे का सूझै नाही ।
तू खावै सो डोमरा खावा, तोहि ते घाट काहे आही ।।
पहिरु जनेउ चन्दन दिन्हा, न कुवा दाबा सुचिकाही ।
यहै बिसात हवै बम्हनया, दमरी माही सब आही ।।
वेद पढ़े कुछ भेद न जाने, उनिम का ले पढ़ि नाही ।
वेद पढ़े कोउ मुक्ति न पावै, करम फांस वेदो आही ।।
फांसि विष्णु महेशो ब्रह्मा, असुर देव मुनि जनु आ ही ।
चौबीस दस जन सगरे लूटे, बचे सन्त राम आही ।।
जाने काह विषै मद प्रानी, संत बरोबर कोउ नाही ।
जिनते जुदा नहीं अविनाशी, कोई मिलि सोई आही ।।

तुम भूल गए । तुम्हारे राजा होने का भी कोई बहुत बड़ा महत्त्व नहीं है क्योंकि यह सपने की छांह के समान है कभी भी विनष्ट हो सकता है । तुम गर्व मत करो । जिस ब्राह्मण की कुलीनता विश्वविदित है वह तुम नहीं हो । वे ब्राह्मण तो रैदास, कबीर, पीपा और मीराबाई है । तुम्हारे समान इस दुनिया में कोई दानव नहीं है तुम व्यर्थ ही अपने आपको कुलीन कहते हो । तुम तो एक कसाई हो क्योंकि बकरी मारकर उसका मांस भक्षण करते हो । जब चित्रगुप्त तुम्हारे कर्मों का लेखा-जोखा मांगेगा तुमसे जवाब देते न बनेगा । इन उपाधिधारी ब्राह्मणों को अपने किए गए दुष्कर्मों के कारण तुम्हें सुअर, कुत्ते आदि निकृष्ट जीवों के रूप में जन्म लेना पड़ेगा ।[१]

इनको केवल ब्राह्मणवाद से ही नहीं वरन् अपने समय में प्रचलित सभी आडम्बरों, अन्धविश्वासों से संघर्ष करना पड़ा । झूठे गुरु जो ईश्वर भक्ति को केवल एक खिलवाड़ एवं हंसी-खेल समझते हैं उनकी आलोचना करते हुए मीतादास जी कहते हैं कि -

ईश्वर भक्ति हंसी खेल नहीं है यह बहुत कठिन है । ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग बहुत दुष्कर है । नाचने-गाने से यह प्राप्त नहीं हो सकेगा ।

---

[१] पाण्डे कौन दीन बड़ाई, तू जनि करम भुलाई ।
का भए राजन का थापे, या सपने की छांहि ।
जे ब्राह्मन का हरिजीव थापा, सो ब्राह्मन तुम नाही ।
वा ब्राह्मन रैदास कबीरा, पीपा मीराबाई ।
तुम सा दानव और कौन है, नाव धरा कुल नाई ।
मारि बकरिया खाओ सगोती कैसा होई कसाई ।
चित्र गुपित करो जब लेखा, पूछे जुवाब न आई ।
सुकर स्वान जिनक मा होहो, मीत कहे की गोहराई ।

-मीतावाणी, हस्तलिखित पुस्तक, पृष्ठ-१०४ ।

मूर्ति पूजा, तीर्थ-स्नान एवं पूजा-व्रत के निष्फल उपायों से वह प्राप्त नहीं हो सकता । छापा, तिलक, माला आदि का आडम्बर व्यर्थ है । झूठे गुरु द्वारा कान फुकवाकर झूठे ईश्वर मंत्र की प्रतिष्ठा का वह अधिकारी नहीं हो सकता । इनकी मान्यता है कि ईश्वर नाना प्रकार के बनावटी प्रपंचों से अप्राप्य है उसकी प्राप्ति का मार्ग सच्चाई और योग का है ।[1]

हिन्दू-समाज में फैली कुरीतियों के साथ-साथ मुस्लिम सम्प्रदाय के अंध-विश्वासों, आडम्बरों की भी उन्होंने भर्त्सना की है । मुसलमानों के मक्का की मस्जिद को वास्तविक मक्का न समझकर मन के अन्दर उन्होंने उसे खोजने को कहा ।[2] स्पष्ट है कि उनकी इस उक्ति से पीर और मौलाना कितने उद्विग्न हुए होंगे अत: मुसलमानों के समक्ष अपनी मान्यताओं को

---

[1] बहुत कठिन है भक्ति दुहेली, या नाहीं ऐसी वैसी ।
गाए नाचे ना मिले, याकी बसी अगम अपार रे ।
पाहन पूजे ना मिले रे, ना वा तिरथ न्हाय ।।
व्रत किए ना पाइये, सठ नाहक को उपाय रे ।
छाप तिलक और माला रे, यह भक्ति ना होय ।
कन फुकवा उदिम करो, तेहि मात बैरि दुख कोई रे ।
अंधे का अंधा मिल रे, पथ बतावे कौन ।
चढ़ि पाहन की नाव रो, भव सागर बूढ़े लोग रे ।
तिरिया चाहे रूप का रे, कामी चाहे काम ।
लोभी चाहे दाम का, हम चाहे सतनाम रे ।
मन जीते हरि पाइये, सो करिहै बिरला बीर रे ।
सत गुरु सेवे पाइए रे, प्रेम भक्ति का भेद ।
औना गवना मिटै, जं भैंटे पुरुष अलेख रे ।
मीता साँच पुकारहिं रे, शब्द न बुझै कोय ।
जो शब्दा पहचानि है, तेहि जियत परम पद होयी रे ।

[2] मन मक्का का खोजकर, सच्चे मिले खुदाय ।
कह मीता तज बदी का, अब ना मीता जाय ।

स्थापित करने में मीता साहब को बहुत ही संघर्ष करना पड़ा ।

झूठे पीर, औलियों को धिक्कारते हुए वे कहते हैं कि सच्चे मनुष्य को ही ईश्वर का दर्शन प्राप्त हो सकता है।[१]

मुसलमानों की मांसाहारी प्रवृत्ति की आलोचना करते हुए मीतादास जी कहते हैं कि ईश्वर तो प्रत्येक मनुष्य के शरीर में रहता है तुम क्यों जीव का वध करते हो । इस प्रकार से अप्रत्यक्ष रूप से ऐ मुसलमानों तुम ईश्वर का ही वध करते हो वह तुमसे कैसे प्रसन्न रह सकता है।[२]

पण्डित और मुसलमानों दोनों की जीव-हत्या पर व्यंग करते हुए मीता साहब कहते हैं कि ऐ पण्डित-मुसलमानों तुम जो यह जीव पर छुरी चलाते हो उसके बदले में तुम्हें नरक अवश्य मिलेगा।[३] धर्म के प्रवर्तक दरवेश पैगम्बर आदि की जीव-हिंसा पर टिप्पणी करते हुए मीता साहब कहते हैं कि ऐ दरवेश जी आप अपने आपको दरवेश कहते हैं लेकिन बकरी को मारते आपको दया नहीं आयी । साहब ईश्वर सच्चा है उनके दरबार में तुम प्रवेश नहीं पा सकते।[४]

---

[१] जेहि बंदे के साचु है, अल्लाह तहाँ हजूर ।
मेहर बिना न पावई, मेहरबान वा पीर ।।

[२] साहब सब महलन बसे, तू केहि करे हलाल ।
जेही बंदे तेही मारे, क्यों कर होई हुलाल ।।

[३] नेकी भीश्त बदी है, दोजख तेरकीक करो रे भाई ।
मुल्ला पाण्डे दोउ भुलाने, जीव पर छुरी चलाई ।।

[४] बकरी मारत दाद न लागा, नाउ धरा दरवेश ।
कहे मीता साहब है हक्क, तहाँ न जाइए पैश ।।

कबीरदास जी के पश्चात् मुसलमानों को सीधे शब्दों में डांटने फटकारने वाले मीता साहब हुए । उन्हें कट्टरपंथी, काजी, मौलियों से निरन्तर संघर्ष करना पड़ा । वे दूसरों को दुःख देने वाले मुसलमानों से कहते हैं कि जो किसी दूसरे को दुख देता है वह नरक में पड़ता है ।[1]

मुसलमान लोग इस्लाम धर्म को न मानने वाले को काफिर कहते थे । मीतादास उनकी इस परिभाषा का खण्डन करते हैं कि काफिर वही है जो ईश्वर के आदेश को न मानकर जीव-हत्या करता है । ऐसा हिंसक मनुष्य जिसकी उपासना करता है उसी जीव का वध करता है । ऐसे मुसलमान को स्वर्ग कभी नसीब नहीं हो सकता ।[2]

जिसको हिन्दू लोग नरक कहते हैं मुसलमान उसे दोजख कहते हैं । हिन्दू स्वाहा करते हुए यज्ञ हवन करते हैं लेकिन उन्हें कुछ समझ में नहीं आता[3] । जो काजी मुसलमान केवल ऊपरी मन से, ओछी भावना से, दिखावट के रूप में उपासना करते थे उनकी आलोचना करते हुये मीता साहब कहते हैं कि ऐ मुसलमानों यदि तुम्हारा मन एकाग्र नहीं है, तुम्हारा मन तुम्हारे वश में नहीं है तो कुरान की आयतों को पढ़ने से तुम्हें कोई लाभ न हो सकेगा । तुम दुनिया को दिखाने के लिए रोजा रहते हो, आठो वक्त की नमाज़ पढ़ते हो ।

---

[1] दोजख मे तेइ परै, जे काहू दुख देंइ ।
कह मीता दरगाह में, भला लफज उस होइँ ।।

[2] काफिर ते कहावइँ, जे जीव जबह करावै ।
जेहि ध्यावैं तेहि मारै, भिश्त की आशा लावै ।।

[3] दोजख नरक बतावइँ, हिन्दू मुसलमान ।
कहै मीता स्वाहा करत है, परत नहीं कुछ जान ।।

वास्तव में यह खुदा की इबादत नहीं है । यदि तुम अपनी पांचों इन्द्रियों का दमन करो तथा जीवों पर दया करो तो मक्का का दर्शन तुम्हारे हृदय में ही हो सकता है । अगर तुम्हारे अपने शरीर को भुलाने से ईश्वर की प्राप्ति हो जाय तो समझ लेना तुम्हारा कलमा पढ़ना सही है ।

दूसरे के प्रति बुरा व्यवहार ही नरक और काफिर होने की पहचान है । अगर तुम्हें यह बात समझ न आयी तो तुम्हारे कुरान की आयतों का पढ़ने से कोई लाभ नहीं । जो ईश्वर सदा सब जीवों के भीतर रहता है उसका तुमने वध किया और पुन: जग को दिखाने के लिए तुम उसकी बंदगी करते हो । तुम्हारे ऐसे विपरीत कार्य से क्या फायदा क्योंकि उसको यह पसन्द नहीं है । अन्त समय में जब तुम्हारा इन्साफ होगा उस समय तुम क्या जवाब दोगे । हे मेरे मुसलमान मित्रों अचेत होना बुरा है । अत: अभी से सावधान हो जाओ । तुम लोग कहते हो कि मारकर खाना तुम्हारे धर्म में लिखा है । यह सफेद झूठ है । अपने पैगम्बर मुहम्मद साहब को देखो - गाय मारना तो दूर उन्होंने कभी हरी जिन्दा लकड़ी भी नहीं तोड़ी है । अत: ऐ मुसलमानों तुम सच्चाई के रास्ते पर आ जाओ[1] । इस प्रकार हम देखते हैं कि

---

[1] मियां मनु हाथ नही है, का भए बैत कहे है ।
रोजा रहे नेवाज गुदारे, इ तो दीदार नही है ।
पांचो मारे जीव उबारे, तो मक्का दिल ही है ।
तन बिसरावे अल्ला पाए, कलमा तबै सही है ।
दोजख कौन, कौन कुफराना, का भए बैत कही है ।
दोजख, बदी कुफराना, कुफ्र न परत तो ही है ।
हरदम है सब कै भीतर, सो मारा तुमही है ।
का भए किए बंदगी तेरे, जो वा राजी नहीं है ।
आखिर होय जुवाब देन का, तेरा निसाफ होई है ।
तातें हो हुसियार रे भाई, गाफिल होन बुरा है ।
लकड़ी हरी नहीं तोर मुहम्मद, कब गइया मारा है ।
डरते रहो खुदाय असह का, तु का मने धरा है ।
गुरु पीर तिनहो को कहिए, जोन मिलावे दीव है ।
नेकी देई, बदी का कहावे, मिल रहे तीन ही है ।
का हिन्दू का मुसलमान, रचिया आदि सबहि है ।
कह भीखा सोई सांचा बन्दा, जिसे खुदा नहीं है ।

चाहे हिन्दुओं की मूर्ति-पूजा, तीर्थ-व्रत आदि का आडम्बर हो अथवा पण्डितों की ओछी उपासना पद्धति हो या मौलवियों की मांसाहारी प्रवृत्ति सबकी इन्होंने कड़े शब्दों में तीक्ष्ण आलोचना किया है । समाज को एक स्थिर दिशा देने वाले इन उपद्रवी पुरुषों के आडम्बरों को तोड़ने में मीता साहब को बहुत ही अधिक बाह्य संघर्ष का सामना करना पड़ा । दूसरे शब्दों में कबीरदास जी के बाद सामाजिक कुरीतियों से संघर्ष कर संत विचारधारा को आगे बढ़ाने वाले मीतादास जी प्रमुख संत हुए ।

<u>अन्त: संघर्ष:-</u> मध्यकालीन भक्ति परम्परा में मन और उसमें उत्पन्न होने वाले काम क्रोधादि विकारों को साधना के मार्ग में बाधक माना गया है और उनसे युद्धस्तर पर निपटने की आवश्यकता पर बल दिया है । यही परम्परा मीता साहब में भी मिलता है । काम, क्रोध, लोभ एवं मृत्यु भय ने उन्हें काफी पीड़ित किया । अपने किए गये पापमय कर्मों के प्रति उनके मन में अगाध दुख भी था । अपने कार्यों के प्रति उनके में हीनता की ग्रंथी थी जो प्राय: उनके स्वरों से फूट पड़ती थी ।

मीतादास आन्तरिक संघर्ष की स्थिति में बहुत परेशान है । वे बार-बार अपने असंयमी मन को एकाग्र करना चाहते हैं लेकिन वे सफल नहीं हो पाते हैं क्योंकि यह मन बहुत ही चंचल है । वे अपने असंयमी मन को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि -

ऐ मन तुम अन्तर्यामी ईश्वर का भजन करो तो तुम्हारे सारे दुख दारिद्र्य समाप्त हो जायेंगे । काल सदा तुम्हारे सर के ऊपर मंडरा रहा है । वह तुम्हें अपना शिकार बनाने की ताक में है । मीतादास जी को सदा मृत्यु का डर सता रहा है । ऐ मन संत-संगति की अमर-वाणी को समझो और कटु वचन बोलना छोड़ दो ।

देवता, मुनि, पीर, पैगम्बर आदि सभी की मृत्यु खींच ले गयी । वही इस संसार में बचे रह गए जिन्होंने ईश्वर का नाम लिया । मृत्यु ने सारे संसार को काल के जंजीरों में बांध रखा है जो ईश्वर पर भरोसा रखेगा वही बचेगा नहीं तो सबका नाश निश्चय है । ऐ मन जो पांच इन्द्रियों और उनकी पचीस लिप्साओं का दमन करेगा वही इस भव-सागर से पार उतरेगा नहीं तो अभिमानी पुरुष नरक में पड़ेगा ।[१]

काम और क्रोध से वे बहुत ही पीड़ित हैं क्योंकि ये दोनों उनको नरक के द्वार पर ले जाते हैं । उनसे अपने मन को सावधान करते हुए गीता साहब कहते हैं कि -

ऐ मन काम और क्रोध को पकड़कर इनका नाश कर डालो ये भागने न पावे । ये दोनों बहुत दुष्ट हैं । ये यम में रहते हैं और इनमें यम का निवास है अर्थात् ये ही मृत्यु का कारण है ये ही हमारे और ईश्वर के बीच भेद पैदा करते हैं । माया और मोह के ये दो भाई हैं ये सभी निर्लज्ज

---

[१] रे मनुवा भज ले अंतरजामी, छूट नाय दुख जानी
करै सिकार काहु जी ऊपर, तोहि परे ना जानी ।
बानी बूझ संत संगति की, छाड़ि देव विषय बानी ।
होम अनंद सबै विधि मंगल, हमें परी है जानी ।
सुर मुनि पीर औलिया ज्ञानी, जम खाए सब प्रानी ।
बाचे तेई नाम जे पागे, कह लग कहौं बखानी ।
पतिशाह बहु उमरा सैयद करै न तिनकी कानी ।
अबहु चेतु समय भल पाए, जनि बहै बिनु पानी ।
बांधा सकल जहान जंजीरन, चौरासी दुख खानि ।
कुशल परै जो निश्चल बावै, नाहीं त बात नसानि ।
लोक वेद कुल की मर्यादा, नाकर तिनकी कानि ।
काढे बरि है कानि काहु की, जा दुख पावैं प्रानी ।

हैं इन्होंने ब्रह्मा, विष्णु, शंकर आदि सबको लूट लिया है ।[1]

ऐसा लगता है भीतासाहब को यम बहुत परेशान कर रहा था । वे अपने मन को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि ऐ मन तुम "राम" को क्यों भूल गए हो उसके बिना तुम्हे कष्ट ही कष्ट मिलेगा । तुम उस पंथ को खोजो जिसमें तुम्हें ईश्वर की प्राप्ति हो जाय । वहीं मार्ग सारे पंथों का मूल मार्ग है । चौबीस अवतार और दशावतार सब इन्हीं पाखण्डियों की माया है जिसमें लोग भ्रम रहे हैं । संत लोग इस पर विश्वास नहीं करते हैं । भीता दास उस अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक के महत्व को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि तीनों देवता उनके महत्व को समझ नहीं सकते हैं ।

ये जन्म से बहुत भयभीत हैं वे यमराज से बचने के लिए अपने मन को समझाते हुए कहते हैं कि - ऐ मन ऐसा अवसर फिर तुम्हें कभी न मिलेगा । तुम राम का भजन कर लो नहीं तो तुम्हें पश्चाताप करना पड़ेगा । बहुत भाग्य से तुम्हें मनुष्य का शरीर प्राप्त हुआ । अतः ईश्वर भजन करो । कभी भी धोखा नहीं खाओगे । भगवान के शरण में जाने पर वे तुम्हारा संरक्षण करेंगे । यमराज के कष्ट से तुम बच जाओगे । ऐ मन भगवान सभी देवों के भी देव हैं उन्हें छोड़कर तुम किधी और दौड़ रहे हो । देवी-देवताओं

---

[1] मारु रे मारु जाने नहि पावै, काम क्रोध दोनों कयारे ।
इ अमु माली, अमु इन माली, येहि बड़े दुख कया रे ।
थैं हरि जी सो अन्तर डारें, थैं नाल ले जया रे ।
माया मोह के येहैं दो भइया, सबै बराबर खया रे ।
शिव ब्रह्मादिक इन्हहि लूटे, इन्हहि विष्णु कन्हैया रे ।
रामचन्द्र सुर नर मुनि लूटे, सन्त बचै गुरु बहिया रे ।
सन्त की सरि कोउ नाहि, रामदास जिन पइया रे ।
सन्तन सोई पारभा भीता, जम की जाल छुड़या रे ।

की मृत्यु एक दिन खींच ले जायगी । उनकी जपने से तुम्हें दुख होगा ।[१]

आत्म-साक्षात्कार:

योग पद्धति में जब नश्वर जीव की आत्मा अलौकिक परब्रह्म से मिल जाती है एवं जब उसे अलौकिक जाति का रसास्वादन प्राप्त हो जाता है तो कहा जाता है कि अमुक आत्मा ने ब्रह्म से साक्षात्कार किया । योगी लोग इस परिस्थिति को आत्म साक्षात्कार कहते हैं । मीतादास जी ने ब्रह्म से आत्म साक्षात्कार की बहुत सी स्थितियों का वर्णन किया है । मीतादास जी अपने आत्म साक्षात्कार के बारे में स्थिति स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि -

मैं सर्वप्रथम अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक की ज्योति से साक्षात्कार हेतु संतों की विनम्र स्वर से वन्दना करता हूं तत्पश्चात् मन मे राम-नाम जपता हूं । पुन: रामचरित पर दृढ़ विश्वास करके गौरी, गणेश और शंकर की वन्दना करता हूं । अपने अन्तर में स्थित ब्रह्म से चित्त लगा करके मैं निष्ठापूर्वक प्रेम करता हूं । बिना उस अलौकिक सत्ता को देखे मुझे रातोदिन कभी भी एक क्षण भी विश्राम नहीं मिलता है । मेरा सारा विषय, विकार, तृष्णा, मिट

---

[१] मनु रे राम बिना पछितइहै, औसर कबहु न पइहै ।
दुर्लभ भाग्नि देह अब पाई, हरि पद भजु दगा कबहु न खइहै ।
आए सरन बहुत प्रतिपाले, जम की चोट बचैहै ।
दान अभय पद देहैं तरब हो, देखि परम सुख पइहै ।
सब देवन के देव दयानिधि, तिन्है छाड़ केहि ध्यइहै ।
और देव सब जम की त्रासी, तिन्है ध्याय दुख पइहै ।
रामचन्द्र कान्हा सो विष्ट कोटिन, ऐसे साहब का कह पइहै
कह मीता भव सब पुरुषन का, नाहित निश्चय नाके जैहै ।

गया तथा अनेक जन्मों के पाप नष्ट हो गए । जब से परब्रह्म को मैंने देखा उसी में मेरा ध्यान स्थिर हो गया अब मुझे दूसरा कुछ भी अच्छा नहीं लगता है । मुझे मेरा राम मिल गया अब मुझे यम का भय कष्ट नहीं दे सकता । मेरा प्रियतम आदि पुरुष से मिलकर मैं सोहागिन हो गया । अब इस संसार में मेरा आना-जाना नहीं होगा । उसके प्रति मेरे मन में अगाढ़ प्रेम उत्पन्न हो गया । सांसारिक विधि-विधान सब छूट गया । नींद, भूख सब दूर भाग गए । अब ईश्वर के साक्षात्कार के बाद उसके बिना एक क्षण भी आराम नहीं मिल पा रहा है । हमारी गति वैसी हो गयी है जैसे पानी बिना मछली ।[1]

मीतादास जी को केवल इतना अपने आत्म-साक्षात्कार के बारे में कहकर संतोष न हुआ । अपने योग के द्वारा परब्रह्म से कैसे साक्षात्कार हुआ उसके बारे में बताते हुए मीता साहब कहते हैं कि जब मैं प्राणवायु कुंडलिनी से होते हुए अष्टदल कमल में स्थित किया तो करोड़ों सूर्य और चन्द्रमा के समान अखण्ड ज्योति का दर्शन होने लगा । वहां पर इस भौतिक सूरज, चांद की कोई महत्ता नहीं । उस अनुपम सुन्दरता को देखकर मैं पागल

---

१ प्रथमे संतौ सीस नवाऊं, दूजे राम नाम मन लाऊं ।
गौरि गनेश महेश मनाऊं। रामचरन चित डिढ़ के लाऊं ।
चित लाय अन्तर प्रितलागी, रैन दिन पल ना परै ।
गये विषै विकार तृष्ना, पाप जन्मनि के जरै ।
निरखि मूरति गाढ़ि सुरति, तब ते आन न भावई ।
मिला मेरा जीव रामै, जम की चोट ना लावई ।
मिले पुरुष सोहाग पाए, अवनि पग तब ना परै ।
प्रेम आए नेम बावा, नींद भूखै पीर हरौं ।
भयी यौ गति मीन की ज्यों जल बिना कल ना परै ।
नैन भरि आंसु चलई, सुमति ढिग ते ना टरै ।
कहौ कासो चोट भारी, लागिहै सोई जानि है ।
कोई भजै मीतादास बिरला भाग्य पूरे ठानिहै ।

सा हो गया । दुनिया वाले मुझपर हंसने लगे । जिसको उस छवि का वियोग सताता है वही उस दुख को समझ सकता है । कहने से यह समझ में नहीं आ सकता ।[१]

सगुण भक्ति-भावना के क्षेत्र में जहां एक ओर भक्त लोग कमल के ऊपर विराजमान कल्पित ब्रह्म के साक्षात्कार का काल्पनिक दर्शन करते हैं वहीं पर भीखादास जी योगाभ्यास द्वारा मन के अन्दर ही कमल-पत्र पर विराजमान उस अलौकिक सत्ता का साक्षात्कार किया है । भीखा साहब उसी भगवद् दर्शन के बारे में वर्णन करते हुए कहते हैं कि - मैंने ईश्वर के नाम से भरी भाथी से ब्रह्म अग्नि को प्रज्वलित किया । शक्ति और युक्ति के समन्वय से मुझे औघट घाटी की प्राप्ति हुई । ऐसा होते ही मेरे मन से काम, पाप, वासना सभी समाप्त हो गए । डर के मारे दुर्बुद्धि मेरे हृदय को छोड़कर भाग गई । मेरा भाग्य उजागर हो उठा । सुन्दर सुमति मेरा मार्ग प्रशस्त करने लगी । मेरे मन के जितने भी बुराई रूपी चोर थे सब ईमानदार बनकर मेरा रास्ता आसान बनाने लगे । मेरे रास्ते का सारा विघ्न समाप्त हो गया । मैंने ईश्वर के अगम पंथ पर चलने का संकल्प कर लिया । सतगुरु इस परम कार्य में मेरे सहायक हो गए । रवि और शशि श्वास की दोनों धाराओं को मैंने सम करके साध लिया जिनका साधना पर्वत के समान दुष्कर था । ध्यान और लय (सुरति और निरति) दोनों एक होकर पद्मिनी का स्वरूप धारण करके उस अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक से मिल गयी । उस क्षेत्र में

---

[१] झलक झलके कोटि रवि शशि, सूरज चंदा तह नहीं ।
देखि छवि मैं भई बावरि, जगत हांसी तब भई ।
जेहि व्यापै सोई जानै, कहन की गति कुछ नहीं ।
अगम सीढ़ी पांव, दीन्हा, सीस दै तह चढ़ गई ।
कुंभ का जल नहि समार, सुमति ले बाढ़ी भई ।
मिटा आवा जान, सखियो, काल फांसी कट गई ।
कहै भीखा बादु तज मठ, बिना करनी सुरख नहीं ।

शेषनागजी, शंकरजी और विष्णु का स्थान नहीं है वहां पर ईश्वर का ही केवल स्थान है । वहां ब्रह्मा और उनके वेद का ज्ञान एवं कुरान के ज्ञान के द्वारा ईश्वर का दर्शन सम्भव नहीं है । वहां पर ईश्वर की कोई रूप, आकार एवं ज्योति नहीं है फिर भी उसकी सुन्दरता अगम और असीमित है । यदि एकबारी में करोड़ों सूर्य भी एकत्रित कर दिए जांय तब भी उस अलौकिक ज्योति के प्रकाश का स्थान नहीं ले सकते । क्योंकि सारी ज्योतियां उस परम ज्योति में विलीन हो जाती हैं ।[1] जिसने भी उस दिव्य ज्योति का दर्शन कर लिया उसको मोक्ष प्राप्त हो जाता है । योग के इस मार्ग पर चलना बहुत दुष्कर है । वहां पर कमल-दल पत्रों के ऊपर अखण्ड ज्योति का निवास है चारों ओर महान-महान संतों का एक समाज बैठा है । मीता दास जी कहते हैं कि मैं उस अखण्ड ज्योति को बारबार देखकर उसी में लवलीन हो गया ।[2]

---

[1] भाठी भरी नाम ले लागी ब्रह्म अगिन उद्गारी रे ।
जोर कुमति का संगम किन्हा पायी औघट घाटी रे ।
जारे मदन पाप सब जारि गए, कुमति दाढ़ि गई उरारे ।
सुमति सोगा गनि भाग लागी, दबी भाग्य हमारी रे ।
काटि कांटु कोई रोकत नाही, भये चोर सब साहेरे ।
अगम पंथ का बेड़ा बांधा, सतगुरु कीन्ह सहायी रे ।
रवि शशि दोनों सम के राखे, सोई सुमिर समाना रे ।
सुरति निरति मोरि भई, पद्मिनी नाम मिली करतारा रे ।
शेष महेश विष्नु तह नाहीं, नाहीं जग व्यौवहारा रे ।
ब्रह्मा वेद कितेब नहीं है, हुवा है सिरजन हारा रे ।
तहां नहीं जोति रूप नहीं रेखा, है छवि अगम अपारा रे ।
कोटि भानु जो होय एक घर, तबु न छोहि अनुहारी रे ।
जोतिरवी सो परम जोति भई, मिट गई आवा जानी रे ।
या मारग की चाल कठिन है, बिछल पड़ी विचारि रे ।
पदम पत्र पर आप विराजे, बैठी मजलिस सारी रे ।
जन मीता लवलीन भए तहं बारबार निहारी रे ।

[2] अब मैं पाये राम समीपी, प्रिती भली तिन्हकी ।
जाकी प्रित कटी जम बांधा, जग मां बाजी जीती ।
आन देव मेरी पूजे कछुया, उनहुका जम लूटी ।।
हम तो भए मवासी बासी, सो पदवी ना छूटी ।
पाखण्डी का अंधा पूजे, मांया चाहिदे धूती ।
सूकर स्वान कीच मां राजी, चंदन सो का प्रिती ।
सदा मलिन पंथ का जल ज्यों यो सकल का रीति ।
कबहुं न होय, पीर मन तिनका, कहि मीता अपरीति ।

मीतादास जी "राम" के बहुत निकट हो गए थे । यदि यह कहा जाय कि वे राममय हो गये थे तो अन्योक्ति न होगी । अपने राम से साक्षात्कार के बारे में वे कहते हैं कि अब मुझे राम का सामिप्य प्राप्त हो गया । उनके साथ प्रेम बहुत शुभ है । जिनके प्रेम से मृत्यु का भय समाप्त हो गया । मैं सदा उन्हीं को भजन करूंगा और देवी-देवता को मैं नहीं मेरी बला पूजनी जाय।और देवी-देवता को एक दिन काल ग्रस लेगा । मैं तो अब अवासी-लोक का वासी हो गया । यह पदवी अब मुझसे कोई नहीं छिन सकता । जो लोग पाखण्डियों को पूजेंगे उनको धूर्त माया परेशान कर देगी ।

मीतादास जी को केवल ईश्वर से साक्षात्कार से ही संतोष न था । वे ईश्वर के साक्षात्कार होने के पश्चात् कहते हैं कि मैंने ईश्वर को प्राप्त कर लिया और इस प्रकार संसार में सबसे चतुर प्रमाणित हुआ । ईश्वर की प्राप्ति के कारण अब मैं अनाशवान हूं जो देव (ब्रह्मा, विष्णु और शंकर) एवंतैतीस करोड़ कल्पित देवताओं के चक्कर में पड़ेगा उसी का विनाश सम्भव है । अट्ठासी दीप तक जो भी संसार में है उनका विनाश निश्चित है ।

चरित्र एवं स्वभाव:

मीतादास जी के सम्मदा सादा जीवन उच्च विचार (Simple

----

[1] हरि पाए पायो ठकुराई, सो पलै भा बिनस न जाई ।
जिनसे तिन तैतीसो जाई, अठासी जो जग दीप आई ।
जो उबरि सो संत कहायो, तिनकी सरि कोउ ना भाई ।
कोटिन रामचन्द्र भरे भुलाई, कोटिन कान्ह काल धरि खाई ।
एवं भागवत तिनकी तोहि, जिनकी इन्द्रिय बस ना होई ।
अर्जुन क्रोधी कान्हा विषयी, हरिरस तजा लिन्ह हन कोई ।
कहै मीता संतन जो सेई, तिनके जियत परम पद होई ।
आनि देव रटि भूलई होई, राम सिवा पूजा नहि कोई ।

-हस्तलिखित ग्रंथ, मीतादास,पद सं०-८१२

Living and high thinking) का आदर्श था । उनके चरित्र में भारत के आदर्श कृषक के साथ-साथ महान सन्तों के उच्च चारित्रिक गुण की विशेषता थी । उनका खान-पान, रहन-सहन सरल था । मांस-भक्षण एवं मदिरा पान को वे हेय समझते थे । वे स्पष्टवादी थे । गर्व उनमें लेशमात्र भी नहीं था । वे एक अनुभवी व्यक्ति थे । वे सदा मृत्यु से भयभीत रहते थे । वे संसार की सदा गलत कार्यों एवं आडम्बरों के लिए आलोचना करते थे ।

विनम्र एवं विनम्रता: - भीखा साहब संतो को परम सम्मान एवं श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे । उनको जो कुछ भी ज्ञान प्राप्त था उसमें वे संतों का ही योगदान मानते थे । भीखादास जी कहते हैं कि चौदहों भुवनों के इस संसार में सभी काम-क्रोध, लोभ-मोह से पीड़ित नश्वर जीव रहते हैं । मैं भी उनमें से एक था । लेकिन सतगुरु ने मुझे योग की विधि बता दिया जिससे मैं उस अगम लोक को पहुंच गया जहां ब्रह्म का निवास है ।[1]

भीखा साहब दीन-गरीबी की विशेषता बताते हुए कहते हैं कि जो मनुष्य गर्व के कारण सही रास्ते पर नहीं चलेगा वही नरक में पड़कर डूबेगा । कोई विनम्र स्वभाव का दीन, गरीब, जो गुरु की सहायता लेगा वही राम से साक्षात्कार करेगा ।[2] भीखा साहब भक्ति के मार्ग में अभिमान, आडम्बर आदि को एक बाधा मानते हैं । उनके अनुसार विनयी और विनम्र व्यक्ति

---

[1] चौदहपुर भवसागर, बसे ते दुखिया लोग ।
भीखा पहुंचा अगमपुर, सतगुरु दीन्हा जोग ।।
-ह०लि०ग्रंथ, भीखादास, पदसं० १२०३

[2] अभिमानी सब बुड़िहै नरक बुलबुला देय ।
कहै भीखा कोई दीन जन, गुरु मिलि रामै लेय ।।
ह०लि०ग्रंथ, भीखादास, पदसं० ५६६

ही ईश्वर के दरबार में अपना कदम रख सकता है । मीता साहब कहते हैं कि इस संसार की बनावटी मान-मर्यादा आदि का परित्याग करने पर ही मुझे अलौकिक सुख देने वाले राम का शरण प्राप्त हुआ । बिना अभिमान आडम्बर आदि को तजकर विनम्र हुए यह सम्भव नहीं था । मैं यह नहीं चाहता कि मेरा जन्म एक कुलीन परिवार में हो मैं वर्ण व्यवस्था में विश्वास नहीं करता हूं क्योंकि इसका निर्माण विशेष परिस्थितियों में कार्य के अनुरूप हुआ था जो अब केवल एक आडम्बर और अलंकार मात्र रह गया है।[१] बहुत से अवर्ण अपनी भक्ति और सुकर्मों के बल पर इस भव-सागर से पार उतर गए जबकि अपने आपको कुलीन और सवर्ण कहने वाले भय और अभिमान के कारण बीच धारा में डूब गए । बिना राम की भक्ति के सभी शुद्र हैं चाहे वह पण्डित हो या निम्न जाति का नाई । मीतादास जी आगे उदाहरण देते हुए कहते हैं कि महान संत सदन कसाई, नामदेव, कबीरदास आदि बहुत बड़े कुलीन परिवार से सम्बन्धित नहीं थे । हे संज्ञा-शून्य जीवन जाग जाओ ईश्वर की भक्ति बहुत प्यारी है जिसने इस अखिल सृष्टि का निर्माण किया है । तुम अपने स्वभाव एवं विचार को बहुत ही नम्र बना लो यदि तुम्हें इस भव-सागर से पार उतरना है । नहीं तो अभिमानी स्वभाव की नाव उस पत्थर के नाव के समान है जिसपर चढ़कर कोई इस संसार रूपी समुद्र के पार नहीं उतर सकता । बिना अपना दैन्य प्रदर्शित किए अथवा बिना विनय-स्वभाव का प्रदर्शन किये यह संसार भव-सागर में डूब जायेगा ।

---

[१] राम की शरण मिलि सुखदाई, छाड़ी लोक बड़ाई ।
जाति-पाति का मैं नहीं चाहों, ना चाहो कुलाई ।
बहुत अजाती पार उतर गये, बुड़ि गए कुलाई ।
राम भक्ति बिनु सबै शुद्र है का पंडित का नाई ।
सदना, नामा दास कबीरा, कहां हति कुलाई ।
चेतु अचेतु भक्ति हरि प्यारि, जिन या सृष्टि बनाई ।
पाहन की अभिमान नाव है, को चढ़ि पारे जाई ।
कह मीता बिन दीन गरीबी, बुड़ि जाति दुनियाई ।

-हस्तलिखित ग्रंथ, मीतादास, पद संख्या-६८

मीतादास जी कहते हैं कि मनुष्य को विनम्र होना चाहिए । लेकिन उसकी विनम्रता बनावटी नहीं होनी चाहिए । जिस मनुष्य के हृदय में दीनता गरीबी और मधुर स्वभाव का समावेश हो जाय वह हृदय धन्यवाद का पात्र है । यदि मनुष्य का स्वभाव कृत्रिम है केवल लोगों को धोखा देने की इच्छा से नम्र बनना है तो वह अर्थहीन है । यदि मनुष्य के मन के अन्दर भांग जैसे मादक द्रव्य की कलुषता है तो व्यर्थ का नम्र बनकर सबको झुककर प्रणाम करने का दिखावा करने से कोई लाभ नहीं[१] । ईश्वर प्राप्ति का अनुपम साधन नम्र स्वभाव है ऐसा सुनकर बहुत से दुष्ट प्रकृति के लोग भी विनम्र बनने का उपक्रम करने लगे । लेकिन बिना सच्ची विनम्रता के कुछ भी सम्भव नहीं है । इनकी विनम्रता तो उसी प्रकार की है जैसे मोर दिखाने के लिए तो कितना प्रेम से "मीऊ मीऊ" की मीठी ध्वनि करता है लेकिन परोक्ष में सर्प जैसे विषैले जीव का भक्षण करता है । मन के अन्दर तो कुछ लेकिन ऊपर पाखण्डियों का भेष ईश्वर से छिप नहीं सकता । यह संसार ऐसे ठगों का समूह है कालरूपी जंजीर उनके गले में पड़ी है । सच्चे सज्जन पुरुष की सच्चे गुरु से भेंट हो गयी वहां पर किसी प्रकार के शक-सन्देह का स्थान नहीं । मीतादास जी कहते हैं कि नम्रता और सज्जनता के बल पर जहां एक ओर सज्जन लोगों को वास्तविक तत्व की प्राप्ति होती वहीं दूसरी ओर दुष्टों को तत्वहीनता को ग्रहण करना पड़ता है ।

---

[१]दीनता भाग्य बड़े ते होई, धन्य२ घट सोई ।
काह भया सबका सिर लाये, मीतर भरी भंगोई ।
सुनि-नवै बहुत सठ लागे, सांचु बिना का होई ।
जैसे मोर मीऊ नै बोले, विषाहर लीले लोई ।
उपर पाखण्ड भेष बनाया, हरि ते काह छपोई ।
कालु जंजीर बेलु गर डारी, जग अभिमन के लोई ।
साचे सुज्जन का गुरु मिलिया, तहां न दुविधा होई ।
कहै मीता सन्तन तत लिन्हा, साकठ लिन्ही छोई ।

-हस्तलिखित ग्रंथ, मीतादास, पदसंख्या- १९५८

विरक्ति एवं लौलुपता:

मीता साहब के मन में सांसारिक छल-कपट, पाखण्ड आदि की भावनाओं के प्रति बहुत ही घृणा थी । यही कारण था कि उन्होंने इस बुराइयों से बचने के लिए विरक्ति का मार्ग पसन्द किया । काम-वासना आदि को वे हेय समझते थे क्योंकि ये भगवद् भजन के मार्ग में बाधक है ।

मीता साहब कहते हैं कि स्त्री और सम्पत्ति मनुष्य को अधःपतन की ओर ले जाने वाले हैं । कोई यदि नारि के पीछे पागल है तो कोई धन-दौलत के पीछे । इस संसार में सबकी यही स्थिति है कोई ऐसा नहीं मिलता जो हमें राम से मिला दे ।[1]

मीता साहब कहते हैं कि यदि मनुष्य एक ओर तो विषय-वासना में लिप्त रहना चाहता है तथा दूसरी ओर ईश्वर की प्राप्ति चाहता है । एक साथ दोनों कैसे सम्भव है । जब जीव अपने शरीर की सुधि-बुधि खो देता है तभी उसे ईश्वर मिल सकता है ।[2]

मृत्युभय:- मीता साहब के अनेक पदों को पढ़ने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि उन्हें मृत्यु का भय सदा सता रहा है । जीवों को इसी मृत्यु से बचने के लिए वे उपयुक्त मार्ग बताते है । उनका कहना है कि बिना भगवद् भक्ति के शरण मृत्यु छोड़ेगी नहीं ।

---

[1] मनु एकुं सौ फंस रहा, कोई नारि कोउ दाम ।
दूजा कहवा पाइए, जौने मिलावे राम ।।
-हस्तलिखित ग्रंथ, मीतादास, पद सं०-१२५५

[2] विषै चाहै और हरि चाहै, कैसे हरि का होय ।
देह बिसारे तब मिले, बेहुवा मीत न होय ।।
-हस्तलिखित ग्रंथ, मीतादास, पद सं०-२१८६

मीता साहब लोगों को इन्द्रिय-निग्रह की महत्ता को समझाते हुये कहते हैं कि जो पांचों इन्द्रियों को वश में कर लेता है उसे उस अविनाशी परब्रह्म की प्राप्ति होती है। वह पुन: आवागमन के चक्र में नहीं फंसता। मृत्यु का डर उसे फिर कभी नहीं होता।[1]

मीता साहब एक पद में लोगों को मृत्यु का भय दिखाते हुए कहते हैं कि तीर्थ-यात्रा और उपवास व्रत से कोई भवसागर से पार नहीं उतर सकता और न तो वेद पुराण का श्रवण ही। इस निमित्त उसका कोई उपकार कर सकता है। संतों की संगत ही केवल ऐसी है जो उसका कुछ उपकार कर सकती है। बिना संत संगति के मनुष्य मृत्यु के कठोर दु:ख से कभी बच नहीं सकता है।[2] मीता दास को मृत्यु का भय बार-बार सता रहा है। वे उस कष्टदायक मृत्यु से बचने का उपाय बताते हुए कहते हैं कि राम के बारे में हमें तभी कुछ समझ में आया जब हमने गुरु की सेवा की। माया मोह की वह फांसी जिसके कारण मैं मृतक जैसा हो रहा हूं अब टूट गयी। अब मैं मूलसार तत्व को ग्रहण कर लिया और पांचों इन्द्रिय तथा उसकी पचीसों लिप्साओं को वश में कर लिया। ध्यान और लय कोएकाकार करके हमने अमृत-रस का रसास्वादन किया। इस प्रकार मुझे ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हुई, तात्विक ज्ञान हुआ और यह संसार फीका (उदास) लगने लगा। मीता साहब कहते हैं कि वही सच्चा भक्त है जो इस मत का अनुसरण करता है। यह संसार पशु के

---

[1] पांचों इन्द्रिय बस कै राखै, तिन्हे मिलै अविनाशी।
गर्भ बास कबहुं ना आवै, टूट जाय जम फांसी ।।
-हस्तलिखित ग्रंथ, मीतादास, पद सं०-22

[2] तीरथ बरत तरै ना कोई, ना सुनि वेद पुरान।
कह मीता एक संत संगत बिनु, जमपुर होय पयान ।।
-वही, पदसंख्या-१६४

समान मूर्ख है सत्य कहने पर रूठ जाता है । ये लोग मेरी बात पर ध्यान नहीं दे रहे हैं जब यमराज आकर इन्हें अपने डण्डे से मारकर रसातल कर देगा तब इन्हें वास्तविकता समझ में आयेगी ।[१] मीता साहब तत्कालीन रूढ़ियों से ग्रसित, सनातन धर्म के कठोर परम्पराओं से पीड़ित हिन्दू एवं मुस्लिम समुदाय को उचित मार्ग दर्शन देने वाले यथार्थवादी सन्त कवियों में से एक थे और जहां एक ओर वे साधना के क्षेत्र में बहुत बड़े दृढ़ प्रतिज्ञ थे वहीं दूसरी ओर दम्भ और पाखण्ड को घृणा एवं तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे । उनके जीवन का उद्देश्य योग एवं आत्मदर्शन के मार्ग से च्युत मानव मात्र को उनका परम उद्देश्य बताना था । वास्तव में यदि हम मीता साहब के काव्य को वृहद् दृष्टिकोण से अवलोकन करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि कबीर के यथार्थ मार्ग में जितनी भ्रान्तियां और कमियां आ गयी थी उनका सही निराकरण करके उचित मार्ग दर्शन ही उनका परम लक्ष्य था ।

मीतादास जी केवल मठाधीश संतों की तरह उपदेशक न थे । कबीर पंथ की यथार्थ धारा के साथ यद्यपि उनका अटूट सम्बन्ध था लेकिन उनकी त्रुटियों को दूर करने का उन्होंने भगीरथ प्रयास किया । उनकी विचार-धारा स्वतंत्र थी । वे अपने कर्मों के द्वारा अपने भरण-पोषण का भार स्वयं वहन करना पसन्द करते थे । किसी अर्थात् श्रम करके अपना जीवन यापन

---

[१] राम गति, समुझ परै धौं कैसे, सतगुरु सेवै ऐसे ।
माया मोह की टूटी फांसी, मीरतुक होय रहु जैसे ।
मूल गहो डारन का छाड़ो बांधी पांच पचीसो ।
सुरति निरति की लागि खुमारी, पियो अमीय रस ऐसे ।
भेटि के ब्रह्म ज्ञान तब उपजै, जगु लागे तब फीको ।
सोई भक्त जो या मत पावै, माला तेरा फूठो ।
कह मीता पशुवा सठ भुले, सांच कहे चलो रुठी ।
जब जम मोगरा आई लाई, तबहीं पांखि टूटी ।

-हस्तलिखित ग्रंथ, मीतादास, पद सं०-१३१९

करना ही उनके जीवन का परम लक्ष्य था । उनका व्यक्तित्व बहुत ही सरल था । वे रामत्व को मनुष्यत्व पर अनायास ही थोपने को बुरा समझते थे । बल्कि मनुष्य अपने योगबल से रामत्व को प्राप्त कर सकता है । यह उनका अपना मत था । मीतादास न तो आदर्शवादी थे और न आदर्शोन्मुख यथार्थवाद में ही उनका विश्वास था । वे बहुत ही अक्खड़ स्वभाव के स्पष्टवादी थे । उनको इस बात की परवाह नहीं थी कि मेरी अमुक बात से अमुक व्यक्ति या समुदाय रूष्ट हो जायगा । उनको हम कर्म का सहारा लेकर ज्ञान और योग के सम्मिश्रण से भक्तिकी ओर उन्मुख होने वाले संत कह सकते हैं । सामाजिक कुरीतियों को विरोध करने में जहां एक ओर उन्होंने कहीं भी दबी दबे स्वर में अनुनय विनय नहीं किया है वहीं दूसरी ओर उसे सुधारने के लिए उचित मार्ग दर्शन भी किया है ।

मीतादास जी स्वीकार करते है कि वे कभी भी ज्ञान बोध की विद्या पाठशाला में नहीं पढ़ा फिर भी उन्होंने धर्म के मूल तत्वों का गहन अध्ययन एवं मनन किया । यही कारण है कि पौराणिक मान्यताओं की सकारण (साधारित) आलोचना करके उसे नए योग के नवीन प्रयास के रंग में रंगने की सफल कोशिश किया । उनके विलक्षण ज्ञान एवं तर्क के सम्मुख प्राचीन पौराणिक मान्यताएं बौनी हो गयी । अपने आलोचक शब्दों में चिरस्थापित `कृष्ण` को गुण्डा और `राम` को रावन के समान `दानव` की उपाधि से तिरस्कृत किया । वे अज्ञानी और जिद्दी स्वभाव के भी नहीं थे । गीता के प्रणेता कृष्ण जैसे पुरूष संत कहकर उनका सम्मान भी किया है वहीं `कृष्ण` नामक व्यक्ति द्वारा ब्रज में की गयी अनियमितताओं की उन्होंने आलोचना की है ।

सम्प्रदाय:

मीतादास जीवन पर्यन्त समाज को उपदेश देते रहे । सामाजिक बुराइयों का उन्मूलन कर मनुष्य को सत्य के मार्ग पर अग्रसर करना उनकी

वचन-वाणी का लक्ष्य था । अपने जीवन-पर्यन्त उन्होंने किसी समुदाय या गद्दी को मान्यता नहीं दिया लेकिन उनकी मृत्यु के उपरान्त उनके नाम पर मीता सम्प्रदाय का नामकरण हुआ । उनके शिष्य भिन्न-भिन्न स्थानों पर गद्दी के स्वामी बनकर मीता सम्प्रदाय को चलाने लगे । इन सम्प्रदायों में आगे चलकर कटुता और द्वेष को भी स्थान मिलता गया । उनके सात प्रमुख शिष्यों में बाबू बैरीसाल सिंह जी के अतिरिक्त सभी शिष्य परम्परा को आगे बढ़ाते रहे । इन शिष्यों में राग-द्वेष वश लड़ाई झगड़े की नौबत आ गयी । यही कारण है कि दोस्तीनगर उन्नाव में उनके सम्प्रदाय के प्रमुख शिष्य आज फूट के शिकार बन चुके हैं । दो समुदायों में मीता समुदाय विभाजित हो गया है । मीतादास जी के निर्वाण एवं उनके शिष्यों के निर्वाण की तिथियों पर उनकी समाधियों पर अलग-अलग धर्मों में बैठकर उनके वचन-वाणी का पाठ होता है । एक सम्प्रदाय के एक गुट ने उनके नाम से दोस्तीनगर में सन्त मीता गुरु द्वारा हजारों की लागत से बनवाया है । दूसरा समुदाय भी पीछे नहीं है । उसने मीता-साहित्य मर्मज्ञ ठाकुर ज्ञान सिंह के नेतृत्व में मीता साहब की समाधि स्थल पर दो मंजिला आवास गृह का निर्माण किया है जिससे उनके निर्वाण तिथि को होने वाले मेले में वह अपने अधिकार-ऐश्वर्य को व्यक्त कर सकें ।

मीता साहब ने अपने जीवन-काल में केवल दो सौ अठावन (२५८) शिष्यों को उपदेश किया । अपने सभी शिष्यों का उल्लेख उन्होंने स्वयं किया है ।[१] उनके प्रमुख शिष्यों में श्री बाबू बैरीसाल सिंह जी तत्कालिक राजा डौड़ियाखेड़ा (रायबरेली), सरजी खत्रानी, फतुहाबाद (फतेहपुर), इन्दो बीबी अग्रवालिन (लखनऊ वास), पन्नो बीबी ठाकुर कस्बा, पुरवा, उन्नाव नान्हू लोध सैयद अब्बासपुर, श्री प्रजापति तिवारी नवल (कानपुर) और बदन

---

[१] हस्तलिखित ग्रंथ, मीतादास, दोस्तीनगर, उन्नाव

सिंह चौहान, दोस्तीनगर, उन्नाव थे । इनमें केवल बाबू बैरीसाल सिंह जी को छोड़कर शेष शिष्यों ने अपने आपको सन्त-पथ से विरत नहीं रखा । इन प्रमुख शिष्यों की वचन-वाणी भी कैथी-लिपि में है जो दोस्तीनगर उन्नाव में सुरक्षित है । उनके प्रमुख शिष्य श्री प्रजापति तिवारी नखल (कानपुर) के सातवीं पीढ़ी के अन्तिम पुत्र के पास अभी भी मीता साहब के ढोलक, सारंगी, सितार, खड़ाऊं आदि सुरक्षित हैं । आज मीतादास जी के अनुयायी बहुत शिष्य हो गये हैं । वे मीतादास जी को ईश्वर-तुल्य समझ कर उनके वचन-वाणी को प्रतिदिन के क्रियाकलापों का आधार मानते हैं । मीतादास जी के शिष्यों का कार्यक्षेत्र उन्नाव, कानपुर, बांदा, फतेहपुर, लखनऊ जनपद प्रमुख है । प्रतिवर्ष मीतादास की पुरवा तहसील जिला उन्नाव में निर्मित समाधि पर प्रतिवर्ष कार्तिक पंचमी को उनके अनुयायी शिष्य उनकी समाधि के दर्शनार्थ आते हैं एवं उनकी समाधि पर तीन दिन तक वचन-वाणी का पाठ करते हैं । आज भी सम्पूर्ण परिवार मीता-सम्प्रदाय के पीठासीन गुरु से दीक्षित होता है ।

दोस्तीनगर (उन्नाव) में मीता साहब के शिष्य वदन सिंह चौहान नान्हू साहब की भी समाधि है । इन समाधियों पर भी वर्ष में एक-एक बार मेला लगता है । वहां भी मीता साहब तथा अन्त में उनके शिष्यों के वचन-वाणी का पाठ होता है ।

जैसा कि मीता साहब कहते थे उनके सभी शिष्य खेतिहर किसान या श्रमिक वर्ग के हैं । कोई भी उनका अनुयायी नहीं है जो परोपजीवी हो । कोई भी जोगिया वस्त्र पहनकर केवल भगवत-भक्ति में लीन उनका शिष्य नहीं है । और न तो धूनी को ही रखता हो जिससे मीता साहब की वचन वाणी जनमानस को स्पर्श कर सके ।

संत मीतादास जी का समाधि-स्थल
पुरवा (उन्नाव)

सिद्धि:- मीता साहब ने स्वयं लिखा है कि उन्हें गुरु सं० १७७५ में मिले जिससे उन्हें ज्ञान और सिद्धि प्राप्त हुई । इस समय उनकी अवस्था २८ वर्ष की थी । गुरु ने माया मोह की फांसी काटकर उन्हें अलौकिक ब्रह्म[1] का उपदेश दिया जिससे उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई ।

माया मोह की फांसी काटी तोड़ी बाज जंजीर
धनी मिला परिचय भई मीता भये फकीर ।। २

विराग:- मीतादास जी सच्चे गुरु की खोज में बहुत पहले निकल चुके थे लेकिन सतगुरु उन्हें सं० १७७५ में मिले । अपने वाणिज्य को त्यागकर उन्होंने वैराग्य ले लिया तथा गृह का परित्याग कर पुरवा (उन्नाव में) आकर बस गये । वहीं पर बेनीराम कायस्थ सद्गुरु से दीक्षित होकर उन्होंने वैराग्य ले लिया[3] ।

समाधि:- मीतादास जी ने सं० १८२५ में पुरवा में ही अपना यह नश्वर शरीर त्यागकर निर्वाण को प्राप्त किया । उनके शिष्यों ने पुरवा (उन्नाव) में ही उनका समाधि निर्मित किया । आज भी पुरवा में लगभग ५ बीघे जमीन पर स्थित उनकी समाधि ऐतिहासिक तथ्यों को प्रमाणित कर रहा है ।

---

[1] तब उमर बरस अठाइस की----
-हस्तलिखित ग्रंथ, मीतादास, पदसं०-३६१

[2] मीतादास, हस्तलिखित ग्रंथ, पद संख्या- ६५८

[3] वही, पदसंख्या- ६५७ ।

द्वि ती य   प्र क र ण

संत मीतादास और उनका साहित्य

संत मीता और उनका साहित्य

हिन्दी साहित्य क्षेत्र में चाहे सूरदास हों या तुलसीदास, जायसी हों या कबीरदास सभी की रचनायें विवादास्पद ही हैं । उपरोक्त किसी भी महान संत की प्रामाणिक हस्तलिखित साहित्य उपलब्ध नहीं है । उनकी रचनायें उनके शिष्यों द्वारा मौखिक रूप से कण्ठस्थ करके कालान्तर में लिपिकारों द्वारा लिपिबद्ध किये गये । प्रसिद्ध ग्रीक दार्शनिक प्लेटो के अनुसार कविता अनुकृति की अनुकृति है । इसीलिये अनुकृति की स्मरण करके लिखने से वह वास्तविकता से दूर हटती चली जाती है । क्योंकि उनमें त्रुटियों का बाहुल्य होना अनिवार्य है । यह तथ्य मीतादास के लिये अपवाद सिद्ध हुआ । मीता दास जैसे कबीर के समतुल्य संत का स्वहस्तलिखित ग्रंथ आज भी उनकी महत्ता का परिचायक है । कैथी लिपि में अपनी वचन-वाणी को लिपिबद्ध कर मीतादास जी ने तिथि युक्त हस्ताक्षर के साथ उनकी प्रमाणिकता में तनिक भी सन्देह के लिये स्थान नहीं दिया ।

संत मीता और उनकी रचनाएं:

मौखिक एवं लिखित:- मीतादास जी की वचन-वाणी के दो स्वरूप परिलक्षित होता है - (१) मौखिक (२) लिखित ।

(१) **मौखिक:-** मीतादास जी पण्डितों की तरह गद्दी स्थापना करके उनकी प्रथा को आगे बढ़ाने के लिये अपनी रचनाओं का सृजन नहीं किया अपितु भक्ति-भाव से सस्वर में भजन के रूप में शिष्यों के मन में भक्ति-भावना को जागृत करना ही उनका लक्ष्य था । अत: मौखिक रूप से सस्वर में रचे गये बहुत से पद शिष्यों के द्वारा कंठस्थ होकर पीढ़ी दर पीढ़ी फतेहपुर के समीपवर्ती स्थानों उन्नाव, झाँसी, कानपुर आदि स्थलों पर फैल गये जिनको संकलन करना कठिन कार्य था ।

—: सन्त मीता दास के हस्तलिखित ग्रन्थ के एक पृष्ठ की फोटो स्टेट कापी :—

—: संत मीता दास के हस्तलिखित ग्रन्थ के एक पृष्ठ की फोटो स्टेट कापी :—

ऐसे मौखिक पद ही सम्भवतः मीता साहब की हस्तलिखित से लिपिबद्ध न हो सके। यही कारण है कि मीता दास जी के हाथ के बहुत से पद यत्र-तत्र उपरोक्त स्थलों के सामान्य वर्ग के लोगों में आज भी प्रचलित हैं जो मीतादास जी की समाधि स्थल पर उनकी निर्वाण तिथियों को सस्वर से भजन रूप में गाये जाते हैं। ऐसा ही एक मौखिक पद आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की काव्यांग कौमुदी के दिग्पाल छंद के उदाहरण में उद्धृत है।[१] यह पद दोस्तीनगर में संकलित मीतादास जी के पदों में नहीं है। आचार्य जी से इस पद के स्रोत के सम्बन्ध में व्यक्तिगत रूप से पूछताछ पर ज्ञात हुआ कि उन्होंने किसी के द्वारा सुनकर ही इस पद को अपने ग्रंथ में स्थान दिया है।[२]

(२) लिखित:- मीता साहब ने पोथी ज्ञान का सदा विरोध किया क्योंकि पोथी ज्ञान केवल तर्क का विषय बनकर जीव को साधना से विरत कर देता है।[३] अपने वचन को पुस्तक का रूप देना केवल वचन-वाणी के ज्ञान-भण्डार को सुरक्षित रखना ही उनका लक्ष्य था। कैथी लिपि में दोहों, पदों तथा साखी शब्द आदि के माध्यम से उन्होंने अपने सम्पूर्ण ज्ञान के भण्डार में लिपिबद्ध किया। आज संत साहित्य में इतनी प्राचीन लिपि में संत का स्वलिखित ग्रंथ पाण्डुलिपि रूप में प्राप्त होना निश्चय ही साहित्य जगत में आश्चर्य का विषय है।

---

[१] हरिनाम एक साँचो, सब झूठ है पसारा,
भाई न बाप कोई, तुम संग जान हारा।
रे मान बात मेरी, मायाहि त्याग दीजे,
सब काम छाड़ि मीता, एक राम नाम लीजे।।

[२] आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, काव्यांग कौमुदी, पृष्ठ संख्या-२०६।

[३] पोथी पढ़े का होयी रे -----।
मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहासंख्या-१८६५।

लक्ष्य:- जैसा की ऊपर कहा जा चुका है मीता साहब अपने उपदेशों को लिपिबद्ध साहित्य सृजन या उनकी सुरक्षा के उद्देश्य से नहीं किया वरन् अपने उपदेशों की शुद्धता एवं पवित्रता ही उनका लक्ष्य था । उन्हें इस बात से डर था कि कालान्तर में जिस प्रकार कबीर, दादू, नानक आदि संतों की वचन-वाणियों में पाखण्डियों द्वारा जिस प्रकार स्वमत का मिश्रण कर उसके मूल रूप को विकृत कर दिया गया उसी प्रकार उनके मत में भी कहीं कोई भक्त जीविकोपार्जन हेतु उसके रूप को विकृत न कर दे । यही कारण है कि प्रत्येक ■■■■ के अन्त में उन्होंने अपने हस्ताक्षर तिथि के साथ अंकित कर दिया ।

लिपि और प्रतिलिपि:- मीता साहब की वाणी मूल मे सुरक्षित है अत: उसकी दीप अथवा हूबहू उसका नकल उतारकर किसी और नाम से प्रकाशित करने की कल्पना करने में किसी का साहस नहीं हुआ । उनकी शिष्य परम्परा में प्रसिद्ध विद्वान ठाकुर ज्ञान सिंह उन्नाव ने उनकी वचन-वाणियों की जीर्ण-शीर्ण अवस्था को देखकर कालान्तर में इसके नष्ट और विलुप्त हो जाने के भय से सन् १९३९ से उनके सम्पूर्ण वचन-वाणी को कैथी लिपि में ही प्रतिलिपि कराकर सुरक्षित रखने का प्रयास कर रहे हैं । ठाकुर साहब का प्रयास लगभग पूर्ण हो चुका है । उसकी एक प्रति उन्होंने मीता साहब के शिष्य परम्परा के मुख्य धारा के वर्तमान शिष्य श्री तिवारी जी को उन्होंने समर्पित कर दिया है । दूसरी प्रतिलिपि स्वयं उनके पास सुरक्षित है । मीता साहब के शिष्य के निर्वाण की पुण्य तिथि पर उनकी समाधियों पर इन्हीं प्रतिलिपि को पढ़कर लोगों को सुनाया जाता है । मूल प्रति को केवल दर्शन हेतु पाण्डाल में सुरक्षित रखते हैं [1]।

संकलन का संग्रह: मीता साहब का ग्रंथ हस्तलिखित होने के कारण आज

---

[1] देखिये- ठा० ज्ञान सिंह उन्नाव की प्रतिलिपि ।

भी अपनी जीर्ण-शीर्ण) अवस्था में ही अपनी प्राचीनता की उपादेयता सिद्ध करता है । भीखा साहब द्वारा हस्तलिखित ग्रंथ उनके कतिपय शिष्यों के हाथ लगा जो एक स्थान में संग्रहित न हो सका । किसी के पास १००-२०० पदों के संग्रह की कोई पुस्तक थी तो कोई सैकड़ों दोहों के कोई खण्ड का स्वामित्व बन बैठा । यही कारण है कि उनका साहित्य कानपुर, उन्नाव, फतेहपुर, झाँसी आदि स्थानों पर बिखर गया । सन् १९२५ के पश्चात् संत-साहित्य के मर्मज्ञ अपने अथक परिश्रम से उनके बहुत से पूर्ण और खण्डित पोथियों को एकत्र किये । जितना भी भीखा साहब के बचन-वाणी के पद, दोहे, साखी व शब्द आदि की उपलब्धि उन्हें हो सकी उसको सुरक्षित करने के विचार से कैथी लिपि में ही उन्होंने प्रतिलिपि किया । ५० वर्षों के निरन्तर प्रयास से उनके प्रतिलिपि रूप लगभग ३५०० दोहों और २५०० पदों का एक विशाल संग्रह उनके अनुयायियों को प्राप्त हो सका है । अतः भीखा साहब की बचन-वाणियों का संग्रह अपने आपमें पूर्ण नहीं हैं क्योंकि अभी उनके स्वलिखित और मौखिक पद अज्ञात लोगों के अधिकार में है ।

पदसंख्या तथा क्रम:- भीखा साहब की स्वलिखित बचन-वाणी में पदों तथा दोहों आदि की संख्या क्रमवार नहीं है क्योंकि विभिन्न खण्डित एवं फुटकर पदों एवं दोहों को एकत्रित कर उसे पुस्तक का रूप दिया है । ठाकुर ज्ञान सिंह ने अपने प्रतिलिपि संकलन में उनका क्रम से संख्या देकर उसको तारतम्य में बांधने का सूत्रपात किया है ।

प्रमाणिकता:- डा० सरनाम सिंह शर्मा ने किसी कवि की कृतियों की प्रमाणिकता के तथ्यों का उद्घाटन करते हुए बताया कि ऐतिहासिक दृष्टि से प्रमाणिकता के तीन मापदण्ड हो सकते हैं[1]।

---

[1] डा० सरनाम सिंह शर्मा, कबीर व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त, पृष्ठ संख्या-१०४ ।

संत गीता दास
की
हस्तलिपि में उनके जन्म
विषयक तथ्य एवं उनके निवास
का
पता
(फोटो स्टेट कापी)

[illegible]

(१) स्वयं कृतिकार की कृति सबसे अधिक प्रामाणिक हो सकती है (२) प्रामाणिकता में दूसरा स्थान उस कृति को दिया जा सकता है जिसकी प्रतिलिपि कृतिकार के जीवन काल में ही हो गयी हो और (३) इन दोनों के अभाव में किसी भी सम्बन्धित प्राचीनतम कृति को अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक माना जा सकता है ।

डा० सत्नाम सिंह शर्मा के सिद्धान्त के आधार पर भीखा साहब की स्वलिखित हस्तलिपि को दृष्टिगत रखते हुए उसकी प्रमाणिकता पर तनिक संदेह नहीं किया जा सकता है अन्तिम पृष्ठों पर उद्धृत भीखा दास जी के तिथि युक्त हस्ताक्षर उसकी प्रामाणिकता पर एक और मुहर लगा देते हैं । भले ही यह तथ्य मौखिकरूप से बिखरे उनके वाणी-वचनों पर लागू न हो लेकिन हस्तलिखित ग्रंथ को प्रामाणिक ग्रंथ के रूप में विद्वत समाज को स्वीकार करना ही होगा । भीखा साहब ने स्वलेखनी से ही अपने जन्म पद बोलने की तिथि, गुरु से प्रथम साक्षात्कार, साखी पद बोलने की तिथि एवं अपनी सम्भावित मृत्यु की तिथि का उल्लेख किया है । उनके पदों के संकलन के प्रथम पृष्ठ पर यह अंकित है । कैथी लिपि में इसका हिन्दी रूपान्तरण निम्नलिखित है -

जो इन पद का दोखी, सो नरक ते ना निकसी,
स्वाहिंद का हुकुम था सो हम कहा ।

संवत् सतरह सौ नब्बे ता साखी पद बोले -	१७९०
संवत् सतरह सौ पचहत्तर में सतगुरु मिले) तब उमर बरस अठारह की भीखा की)	१७७५
जन्म	१७५७
तब संवत् उठारह सौ पचीस भीखा के देह छूटी (छूटेगी)	१८२५

संत भीता दास
की
हस्तलिपि
में
उनके निवास
का
पता
(फोटो स्टेट कापी)

एक संकलन के प्रथम पृष्ठ पर अपने निवास-स्थान का पता बताते हुए मीतादास जी ने लिखा है कि मेरा निवास-स्थान गंगा और जमुना के बीच स्थित फतुहाबाद गांव है पोथी के खो जाने पर प्राप्तकर्ता इस उपरोक्त पते से उपरोक्त स्थान पर पहुंचा दें अन्यथा वह राम का गुनहगार (दोषी) कहलायेगा और पाप का भागी होगा । अपना पता देने के साथ-साथ उन्होंने बारहमासा, बावैं, दोहा आदि पुस्तक के उसी पृष्ठ पर उल्लेख किया है

साध मीता की गंगा यमुना के बीच फतुहाबाद तै जो
पोथी पावै और ना पहुंचावै सो राम का गुनही होय

			पृष्ठ
१ -	बारहमासे	---	४
४ -	बावैं	---	२२
२२ -	दोहा पाखण्ड पर	---	४८
४६ -	दोहा गुरु विवेक	---	८०
८१ -	हिन्डोला	---	८१

एक संकलन के प्रथम पृष्ठ पर मीतादास जी ने लिखा है कि गंगा जमुना के बीच फतुहाबाद नामक ग्राम स्थित है । यह फतुहाबाद बारा के घाट से पांच कोस तथा सुराजपुर से चार कोस दूर पर स्थित है । उसी ग्राम फतुहाबाद में निवास करने वाले मीतादास जी की `मीता के पद` नामक पोथी उपलब्ध है । ये पद १८६० में बोले थे । इस पर धनासरी, सतजी जी के पद, आरती, मल्हार, सावनी आदि की पृष्ठ संख्या दी गयी है ।

पोथी फतुहाबाद की मीता के पद गंगा जमुना के
बीच फतहा, बारा के घाट ते पांच कोस सुराजपुर
ते चार कोस पर ये फतुहा है । पद बोले सं० १७६०

१ धनादारी २२
४५ सहजी के पद ५८
३३ आरती
५१ मल्हार
५२ सावनी

संत गिरही होते हैं । इन्हे देखें सो रामे मिलै संत की आखिन की पलक नहीं परत है । जर बुरी नहीं आवत

भेष पाखण्ड है । जो इनके संगत बुरी सो राम का गुनही अधिक होइ ।

मीतादास जी के एक पाण्डुलिपि के प्रथम पृष्ठ पर पद बोलने का सम्वत् १७७५ तथा अपनी उम्र अठारह वर्ष बतलाया है । तत्पश्चात् पद, दोहा, गारी, फाग आदि के प्रारम्भ होने का पृष्ठ संख्या उद्धृत किया ।

ग्रंथ मीतादास, फतुहाबाद के जब पद बोले, तब उमीर बरस अठारह की सं० १७७५

१ पद दोहा एक ते
२५ गारी पचीस ते
७० बेलात
८० बसन्त धमार
६१ फाग
६० कवित्त
१०० रेखता

उपर्युक्त पाण्डुलिपियों के अध्ययन से यह स्वत: प्रमाणित हो जाता है कि वे सभी कृतियां जिनका उल्लेख किया गया है, मीतादास जी द्वारा हस्तलिखित हैं ।

विद्वानों का मत:- संत साहित्य के मर्मज्ञ आचार्य परशुराम चतुर्वेदी जी अपनी पुस्तक `उत्तरी भारत की संत परम्परा` में मीतादास एवं उनकी पाण्डुलिपियों का स्पष्ट उल्लेख किया है [१]। प्रसिद्ध विद्वान कैप्टेन सुरवीर जी ने भी मीता साहब की समाधि का दर्शन करके, उनके अनुयायियों से भेंट-वार्ता तथा उनकी पाण्डुलिपियों का अवलोकन कर दैनिक `आज` समाचारपत्र के माध्यम से एक लेख प्रकाशित किया जिससे मीतादास जी के ग्रंथों की प्रमाणिकता सिद्ध होती है [२]।

काव्य तत्व की दृष्टि से संत मीता की रचनाओं का विश्लेषण:

मीता साहब की वचन-वाणी में न तो कालिदास और न तो सूरदास की भांति सगुण ब्रह्म की नाटकीय अभिव्यक्ति है और न तो तुलसीदास व केशव की भांति साहित्यिक तत्वों की पुंखानुपुंख व्याख्या की अभिव्यंजना ही है । बिहारी के सौन्दर्य का वाह्याचार भी मीता साहब की वानी-वचन का मुख्य विषय न बन सका । किन्तु काव्य तत्व की परम्पराओं की पृष्ठभूमि में ऐसे पर्याप्त तत्व अन्वेषित हुए हैं जिसके आधार पर उनकी रचनाओं का काव्यकृत की कोटि में रखा जा सकता है । मीता साहब ने कवि की उपाधि के लिये वचन-वाणी का सृजन नहीं किया अपितु आभ्यांतर के गूढ़ नैसर्गिक भावों

---

[१]आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परम्परा,

[२]कैप्टेन सुरवीर सिंह, दैनिक `आज`

का सरलीकरण ही उनका परम उद्देश्य था । कबीर दास जी के पश्चात् अवधी एवं ब्रज भाषाओं में रचित काव्यों की आंचलिकता को लोक भाषा में परिवर्तित कर भीखा साहब ने उनका नवीनीकरण किया । कबीर के पश्चात् उनकी भी सरल साहित्यिक वाणी को लोक-वाणी में प्रश्रय देकर भीखा साहब ने अपनी साहित्य प्रौढ़ता का जो परिचय दिया वह अपने आपमें एक उत्कृष्ट उदाहरण है । अत: भीखा साहब की जन-वाणी में साहित्यिकता की खोज करते समय उनकी सुधारक प्रवृत्तियां वैराग्य, खण्डन-मण्डन, कुकर्मों की भर्त्सना आदि को दृष्टिगत रखना होगा अन्यथा यह अन्वेषण सत्य से परे सिद्ध होगा ।

साहित्यिक वातावरण की पृष्ठभूमि:- भीखादास जी के समय साहित्यिक प्रौढ़ता अपने चर्मोत्कर्ष स्थिति में थी । सूरदास जी का वात्सल्य प्रेम अपने भुवाल्य में विकसित होकर बिहारी के राधा-कृष्ण का श्रृंगारिक प्रेम बन चुका था । तुलसीदास जी का आदर्शवाद मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्री राम के नैसर्गिक स्वरूप को स्पष्ट करने के बजाय उनके लौकिक पक्ष को अधिक प्रतिपादित किया । जिससे उनका साहित्य समाज के विभिन्न रूढ़ियों के अतिक्रमण से बचाकर मर्यादा के पवित्रता की आवश्यकता पर बल दिया । केशव का काव्य भी साहित्य जगत की अलंकारिक रिक्तियों की पूर्ति में ही सहायक सिद्ध हो सका । कबीर दास जी के पश्चात् भीखादास तक कोई ऐसा लोक भाषी कवि न बन पाया जो कबीर पंथ की त्रुटियों का निवारण कर जन-वाणी में साधना के मार्ग को प्रस्तुत कर सके । भीखादास जी ने इस कार्य को पूर्ण करने का संकल्प किया । उनके आगमन से पहले देश का धार्मिक पक्ष मुस्लिम सम्प्रदायों के साथ विभिन्न मतों के कुठाराघात से जर्जर हो रहा था । भीखा साहब ने लोक-भाषा के माध्यम से निर्गुण संत मत को एक नयी दिशा देकर उसका परिमार्जित स्वरूप प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया ।

काव्य तत्व:- भारतीय आचार्यों ने काव्य के तत्व (१) शब्दार्थ (२) ध्वनि (३) अलंकार (४) रीति (५) गुण (६) छन्द तथा (७) रस को स्वीकार किया है।[१] पाश्चात्य विद्वानों ने काव्य के (१) भाव (२) बुद्धि (३) कल्पना (४) रूप तत्वों को मान्यता दी है।

भारतीय आचार्यों द्वारा प्रतिपादित तत्वों की मीता साहब के काव्य के संदर्भ में शिल्प विधान चतुर्थ प्रकरण में विस्तार से व्याख्या की गयी है। यहाँ हम पाश्चात्य काव्य तत्वों के संदर्भ में मीता साहब के काव्य की विवेचना करेंगे।

(१) प्लेटो का काव्य सिद्धान्त और मीता साहब:

ग्रीक दार्शनिक प्लेटो ने कला और नैतिकता (Art & Morality) के समान अनुकरण सिद्धान्त (Theory of imitation) प्रतिपादित किया। उनके अनुसार कला और कविता अदृश्य अगोचर सत्ता के प्रतिबिम्ब है। इसकी विस्तृत व्याख्या करते हुए प्लेटो (Repulick) के १० वें (x) अध्याय में कहते हैं कि कलाकार दृश्य जगत के दृश्य पदार्थों अथवा उनके प्रतिबिम्ब का छाया मात्र है वह संसार की उन क्षणिक वस्तुओं का बिम्ब चित्रित करता है जो उसके इन्द्रिय-क्षमता के अन्तर्गत है। इन्द्रिय ज्ञान की क्षमता केवल सांसारिक ज्ञान तक ही सीमित है वास्तविक ज्ञान ईश्वर की अलौकिक सत्ता में निहित है। दृष्टिगत सांसारिक वस्तुएं क्षणिक परिवर्तनशील आवागमन से सम्बद्ध है जबकि वास्तविक सत्ता अपरिवर्तनशील शाश्वत है। संसार में सौन्दर्यकिरण की नाना वस्तुएं दृष्टिगत होती हैं परन्तु परम ब्रह्म के परम सौन्दर्य का स्वरूप कुछ दूसरा ही है। वह लौकिक सौन्दर्यानुभूति से परे है। उसका सौन्दर्य

---

[१] डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी एवं डा० मदनगोपाल भार्गव, रस छन्द अलंकार निरूपण, पृष्ठ-६।

अनुपम और सत्य से परिपूर्ण है । कलाकार दृश्य जगत के सौन्दर्य का प्रतिबिम्ब रेखांकित करता है । वास्तविक ब्रह्म की वास्तविकता नहीं ।

अपने अनुकरण के सिद्धान्त के उदाहरण स्वरूप प्लेटो ने कहा है कि चारपाई या कुर्सी जिसको बढ़ई बनाता है वह केवल एक दृष्टिगत वस्तु है वास्तविकता नहीं । इस संसार में केवल एक परम चारपाई ब्रह्म की रही होगी और सभी केवल उसकी कल्पना मात्र हैं । बढ़ई जिस चारपाई का निर्माण करता है वह वास्तविक चारपाई का केवल प्रतिबिम्ब है । इस प्रकार उसके द्वारा निर्मित चारपाई सत्य से एक बार दूर हुई । लेकिन चित्रकार द्वारा चित्रित बढ़ई की चारपाई की दूरी वास्तविकता से द्वितीय स्तर की है क्योंकि उसकी कृति सत्य ईश्वर की कृति की अनुकृति नहीं अपितु बढ़ई के अनुकृति की अनुकृति है । अत: उसका कार्य सत्य की अनुकृति की अनुकृति से अधिक और कुछ नहीं है । जब कवि चित्रकार की कृति का वर्णन कविता से करता है तो वास्तविकता से उसकी दूरी तृतीय स्तर की हो जाती है ।

कवि का कार्य भी ठीक चित्रकार की भाँति है । कवि बाह्य दृष्टि से परखकर शब्दों के माध्यम से सांसारिकता को व्यक्त करता है । उसकी कविता भी केवल अनुकृति की अनुकृति है । उसका विषय और काव्य-विधि सभी सांसारिक और क्षणिक है । उससे मन की वासनायें ही उदिप्त होती हैं । मन के सुषुप्त कुविचारों के लिये उसकी कविता एक उद्दीपन है जिससे केवल सामान्य लौकिक आनन्द की अनुभूति होती है वास्तविक अखण्ड सत्ता के अलौकिक आनन्द की अनुभूति नहीं । अत: दोनों त्याज्य है ।[१]

- -

[1] The artist, he finds, is concerned with appearance only, or rather the appearance of appearance. He deals with the world which we apprehended with our eyes and ears, the world of seeming in which each object as perceived comes and goes, now seeming large, now small, now hot relatively to this, cold relatively to that, sweet at one moment, sour at another-always changing many, illusory, whereas the real is Unchanging and One. There are many appearances which we call red things, but only one Redness, the idea behind it; and there are many appearances which we call beautiful things, but only one Absolute Beauty, the reality apprehended by the mind. It is the appearances which the artist imitates, not the Reality.

— R.A.Scott-James, The Making of Literature, p.40.

होमर जैसे महाकाव्य को पढ़ना बन्द कर देना चाहिये जो वास्तव में एक अनुकृति की अनुकृति है । दु:ख और सुख को समाप्त किया जाना संत का उद्देश्य होना चाहिये । कविता का उपयोग केवल ईश्वर की स्तुति एवं महापुरुषों का गुणगान करने में ही उचित है ।

प्लेटो के अनुकरण सिद्धान्त का प्रभाव भीखा दास जी के काव्य में भी परिलक्षित होता है । कबीर, मंसूर सृष्टि-क्रम के अनुसार ब्रह्म का वेद-ज्ञान और सृष्टि सामग्री कूर्म जी के पास सुरक्षित थी । निरंजन ने कूर्म जी के तीनों सिर काट कर वेद को निगल लिया । पुन: उसके श्वास से वेद की उत्पत्ति हुई ।[1]

कबीर पंथ विचारधारा के प्रवर्तक भीखा साहब उपरोक्त कारण से ही वेद-ज्ञान को सत्य से परे समझते हैं । कूर्म जी को ईश्वर प्रदत्त वेद की सत्य से दूरी प्रथम स्तर की थी । पुन: जब निरंजन द्वारा उसे ग्रहण किया गया तब उसकी दूरी सत्य से द्वितीय स्तर की हुई और तब निरंजन के श्वास निकलकर वेद का ज्ञान चारों ओर प्रसारित हुआ । अत: ब्रह्मज्ञान से सत्य की दूरी सत्य से तृतीय स्तर की हुई जो विष के तुल्य एवं त्याज्य है । यही कारण है कि भीखादास जी वेद-ज्ञान को तुच्छ और सारहीन समझते हैं ।[2]

भीखा दास जी की मूर्ति पूजा-विषयक निष्कर्षों में भी प्लेटो के अनुकरण सिद्धान्त का रूप ही स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है । ब्रह्म के निर्गुण निराकार रूप की व्याख्या सत्य की प्रथम अनुकृति हुई । इस व्याख्या की दृश्य-जगत रूप में कल्पना अनुकृति की अनुकृति हुई । यह सत्य से दो बार दूर हटी ।

---

[1] डा० केदार नाथ द्विवेदी, कबीर और कबीर पंथ, पृष्ठ -२९५ ।

[2] (क) गीता वेदो ना लिखी जो कह गया जुलाहा ।
-भीखादास, ह०लि०ग्रंथ, संख्या- ८२१

(ख) वेद पढ़ै कुछ भेद न जानै उक्ति का ले पढ़ि जाई,
वेद पढ़ै कोई मुक्ति न पावै, कस्म फास वेदो आही ।
- वही, संख्या- ८७६

पुन: काल्पनिक सगुण रूप की मूर्तिकार द्वारा मूर्ति निर्माण द्वितीय अनुकृति की अनुकृति हुई जो वास्तविकता से तीसरी बार हटी । इस मूर्ति को ब्रह्म समझकर उपासना करना सत्य-मार्ग से बहुत दूर हटकर भ्रम को गले लगाना है ।

मीता दास जी ने प्लेटो की भांति ज्ञान को इन्द्रियों की सीमा दृश्य-जगत की वस्तु नहीं माना है । ज्ञान वही है जिससे अलौकिक ब्रह्म की सत्ता का आभास हो जाय । उसके दिव्य सौन्दर्य की अनुभूति को परख करने की क्रिया का नाम ही ज्ञान है ।[1]

मीता दास जी ने प्लेटो की भांति सुख और दुख दोनों को निर्मूल करने की आवश्यकता पर बल दिया क्योंकि ये विभिन्न वासनाओं के उद्दीपन के कारण है जिससे मनुष्य को पथभ्रष्ट होने का सदा भय लगा रहता है । प्लेटो ने काव्य में ईश्वर के अवतारवादी दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं किया है । ईश्वर को नाना देवी-देवताओं के कल्पित रूप में साधारण नाशवान मनुष्य की भांति युद्ध करना, सुख-दुख का आश्रय लेना, लोगों को झूठी कल्पना से भ्रमित करना है । प्लेटो के अनुसार काव्य में ईश्वर और उसके कार्यों की झूठी अभिव्यक्ति ईश्वर का क्रोध में प्रतिशोध लेना, प्रेम घृणा के कठोर रूप का प्रदर्शन, देवी-देवताओं के रूप में युद्ध की विभिषिका में कूद पड़ना निन्दनीय है । निर्मल ब्रह्म को बुराइयों के प्रस्तुतकर्ता के रूप में वर्णन करना कहां तक उचित है ? ईश्वर को विभिन्न काल्पनिक रूपों में कल्पना करके पूर्ण या आंशिक रूप से उसका कल्पित चित्र इंगित करना घृणित काव्य का रूप प्रदान करना है ।

---

[1] पाखण्डी का गुरु कहै, पाहन का कहै देव ।
राम बिसारै पूतन निंदै, अंध ना जाने भेव ।।
विद्या सबै अविद्या, बिनु भेटै भगवान ।
मन मीता पंडित भया, पुरुषा मिला निरवान ।।

-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, पदसंख्या-३३६

लौकिक विश्व के परे अलौकिक विश्व के बारे में झूठी कल्पना असहनीय है । ऐसे कवियों को मृत्यु के दुसह दुःख का दण्ड भी अधिक नहीं है । सत्य की इस कसौटी पर होमर और हैसीड जैसे ग्रंथ कभी खरा नहीं उतर सकते हैं । सुख और दुख की भावनाओं की अभिव्यक्ति से युक्त काव्य घृणित और त्याज्य हैं क्योंकि वे सांसारिक नाशवान वस्तुओं का चित्रण करते हैं ।[१]

मीता दास जी ने प्लेटो की भांति अवतारवाद की झूठी कल्पना का विरोध किया है । कृष्ण, हिरण्याकश्यप आदि काल्पनिक ईश्वर के अवतारवाद को मान्यता नहीं दिया क्योंकि वे सब सत्य से परे हैं ।[२] महाभारत में कृष्ण और कंस के युद्ध वर्णन ब्रह्म के रूप का त्याज्य भ्रमित चित्रण है जो सत्य से परे हैं । इसी प्रकार रामायण में राम-रावण युद्ध, राम-सीता विवाह एक कल्पना है । ईश्वर कभी भी सीता-हरण का प्रतिशोध राम रूप में नहीं ले सकता क्योंकि वह विषय वासना से दूर है । सांसारिक बुराई

---

१ Can the Guardians of the State allow the poets to misrepresent the gods, and show them as revengeful, or lustful, or cruel, or as waging war among themselves? Can they allow God, who is good, to be described as the author of evil? Can they permit the gods to be shown as assuming fictitious shapes, or telling paltry lies, or in any way demeaning themselves? It is intolerable that falsehoods should be told about the next world, and that it should be reviled in pitiful accountsof death and suffering. Nor is it right that the poets should describe honoured heroes like Achilles or Priam as indulging in weak lamentations, or using insolent language, or as being gluttonous, vengeful or choleric. Nor can the Guardians allow citizens to to "imitate" the words or actions of inferior men. For the good man will be unwilling to imitate any but the noblest characters.

Homer and Hesiod, then, are convicted of immoral teachings, and the tragedians and comedians are condemned because they imitate unworthy objects.

– R.A.Scott-James, The Making of Literature, p.39-40.

२ (क) कब साहब धरिया अवतारे ।, मीतादास, हस्तलिखित ग्रंथ, पदसंख्या 66

(ख) पाप पुन्य की खेती करत हानि नफा उपजा वारे ।

– वही, पद संख्या- २६५८

उसका स्पर्श करने में अक्षम है । ईश्वर का कार्य मारना, काटना नहीं बल्कि जीवों का पालन करना है । यह तो क्षुद्र मायावी जीव ही युद्ध में मार-काट मचाकर अपने मानवीय दुर्गुणों का प्रदर्शन करते हैं, ईश्वर नहीं । यदि ईश्वर को क्रोधी जीव के रूप में चित्रित किया जाय तो वह ईश्वर नहीं अपितु दानवी-भावना का प्रतीक कोई जीव होगा । राम और रावण दोनों के इसी दानवी भाव को प्रतीक रूप में काव्यबद्ध किया गया है ईश्वर और जीव के किसी युद्ध का नहीं ।[१]

मीता साहब प्लेटो की भांति ऐसी पुस्तकों और गाथाओं के पठन-पाठन एवं श्रवण की आवश्यकता को समाप्त करने की आवश्यकता पर बल देते हुए कहते हैं कि कृष्ण का कालीनाग को नाथकर उसका मानमर्दन करना कंस को मारना जैसी कल्पित गाथाओं के श्रवण से क्या लाभ जबकि इनसे मृत्यु भय से जीव मुक्त नहीं होता ।[२] वेद, पुराण धर्म ग्रंथों में ऐसे कल्पित ईश्वर अवतारों का वर्णन भी त्याज्य है क्योंकि इनसे जीव को मुक्ति नहीं मिल पाती । ऐसे कल्पित ब्रह्म का काव्य त्याज्य है ।

---

[१] (क) दानव एक हरी पर नारी रावन बड़ा खुआरी ।
दूसर दानव रामचन्द देखा, सैन बहुत जिन मारी ।।

-मीता दास, ह०लि०ग्रंथ, संख्या-८१७

(ख) मार तो साहब के नाही उई पावक संघारी ।
उनकी इच्छा ते सब होता ना धरते अवतारा ।।

-वही, संख्या ८१८

[२] कान्हा काली नाथिया, कंस डारा मारि ।
तककथा कहि का भया नाहु रि जमराज ।।

-वही, संख्या-८१९

अरस्तू का अनुकरण सिद्धान्त और मीतादास:

प्रसिद्ध ग्रीक दार्शनिक अरस्तू ने काव्य के निमित्त अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किया है जिनमें अनुकरण सिद्धान्त बहुत महत्वपूर्ण है । अपनी पुस्तक (The Poetics) में उन्होंने इसकी बहुत विशद् रूप में व्याख्या की है । स्काट जेम्स अरस्तू की कला और सुन्दरता के विचारों को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि चाहे वस्तुनिष्ठ कला हो या काव्य की सृजनात्मक कला, सभी कलात्मक कार्य सुन्दरता के प्रारूप हैं प्रत्येक कला से तद्रूप आनन्द की अनुभूति होती है ।[१] सुन्दरता का वास्तविक अर्थ समझाने में अरस्तू ने रहस्यमय शैली (Metaphysical) का प्रयोग किया है । सुन्दरता किसी भी कलात्मक कार्य का बहुत महत्वपूर्ण आवश्यक अंग है । जब हम कहते हैं कि यह कविता एक अच्छी कविता है तो इसका यही अर्थ ध्वनित होता है कि यह कविता सुन्दर है । जब हम कविता के सुन्दरता के कारणों को खोजते हैं तो हम उसके किसी विशेष अवस्था की सुन्दरता को अपना केन्द्र बिन्दु बनाते हैं । वे कहते हैं कि कविता या चित्र में क्रमबद्धता, निष्पत्ति और त्रिविध एकता सुन्दरता के ही अंग हैं जो

---

१ We find, then, that Aristotle in the Poetics takes it for granted that a work of art, whether it be a picture or a poem is a thing of beauty, and that it affords pleasure appropriate to its own kind.

— R.A.Scott-James, The Making of Literature, p.50 .

उससे पृथक नहीं किये जा सकते हैं।[1]

अरस्तू ने अपने दी पोयटिक्स में लिखा है कि मिमिस या अनुकरण वास्तव में उत्कृष्ट कला के लिये परम आवश्यक तत्व है। अनुकरण के द्वारा ही उत्कृष्ट कला और मानव-प्रदत्त कला में भेद स्पष्ट हो पाता है।

अरस्तू का अनुकरण सिद्धान्त प्लेटो की भांति पूर्णतया किसी वस्तु का नकल करना न था। वे अनुकरण या प्रस्तुतीकरण को कला का आवश्यक अंग मानते थे। अनुकरण का लक्ष्य ही सुन्दरता को प्राप्त करना है अत: अनुकरण के द्वारा सुन्दरता का दर्शन होता है।[2] अनुकरण से उस असीम आनन्द की उपलब्धि होती है जैसा पूर्व कल्पित होता है। अत: इस सिद्धान्त का पालन आवश्यक है। अनुकरण जीवन के कार्य-कलापों का आदर्श रूप है। यद्यपि व्यक्तिगत रूप में इसका प्रयोग होता है लेकिन इसका लक्ष्य शाश्वत-सत्य को प्राप्त करना है। मन के भावों-अनुभावों के द्वारा ही परमानंद सत्य रूप की अभिव्यक्ति हो पाती है। वास्तव में अरस्तू के कहने का सरल शब्दों में

---

[1] It is not within the scope of his inquiry to ask what beauty means, or in what way the conscious mind apprehends it. That is a metaphysical question. He assumes that to be beautiful is part of essence of a work of art. When we have said that a poem is a good poem we have said that it is beautiful, and when we have found the condition. Which make a poem excellent we have found the conditions of its peculier kind of beauty When he says that a poem or a picture must have order, proportion and organic unity, he has named qualities which cannot be seperated from his conception of the beautiful., R.A.Scott-James, The Making of Literature, p. 50

[2] Mimesis, thou or imitation is in Aristotle's view, the essential in a fine art. It is that which distinguishes encative or fine art from all other products of human minds., R.A.Scott-James, The Making of Literature, p. 54

भाव यह है कि अनुकरण के द्वारा सुन्दरता की उपलब्धि होती है, सुन्दरता से परमानन्द की परमानन्द की प्राप्ति से जीव का प्रत्येक कार्य सफल बन जाता है, यही जीवन का सत्य है । यह सत्य शाश्वत है ।[१] मीतादास जी भी अरस्तु की भाँति अनुकरण के सिद्धान्त को महत्व देते हैं । अनुकरण का अर्थ नकल नहीं वरन् प्रकृति के परे असीम अलौकिक सत्ता की अनुभूतियों का प्रस्तुतीकरण है । वह अलौकिक सत्ता शाश्वत अविनाशी अद्वितीय कलात्मक छटा से परिपूर्ण है । वह सुन्दरता की प्रतिमूर्ति है उसको अन्त: नेत्रों से परखने से ही परमानंद की अनुभूति होती है ।[२]

मीतादास जी, अरस्तु की भाँति काव्य को सुन्दरता और सत्य का पर्याय मानते हैं । बिना सत्य और सुन्दर के शिव (कल्याण) की प्राप्ति असम्भव है । इसी प्रकार जो कविता अहितकारी और क्षणिक (नश्वर) प्रभाव डालने में ही सक्षम है वह समाज के लिये उपयोगी नहीं क्योंकि वह सुन्दर नहीं है । सुन्दर सत्य और शाश्वत होता है क्षणिक नहीं । इसी सिद्धान्त की कसौटी पर तुलसी और सूर की कविताओं को कसते हुए मीता साहब कहते हैं कि तुलसीदास और सूरदास की कवितायें सेमर के फूल के समान

---

[१] Imitation or representation than, is of the essence of the matter. It will be beautiful of that is presupposed. It will give pleasure - its appropriate pleasure. It must be persuasive - what we call "convincing" through a representation, it will be an idealized treatment of life. Though it deals with the individual, it aims at universal truth. Its appeal is through the emotions.

-R.A.Scott-James, The Making of Literature, p.61

[२] हम तो सिरजनहारा जाने, आनि मने नहीं माने
कोटि सूर शशि छवि पर वारों, सो छवि कवन बखाने
नहीं है रूप नहीं है रेखा, वा तो ब्रह्म निराला ।

वाह्य रूप से आकर्षक है लेकिन क्षणिक (नश्वर) है । इसके सुगन्ध द्वारा मानव-मात्र के हितकी कामना व्यर्थ है ।[१] इनकी कवितायें शाश्वत नहीं है वे केवल एक वर्ग विशेष के हित का प्रतिनिधित्व करती हैं सम्पूर्ण जगत का नहीं । अत: इनमें शिवत्व की भावना नहीं है क्योंकि जो सत्य और शिव (कल्याणकारी) नहीं है वे कभी सुन्दर नहीं हो सकता । उनसे कभी भी अखण्ड ब्रह्म के सौन्दर्य की अनुभूति नहीं हो सकती अत: उनका त्याज्य ही उचित है ।[२]

असरतु का विरेचन सिद्धान्त:-

असरतु ने विरेचन (कैथारसिस) शब्द का अपने पोइटिक्स में केवल दो स्थानों पर उल्लेख किया है । कहीं भी उसके शाब्दिक अर्थ का निरूपण नहीं किया है । यही कारण है कि कैथारसिस (Katharsis or Catharsis) की व्याख्या अनेक विद्वानों ने विभिन्न रूपों में किया है । हिन्दी में इसका अनुवाद रेचन, विरेचन तथा परिष्करण शब्दों के रूप में किया गया है । हिन्दी के विद्वानों में यह विरेचन के नाम से अत्यधिक प्रचलित है । वास्तव में हिन्दी के विद्वानों ने अँग्रेजी के विद्वानों के तर्कों को आधार मानकर मूल या अनावश्यक एवं अस्वास्थकर पदार्थों को शरीर के बाहर निकालने की क्रिया को ही विरेचन (कैथारसिस) की संज्ञा दी है ।[३] हिन्दी के विद्वानों ने संस्कृत

---

[१] तुलसी सुरा की कविताई, ज्यों सेमर का फूल ।
वास न आवै फल ना लागै, सो तन का है सूल ।।
-मीरादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या- 3422

[२] तुलसी सुरा की कविताई, भौदुन का हितकारी ।
सुज्जन है ते नाहिस करिहैं, मीरा करी विचारी ।।
- वही, दोहा संख्या- 3423

[३] डा० रामसागर त्रिपाठी एवं डा० शान्तिस्वरूप गुप्त, बृहद् साहित्यिक निबन्ध, पृष्ठ-१८३ ।

साहित्य और योग-परक साहित्य में कैथारसिस के अर्थ का अन्वेषण करने का प्रयास नहीं किया । अरस्तु अपने पोयटिक्स में सदा यही इंगित करने का प्रयास करते हैं कि सुन्दरता और आनन्द से उनका अभिप्राय लौकिक क्षणिक आनन्द की उपलब्धि से नहीं वरन् परमानन्द एवं शाश्वत सुन्दरता से है ।[1] शरीर से अस्वास्थकर मल की शुद्धि से परमानन्द की प्राप्ति असम्भव है अत: कैथारसिस की व्याख्या आयुर्वैदिक या यूनानी चिकित्साशास्त्र के तर्कों से करना अरस्तु के कैथारसिस सिद्धान्त के प्रति अन्याय करना है ।

पातंजलयोगसूत्रम में रेचन (कैथारसिस) की पूर्ण व्याख्या की गयी है । रेचन-स्तम्भन एवं पूरण द्वारा मन को वासनाओं से रिक्त करना ही प्राणायाम है । इन क्रियाओं द्वारा ही मन के कलुषित विकार परिष्कृत होते हैं ।[2]

रेचन, स्तम्भन, पूरण आदि चतुर्विधि प्राणायाम के अभ्यास से ज्ञान के ऊपर का आवरण क्षीण हो जाता है । मन के विकार, उसकी वासनायें, सभी क्लेशों के कारण है । अविद्या, अस्मिता आदि के निवारण के लिये रेचन आदि आवश्यक है । इन वासनाओं के विनाश हो जाने पर ही जीव को क्लेशों से मुक्ति एवं परमानन्द की उपलब्धि हो पाती है ।[3]

---

[1] (क) तस्मिन् सति श्वासप्रश्वास योर्गतिविच्छेद:, पातंजलियोग सूत्रम, साधन पाद: ४९ ।

(ख) तयोस्त्रिधा रेचन-स्तम्भन पूरणद्वारेण बाह्याभ्यन्तरेषु स्थानेषु,गत: प्रवाहस्य विच्छेदो धारणं प्राणायाम उच्यते ।, धारेश्वर भोज-तद् ग्रंथ-तन्मत समीक्षा-पातंजलि सिद्धान्त, साधपद-४९ ।

[2] देखिये, पृष्ठ संख्या- ५८

[3] (क) तत: क्षीयते प्रकाशावरणम् - पातंजलि योग दर्शन, साधनपाद: ५२ ।

(ख) तत: तस्मात् प्राणायामात् प्रकाशस्य चित्तसत्वगतस्य यदावरणं क्लेशरूपं तत् क्षीयते विनश्यतीत्यर्थ:, धारेश्वर भोज तद् ग्रंथ-तन्मत समीक्षा, पातंजलि सिद्धान्तादि, साधपाद:-५२ ।

डा० रामसागर त्रिपाठी एवं डा० शान्तिस्वरूप गुप्त के मत से भी धर्म के यौगपरक तत्वों पर आधारित रेचन (कैथारसिस) के सिद्धान्त की पुष्टि होती है। रेचन (कैथारसिस) वास्तव में बाह्य वृत्तियों के निरोधन का एक साधन है। डा० रामसागर त्रिपाठी इस पर अपना मत व्यक्त करते हुए कहते हैं कि यूनान में भी भारत की तरह नाटक का आरम्भ धार्मिक उत्सवों से ही हुआ। प्रो० मरे का मत है कि वर्षारम्भ पर दिओन्यसस नामक यूनानी देवता से सम्बद्ध उत्सव मनाया जाता था। इस उत्सव में देवता से विनती की जाती थी कि वह उपासकों को विगत वर्ष के पापों तथा कुकर्मों से मुक्त कर दे तथा आगामी वर्ष में उन्हें इतना विवेकपूर्ण तथा शुद्ध हृदय बना दें कि वे पाप, कलुष, मृत्यु आदि से बचे रहें। इस प्रकार यह उत्सव एक प्रकार से शुद्धि का प्रतीक था। अपने ग्रंथ राजनीति में अरस्तू ने लिखा है कि हाल की स्थिति से उत्पन्न आवेश के शमन के लिये भी यूनान में उद्दाम संगीत का उपयोग किया जाता था। अत: स्पष्ट है कि यूनान की धार्मिक संस्थाओं में बाह्य विकारों द्वारा आन्तरिक विकारों की शान्ति और उनके शमन का यह उपाय अरस्तू को ज्ञात था और सम्भव है वहां से भी उन्हें रेचन सिद्धान्त की प्रेरणा मिली हो। सारांश यह है कि विरेचन का लाक्षणिक प्रयोग धार्मिक आधार पर किया और उसका अर्थ था नाट्य उत्तेजना और अन्त में उसके शमन द्वारा आत्मिक शुद्धि और शान्ति।[1]

अरस्तू ने त्रासदी को आनन्द के प्रमुख साधन के रूप में स्वीकार किया है। रेचन (कैथारसिस) के सिद्धान्त से त्रासदी मन में समान उत्तेजक भावों को प्रस्फुटित करके विकारों से मन को परिष्कृत कर देती है।[2]

---

[1] डा० रामसागर त्रिपाठी एवं डा० शान्तिस्वरूप गुप्त, वृहद् हिन्दी निबन्ध, पृष्ठ-९८३।

[2] And so, again when he takes it for granted that a Tragedy affords pleasure, he is content with the fact that it does do so. He may discuss the particular kind of pleasure which the Tragedian aim at giving................ And if he does at one moment digress into pathology (in his account of the Katharsis - the purging or purifying effect of tragedy), R.A.Scott-James, The Making of Literatur p. 51.

काव्य में पात्रों के चारित्रिक उत्कर्ष और अपकर्ष त्रासदी और कामदी के मध्य अन्तर स्पष्ट करते हैं । अरस्तू के कथन से यह स्पष्ट है कि कथोपकथन (Plot) त्रासदी का मुख्य अंग है । गम्भीर उच्च स्तर का कवि अपने पात्रों के चरित्र को आदर्श रूप में प्रस्तुत करता है जबकि निम्न स्तर का कवि मनुष्य के स्वभाव एवं उसके स्वाभाविक दोषों को यथार्थ रूप में व्यक्त करता है । इन दोनों की अपेक्षा जब कामदी का कवि मनुष्य की बुराई को व्यक्त करता है तो उससे हँसी उत्पन्न होती है त्रासदी या कष्ट नहीं[१]।

वास्तव में त्रासदी किसी गम्भीर स्वतः पूर्ण तथा निश्चित आयाम से युक्त कार्य की अनुकृति का नाम है, जिसका माध्यम नाटक के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न रूप से प्रयुक्त सभी प्रकार के आभरणों से अलंकृत भाषा होती है । जो समाख्यान रूप में न होकर कार्य व्यापार रूप में होती है और जिसमें करुणा तथा त्रास के उद्रेक द्वारा इन मनोविकारों का उचित विरेचन किया जाता है[२]।

---

१ In choice of character, then, and in characterization liesthe difference between the tragic manner and the comic. This should be remembered in connexion with his later statement that in Tragedy "The plot is the first thing." The serious poet idealizes his characters. The meaver poet reveals human nature in all the nakedness of its defect, or with the defects exaggerated. But the defect, or with the defects exaggerated. But the defect or ugliness which the comic poet reveals is such as to cause laughter and not pain., R.A.Scott-James, The Making of Literature, p. 56.

२ (क) डा० नगेन्द्र का अनुवाद ।

(ख) Tragedy, then is an imitation of an action that is serious, complete, and of a certain magnitude, in language embetlished with each kind of artistic ornament, the several kinds being found in separate parts of the play; in the form of action not of narrative, through pity and fear effecting the proper purgation of these emotion., R.A.Scott-James, The Making of Literature, p. 61.

मीतादास जी के काव्य में भी रेचन, विरेचन आदि सिद्धान्तों की पुष्टि होती है । रेचन-विधि द्वारा मन की वासनाओं (Emotion) को निर्मूल करने की आवश्यकता पर वे सदा बल देते हैं क्योंकि वासनायें ही सारे क्लेशों की जड़ है । इन क्लेशों के समाप्त होते ही जीव सुख को प्राप्त कर सकता है ।[१] मीता दास जी ने त्रासदी और करुणा के माध्यम से ही मन की दुर्वासनाओं को निर्मूल होने का संकेत किया है । ईश्वर के वियोग से जीव दुख से संतप्त होता है जिससे उसके मनोविकार विनष्ट हो जाते हैं । तभी उसे परमानन्द के पुंज ईश्वर से साक्षात्कार हो पाता है ।[२]

मीतादास जी अरस्तू की भांति अपने काव्य के विषय में चरित्र को आदर्श रूप में व्यक्त करते हैं । वे सदा नायक के उत्कर्ष, व्यापक एवं आदर्श पहलुओं पर ध्यान देते हैं । उसके दोषों का वर्णन करना उनके वचन-वाणी का विषय न था । वे सदा मानव स्वभाव के गुण-दोषों का वर्णन न करके अखण्ड परमानन्द की प्राप्ति के गुण, दशा, व्यापार आदि का ही चिन्तन करते हैं जो अरस्तू के परिभाषानुसार एक गम्भीर (Serious) कवि का स्वाभाविक गुण है । यही कारण है कि मानव स्वभाव के विभिन्न पहलुओं का वर्णन करने वाले कवियों की उन्होंने आलोचना की है क्योंकि

---

[१] (क) आशा तिस्ना कठिन है, छाड़े विरला कोय ।
मीता हरिमन सो लगै, दाग न लागै कोय ।।
(ख) पाच पचीसो की लहर जो बाधै ते ग्यानी ।
कह मीता तब अंतर आवै, मेटै अन्तरजानी ।।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-५२६ ।

[२] (क) ममता बैरिन जीव की, या नाके ले जाय ।
बैरी के पहरे रहै, को पारन ले जाय ।।
(ख) हरि वियोग जब व्यापई, तब ममिता मर जाय ।
ममता मारे मन मिले, मन हरि देय मिलाय ।।
- वही, दोहा संख्या-५२७ ।

मानव स्वभाव के विभिन्न दृष्टिकोणों को अपनी कवन-वाणी का विषय बनाना तुच्छ ओछे कवि का ही कार्य है किसी गम्भीर कवि का नहीं । तुलसीदास जी रामचन्द्र जी को आदर्श मानव के रूप में प्रतिस्थापित करने में अपना सारा श्रम लगा दिये । उनके रामचरितमानस में पिता-पुत्र, माँ-बेटा, भाई-भाई, पति-पत्नी, मित्र-शत्रु, स्वामी-सेवक, गुरु-शिष्य आदि मानवगत स्वभावों का अलंकारिक वर्णन मिलता है । सूरदास जी के सूरसागर में बालक कृष्ण के साधारण बाल-सुलभ चंचलता एवं बालकों के सामान्य स्वभाव का सजीव वर्णन चित्रित है । केशव दास जी की रामचन्द्रिका अलंकारों की एक मंजूषा ही प्रमाणित हुई । वास्तव में महान संतों के ये महान ग्रंथ केवल मानवीय गुणों, स्वभावों आदि के दर्पण मात्र सिद्ध हुए । यही कारण है कि मीतादास जी द्वारा अरस्तू की भाँति मानव स्वभाव का वर्णन करने के कारण इन ग्रंथों को लोकोपयोगी नहीं मानते हैं।[1]

मैथ्यू आर्नोल्ड और मीतादास

काव्य जीवन की आलोचना:

मैथ्यू आरनोल्ड ने कविता के सिद्धान्तों में एक अध्यापक की भूमिका अदा किया है । उनके अनुसार साहित्य जीवन की आलोचना है और वे

---

[1] (क) पद संख्या- 2822 ।

(ख) पद संख्या- 2823 ।

(ग) के कविताई कान्ह की, केशव कवि भा भूत ।
सोई जुगलातुम का लिखी, कह मीता सुन धूत ।।
-मीतादास, स०लि०ग्रं०, दोहा संख्या- ३७० ।

अपने आलोचना के इस सिद्धान्त को सामाजिक जीवन में व्याप्त देखना चाहते हैं।[1]

आर्नोल्ड आलोचक का पहला कर्तव्य पढ़ना और समझना निर्धारित करता है। प्रत्येक वस्तु को उसी दृष्टिकोण से परखना चाहिये जैसी वह है। तत्पश्चात् उसका दूसरा कर्तव्य अपने वास्तविक अनुभवों को दूसरों में प्रसारित करना है ताकि पूरा विश्व एक आदर्श रूप में व्यवस्थित हो जाय। उसका कार्य एक संस्था की भांति है। उसका तीसरा कर्तव्य ऐसे वातावरण का निर्माण करना है जिससे आगन्तुक पीढ़ी भविष्य में अपने रचनात्मक एवं बौद्धिक कार्यों में विकास पा सके। मैथ्यू आरनोल्ड ने आलोचना के इस सिद्धान्त को स्वयं अपने अथक प्रयास से प्रतिपादित किया। वह आलोचना के माध्यम से कविता में छल-कपट, असावधानी, मानवीय विकारों से निरन्तर युद्ध करता रहा। वह कविता को सनातन सम्मान का प्रारूप मानता है। अत: मानवीय विकारों और छल-कपट कविता में स्थान नहीं पा सकते क्योंकि इनका उद्देश्य शाश्वत शक्ति के प्रीत को प्राप्त करना नहीं है। इस प्रकार कविता को उसने पवित्र रूप में रखा।

---

[1] Having given up the frequent writing of poetry he assumed another role that of teacher. Holding as he did that literature is a criticism of life" he conceived it to be his duty as a critic of literature to bring it out into the open in the life of society." .... First, there is the critic's duty to learn and understand-he must "see things as they really are". Thus equipped, his second task is to hand on his idea to others, to convert the world, to "make the best ideas prevail." His work in this respect is that of a missionary. But, thirdly, he is also preparing an atmosphere favourable for the creative genius of the future., R.A.Scott-James, The Making of Literature, p. 269.

कविता के शाश्वत सम्मान की रक्षा के लिये हम कभी भी आर्नोल्ड के सिद्धान्तों की उपेक्षा नहीं कर सकते हैं क्योंकि उस अलौकिक दिव्य सनातन स्वरूप की रक्षा हो पाती है जो विभिन्न भाषाओं के माध्यम से हमारे तक आ पहुँची है ।[१]

मैथ्यू आर्नोल्ड का अभिजात्यवादी सिद्धान्त (Touch Stone Method):

डा० बच्चन सिंह ने टच स्टोन के सिद्धान्त को आभिजात्यवादी सिद्धान्त का नाम देते हुए कहा कि " आर्नोल्ड ने अभिजातीय दृष्टिकोण अपनाकर आकस्मिक अन्विति पर जोर देकर विरोधी मत प्रकट किया । उस समय उसके सम्मुख यवनानी कवियों का आदर्श था ।"[२] उसने अपने पूर्ववर्ती कवियों, चौसर, शेक्सपीयर, मिल्टन, ड्राइडेन, पोप, ग्रे आदि विद्वानों की कृतियों के अंशों का उद्धरण देते हुए कविता के गुण-दोषों की परख को ही अपने टच स्टोन सिद्धान्त के प्रमुख उद्देश्य की व्याख्या स्वीकार किया है ।[३]

---

[१] Arnold did a service to criticism by his sheer inexorableness. There was no compromise in his war to the end against deception, insincerity, charlatanism. "In poetry, which is thought and art in one, it is the glory, the eternal honour, that charlatanism shall find no entrance; that this noble sphere be kept inviolate and inviolable." In defending its honour we can never afford to neglect his bidding to keep in mind those universal and shining examples which have been handed down to us from the past through many languages......, R.A.Scott-James, The Making of Literature, p. 281-282.

[२] डा० बच्चन सिंह, आलोचक और आलोचना, पृष्ठ संख्या-२२ ।

[३] Essays in Criticism (Matthew Arnold)

मीता साहब ने भी आर्नॉल्ड की भांति कविता को परमानन्द की अनुभूति का माध्यम माना है [1]। कविता में कृत्रिम तत्वों का समावेश उसको उसके लक्ष्य से पृथक कर देता है अतः शाश्वत आनन्द हेतु प्रदत्त कविता में पाखण्डियों द्वारा कृत्रिम पाखण्ड तत्वों का सम्मिश्रण कविता को उसके परम लक्ष्य से च्युत कर देता है अतः मीता साहब ने ऐसे पाखण्डजनित सम्मिश्रित काव्य का तिरष्कार किया है [2]। मीता साहब ने आर्नॉल्ड के टच स्टोन मैथड की भांति आभिजात्यवादी सिद्धान्त को अपनी वचन-वाणी में स्थान देकर उसकी व्यापक अभिव्यंजना की है। वे गोरख, भथरी, गोपीचन्द, कबीर, नानक, नामदेव जैसे महान संतों के काव्य को एक प्रामाणिक आदर्श काव्य मानकर सभी काव्यों के गुण-अवगुणों का निराकरण करते हैं। इन काव्यों के सिद्धान्तों से पूरित काव्य को ही वे ईश्वर के परमानन्द के साधन-स्वरूप काव्य के रूप में स्वीकार करते हैं। उपरोक्त संतों के सिद्धान्तों से विरुद्ध काव्य को वे तुच्छ, सारहीन, एवं त्याज्य मानते हैं [3]।

---

[1] (क) आनंद मंगल गाइया पाये पै नाह ।

(ख) भयो आनंद सकल मंगल रामरूप वो भाइयो ।।

-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, संख्या- १६७१

[2] (क) तीन घर चोरी भई मेषिन किन्ही आय ।
कबीर दादू नानिक जग का जान न जाय ।। वही २५८२

(ख) जो तीनो के ग्यान का मान लेहें स्तबार ।
सो सतगुरु सो विमुख है मीता करो विचार ।।
- वही, दोहा संख्या- २५८३ ।

[3] (क) मीता के मारग चले कबीर सरीखा होय ।
मीत कबीरा एक है कहबे के हैं दोय ।। वही दो॰सं॰ २५८४

(ख) जो काशी कह गया जुलाहा सो तो है टकसारी ।
मीता ताको थाप देत है वो पहुंचा दरबारी ।। वही दो॰सं॰ २५८५

(ग) दास कबीरा, नानिक नामा, धर्मदास औ दादू ।
इन संतन नहीं पंथ चलावा, झूठे कह वादू ।।

(घ) संत समाधि गाइ के सुनाऊं, जिनकी तुम्हरी गरना ।
गोरख, भथरी, गोपीचंदा, सुलतानी धरि परना ।।
सैन कबीर धनो रैदासा, धर्मदास गहि सरना ।
नामा पीपा सदन कसाई जन कमाल धरि परना ।।
वही दो॰सं॰ २०८५

कृतियों का परिचय :

मीतादास जी ने प्रबन्ध काव्य नहीं लिखा है । उनकी वचन-वाणी, दोहे, सोरठे, बरवै, पद, मल्हार, गारी आदि छन्दों में ही रचित हैं । मीता दास जी के शिष्यों द्वारा संकलित दोहों की संख्या लगभग ३,५०० है । बरवै, पद, मल्हार, गारी आदि की कुल संख्या २,५०० है । इसके अतिरिक्त बहुत से पद और दोहे आदि मौखिक रूप में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं । उनके शिष्यों को मौखिक पद और दोहे आदि कंठस्थ हैं, जिनकी संख्या बताना कठिन है । मीतादास जी के कुछ उपदेश गद्य में भी उपलब्ध होते हैं । गद्य में लिखे इन उपदेशों का आयाम लगभग ४ पृष्ठों में है । उनके उपदेश का एक अंश उदाहरणस्वरूप उद्धृत हैं -

हुकुम परम पुरुष का

" जिनका कीन्ह गीता आय, ते कृष्ण संत आहीं । संतन का जाना सोई अंकुर आही । संतन का जाना तेई विदुर आही । संतन का जाना तेई सेबरी आही । संतन का जाना तेई गोपी आहीं । गीता के करने वाले संत कृष्ण आहीं । तिनके नाकाम, ना क्रोध निर्विकार है । परम पुरुष है निर्विकार । संत तो ते हैं जे परम पुरुष के समीपी मे है, भेदी मे हैं । शिव अपने मन कहत हैं हम परम पुरुष का नहीं पावा । ब्रह्मा कहत हैं हम परम पुरुष का नहीं पावा । विष्णु कहत हैं हम परम पुरुष का नहीं पावा । तेही परम पुरुष का उपासना दसरथ किन्हीं, या मागिनि कि मोरे तुम्हरी अवतार लेव । ते विष्णु एक कला हो दसरथ के अवतरे । रामचन्द्र नाव पड़ा । तीन्ह देह छकड़ी मथुरा में कृष्ण हो अवतरे । ते राजा भये । काम की वसी परे रहे । अर्जुन पंडवा त्रिया की बस में रहे । विष्णु तो परम पुरुष का वार-पार नहीं पावा कन्हैया कैसे पावा । जिनका कीन्ह गीता आय ते मथुरा के कृष्ण नहीं । जिन पूछा है पाण्डव अर्जुन नहीं ना मथुरा के विदुर आहीं जे गीता में लिखे हैं

ना मथुरा के अंकुर आहीं ना सेवकी आही ना गोपी आहीं जे गीता में लिखे है जिनका कीन्ह गीता आय ते सन्त कृष्ण आहीं । सन्तन का जाना तेहुं अर्जुन आहीं । संतन का जाना तेहुं अंकुर आहीं । संतन का जाना तेहुं गोपी आहीं । संतन का जाना तेहुं विदुर आहीं । जे गीता में लिखे है । या मथुरा के लोगन का काम नहीं । गीता जो मथुरा के कान्ह का है जानी सो तरी ना ।[1]

काव्यक्रम के अनुसार उनकी कृतियों का वर्गीकरण:

काव्य क्रम के अनुसार मीतादास जी की कृतियों को (१) पदावली (२) साखी (३) सबद तीन रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है ।

(१) पदावली :- निर्गुण काव्यों में पदों के प्रयोग का इतिहास बहुत पुराना है । नाथ वाणी में पदों का निर्वाह गीतों के रूप में हुआ है । डा० पीताम्बर बड़थ्वाल द्वारा सम्पादित गोरखबानी में प्रत्येक पद के आगे हेतु से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इन पदों को लय के साथ गाया जाता था ।[2] प्राचीन बौद्ध साहित्य में पदों को गाने के रूप में पाया जाता है । बौद्धों के प्रसिद्ध धर्मग्रंथ धम्म पद में यह आसानी से देखा जा सकता है । जयदेव का "गीत गोविन्द" और चण्डीदास, विष्णुदास, विद्यापति, सुसरी आदि के गीत भी पदों के गीत लालित्य को ही पुष्ट करते हैं । कबीरदास, नामदेव, रैदास, सूरदास आदि के पद, पद-परम्परा को लय और धुन में अग्रसर करने में सहायक सिद्ध हुये ।

---

[1] मीतादास, हस्तलिखित ग्रंथ, संख्या-७६० ।

[2] डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, गोरखबानी, पृष्ठ संख्या- ३६ ।

मीतादास जी ने भी पद-परम्परा का निर्वाह पूर्ण रूप से किया है। प्राचीन प्रतीकों को नवीन अर्थों में प्रयोग कर उन्होंने पदों को एक नवीन स्वरूप प्रदान किया। नये-पुराने भावों के साथ-साथ नये पुराने छंदों का सम्मिश्रण करके मीता दास ने पदावलियों का नवीन परिमार्जित रूप प्रस्तुत किया।

मीतादास जी ने अपने पूर्ववर्ती संतो के पद-सम्बन्धी नियमों का पालन किया है। यही कारण है कि जहाँ गोरखनाथ की भाँति उनके पदों में रहस्यमय भावों का पुट है वहीं मीरा और कबीर की स्वानुभूति की भावना भी है। सूरदास और तुलसीदास के विनय के पदों की भाँति पदों का सृजन कर मीता दास जी ने दीन-हीन बनकर ईश्वर से याचना भी किया है।

भावनातिरेक में आत्मानुभूति की अभिव्यंजना कर मीता दास जी ने कबीर की प्रेम-भावना को पुनर्स्थापित किया है। मीतादास जी ने पदों के माध्यम से ब्रह्माण्ड नायक के प्रेम-विरह में अपने आपको दग्ध करके अनुपयुक्त धरातल पर भी प्रेम के कठिन बीज बोने का सफल प्रयास किया है।

मीतादास जी ने प्रेम के दोनों पक्षों - संयोग और वियोग - को आध्यात्म के साँचे में ढालने का सफल प्रयास किया है। प्रेम-विरह के प्रतीकों के माध्यम से उन्होंने ईश्वर-जीव की अखण्ड सत्ता का निरुपण पदों में किया है।

पत्नी-जीव का पति-ब्रह्म से मिलन एवं अविस्मरणीय सुख की अनुभूति वास्तव में दाम्पत्य जीवन के पूर्णता की एक झाँकि है। पदों में इन गुप्त श्रृंगारिक तत्वों को स्थान देकर मीता दास जी ने अपनी कवित्व चातुर्य का प्रसार किया है। मीतादास ने पदों के विभिन्न रूपों को अपने काव्य में वर्णित किया है। विभिन्न रागों में पदों को गाकर पुनः उसे काव्यरूप देना उनकी निजी विशेषता है एवं उनके काव्य में यह विभिन्न रूपों में लयबद्ध है। (१) बारहमासे (२) हिन्डोला (३) धमादारी (४) आरती (५) मलार (६) सावनी (७) पद (८) गारी (९) बेलात (१०) बसन्त धमार (११) फाग

(१२) कवित्त (१३) रेखता आदि ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पदों में प्राय: अपने समय में प्रचलित सभी राग-ध्वनियों को स्थान देकर मीता दास जी ने पदों की पूर्व प्रचलित परिभाषा को पूरा कर दिया ।

(२) साखी :- साखी शब्द संस्कृत के साक्षी शब्द से बना है । साखी का अर्थ साक्षी और साक्ष्य दोनों हो सकता है । डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी[१] और पं० परशुराम चतुर्वेदी[२] 'साखी' शब्द की व्युत्पत्ति साक्षी से मानते हैं । साखी शब्द के तीन अर्थ प्रचलन में स्वीकार किये जा सकते हैं (१) साखी गवाह या द्रष्टा के रूप में (२) साक्ष्य (प्रमाण या गवाही) के अर्थ में (३) रचना विशेष के अर्थ में ।

(१) साखी (गवाह या द्रष्टा) के रूप में:

मदन जार मन बस करै, हरि के रहै हजूर ।
साखी मीतादास की, तरना नाही दूर ।।

(२) साक्ष्य (प्रमाण या गवाही) के अर्थ में:

जो काशी बस गया जुलाहा, सो तो है टकसारी ।
मीता ताकी साख देत है, वो पहुंचा दरबारी ।।

---

[१]डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, 'गुरु की साक्षी (या साखी) करके किसी-किसी बात को कहने की प्रथा बहुत पुरानी है', कबीर, पृष्ठ संख्या-९८ ।

[२]आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, 'साखी शब्द संस्कृत का अन्यतम रूप मान लिया जा सकता है और उसका अभिप्राय उस पुरुष से है जिसने किसी वस्तु या घटना को अपनी आखों देखा है ।', कबीर साहित्य की परख, पृष्ठसंख्या-९८४ ।

(२) रचना विशेष के अर्थ में:

> सन्त की महीमा सन्तई जाने, हरि जीव महिमा गाई ।
> ना पतियाई गीता बाई, सुख देव साखि बताई ।।

मीतादास जी की साखियाँ अधिकतर दोहे एवं छंदों में मिलती है । कुछ साखियाँ सोरठा, चौपाई, बरवै आदि में भी पायी जाती हैं । दोहे आदि के साखियों का प्रमुख उद्देश्य किसी तथ्य को प्रस्तुत कर उसे किसी प्रचलित बात या प्राचीन तथ्य से प्रमाणित कराना था । मीता दास जी के साखियों को हम स्थूल रूप से ९ भागों में विभक्त कर सकते हैं ।

(१) सामाजिक आलोचना (२) प्रेम और भक्ति (३) नीति मोह धर्म
(४) अध्यात्म दर्शन (५) जीवन दर्शन (६) योग दर्शन (७) मन-विवेचन
(८) वैराग्य तथा (९) आदर्श ।

(३) सबद:- विद्वानों ने सबद शब्द को पद का ही पर्याय माना है।[१] नाथ सम्प्रदाय में `सबदी` प्रसिद्ध है लेकिन वह पद से भिन्न है । मीता दास जी के काव्य में सबद शब्द कहीं नहीं मिलता है । यद्यपि उन्होंने सबद शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों पर किया है लेकिन वह शब्द ब्रह्म के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है पद या सबद, सबदी के रूप में नहीं ।

> (१) शब्द का विचार लिया पाचो का मार मन का संभारि
> मन आया तब हाथ है ।
> (२) जारे शब्दा करै नरक माँ ते परै ।

---

[१] डा० सरनाम सिंह शर्मा, कबीर व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धान्त, पृष्ठ संख्या-५९९ ।

तृतीय प्रकरण

दार्शनिक निरूपण

दार्शनिक - निरूपण

संत मीता का दर्शन:-

संत कवि मीता ने परब्रह्म परमेश्वर की प्राप्ति में योग-साधना के साथ-साथ समाज में प्रचलित ईश्वर प्राप्ति की सामान्य-साधना का भी विवेचन किया है । ईश्वर-प्राप्ति की विभिन्न साधनाओं के स्वरूप को संशोधित कर कबीर-मार्गगामी-साधना-पद्धति को निरूपित किया । उन्होंने साधना के मार्ग में वर्ण-भेद, जाति-भेद, सम्प्रदाय-भेद आदि की समालोचना करते हुये उसे विशेष परिमार्जित दिशा देने का सफल प्रयास किया ।[१] साधना के क्षेत्र में न केवल हिन्दू एवं मुस्लिम धर्मावलम्बियों को एकता के सूत्र में बांधने का प्रयास किया, वरन् धर्म के अन्तर्गत नवीन सिद्धान्त प्रतिपादित करके कबीर, दादू, नानक, गोरख, भर्तृहरि, गोपीचन्द, नामदेव, रैदास आदि श्रेष्ठ संतों की वचन-वाणी में स्वार्थ-लिप्सा की तुष्टि हेतु अपनाये गये मिश्रित पाखण्ड को दूर कर साधना का स्वच्छ परिमार्जित रूप प्रस्तुत किया । आपने किसी भी 'वाद-विशेष' को अपनी साधना-पद्धति का विषय न बनाते हुये सामान्य भाव से प्रत्येक जन समुदाय को संगठित करने का प्रयास किया । आडम्बर, ढोंग व पाखण्ड आदि को प्रश्रय न देते हुये उनकी कटु आलोचना कर सच्चा मार्ग दर्शाने का प्रयास किया । हिन्दू मुसलमान दोनों की हिंसक प्रवृत्तियों पर पैनी दृष्टि रखते हुए उनकी प्रवृत्तियों को समान माना है । दोनों व्यर्थ ही ईश्वर-भक्त और दयालु बनने का ढोंग रखते हैं । उनमें अन्तर केवल यह है कि एक जीव

---

[१] वरन दूसरा है नहीं, पंडित करो विचार ।
पांच तत्व से सब बना, सबमें सिरजन हार ।।
-हस्तलिखित ग्रंथ, मीतादास, दोहा सं०-६१८

को पटक कर एक ही बार में मार डालता है तो दूसरा उसे तड़पा-तड़पा कर जबह करता है[1]। मौलाना और पण्डित दोनों के हिंसक मत से सच्चे भक्त का मत भिन्न है। सच्चा भक्त अलख-निरंजन ईश्वर का दर्शन संभव मानता है[2]। शरीर एक ऐसा मंदिर या मस्जिद है जहाँ मनुष्य को बन्दगी व पूजा करनी चाहिये। पीर या गुरु की सेवा से ही ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं[3]।

मीता साहब ईश साधना में सत्य की ही महानता स्वीकार करते हैं। पाखण्ड एवं भ्रम को साधना के मार्ग में बाधक मानते हैं। संत सदा सच्चाई को अपनाते हैं भले ही मूर्ख उनकी निंदा करें लेकिन सज्जन भक्त सदा उनकी प्रशंसा करते हैं। वे पाखण्ड और ढकोसला नहीं रखते[4]। सच्ची साधना आडम्बर विहीन है। मस्तक पर चंदन का छापा-तिलक लगाना व्यर्थ है। ऐसे पाखण्डों को जला देना चाहिए। ये धोखा हैं यथा वधिक हरी-टट्टी की आड़ में अपना शिकार करता है[5]।

---

[1] हिन्दू मुसल्मान का मज़हब, दोनें देखे भाई।
उन पटकी उन जिबह कीन्हीं, साहब क्यों सुख पाई।।
-मीतादास, हस्तलिखित ग्रंथ, संख्या-१५६

[2] मुल्ना पंडित दोउ ते हरिजन का मत न्यारा।
अल्लाह अलख खुदा ते मीता रहि ते पारा।।, वही, संख्या-१६३

[3] हिन्दू मुसल्मान दोउ में जे पहुँचे दरबार।
कह मीता ते एक हैं मान लेहु एतबार।।, वही, संख्या-१६७

[4] अज्ञानी निंदा करें हरिजन करते नाहिं।
पाखन भरम ना राखहि संतन केरि सुभाई।।, वही, संख्या-२०१

[5] छापा-माला भरम है पाखण्डी का जारि।
जैसे टट्टी हरी दय कै, वधिक लेय जीव मारि।।
वही, संख्या-३७५

सच्चाई के मार्ग का अनुशरण करने वालों के समीप ही ईश्वर का निवास रहता है । झूठे व्यक्ति के पास ईश्वर भूल से भी नहीं जाता है । मनुष्य चाहे जितना भी कपट चातुरी क्यों न करें ईश्वर से वह कुछ भी नहीं छिपा सकता । क्योंकि वह सर्वज्ञाता व सर्वगुण सम्पन्न हैं ।[1] भीता साहब भक्ति के मार्ग में अभिमान को बहुत बड़ा बाधक मानते हैं । सूर्योदय से अंधकार मिट जाता है । गुरु-ज्ञान से कुबुद्धि का नाश हो जाता है । सम्मान के अभाव में नम्रता एवं अभिमान के कारण भक्ति की समाप्ति हो जाती है । अतः भक्त को कभी भी अपनी उपलब्धियों पर गर्व नहीं करना चाहिये ।[2] साधना के मार्ग में क्रोध का नाश अपरिहार्य है । कुछ साधु पद और कविता को ही ईश्वर-प्राप्ति का साधना समझकर भ्रम में स्वयं को भूल जाते हैं । जब तक प्रियतम ईश्वर की प्राप्ति का भेद नहीं हो पाता, तब तक भक्त के अन्दर का क्रोध का समाप्त होना संभव नहीं है ।[3] सच्चे भक्त अपने बड़प्पन को कभी नहीं छोड़ते जबकि तुच्छ थोड़े से गुण पर इतराने लगते हैं । वास्तव में ऐसे सज्जन महान भक्तों की साधना ही सच्ची-साधना है । वे सूर्य के समान तीनों लोकों में अपनी पराकिरणें भेजकर उजाला करते हैं, वहीं दूसरी ओर निम्न कोटि के व्यक्ति बालू के समान पैर जलाकर कष्ट देते हैं ।[4]

---

[1] साचि ते तो हरि मिले निंदक नर के जाई ।
जन भीता सांची कहै धोखा कुछी न आई ।।
-भीतादास, हस्तलिखित ग्रंथ, संख्या- ५०२

[2] तिमुर जाति रवि दरस ते कुमति जाति गुरुज्ञान ।
सील जाति सनमान बिनु भगति जाति अभिमान ।।, वही, संख्या-५५५

[3] भरम भुलाना साधवा, कविताई मन लाय ।
मरम न पाया जीव का, क्रोध कहां ते जाय ।।, वही, संख्या-६३२

[4] बड़ा बड़ाई ना तजे, बाछा रहीं इतराय ।
भानु तपे तिहुं लोक मां, बारु जारे पाय ।।, वही, संख्या-१२३९

मीता साहब ने निर्गुण-साधना में पांच इन्द्रियों एवं उनकी पच्चीस लिप्साओं (प्रकृतियों) के महत्वपूर्ण योगदान का उल्लेख किया है। जो इन्हें बांधकर अपने वश में करले वही ज्ञानी है। इनको नियंत्रित करने पर ही अगाध हृदय सरोवर का थाह पाया जा सकता है। तत्पश्चात् ही ईश्वर का साक्षात्कार संभव है।[1] जो इन पांचों इन्द्रियों को अपने वश में करले उसे अविनाशी परमब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है। उसको जन्म-मरण से मुक्ति एवं मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।[2] लाखों पुस्तकों का ज्ञान भी पांचों इन्द्रियों एवं पचीस लिप्साओं के ज्ञान की तुलना में नगण्य है। यदि मनुष्य इन्हें वश में करना नहीं सीखा तो उसका पुस्तकीय ज्ञान किस काम का? इसका तात्पर्य यह हुआ कि पुस्तकीय ज्ञान ईश्वरत्व प्राप्ति में सहायक नहीं बन सकता। इसके भ्रम में पड़े-पड़े मनुष्य का जीवन भी समाप्त हो जायगा।[3] मीता साहब पाखण्ड को ईश्वर प्राप्ति का साधन माननेवालों की भर्त्सना करते हुये कहते हैं कि अरे पाखण्डियों तुम अपने सिर पर पाप की गठरी रखकर भवसागर से पार होने की आशा करना तुम्हारा दिवास्वप्न है। अपने किये गये पाप के निवारण हेतु खिचड़ी और सतुआ का दान करके तुम भवसागर को पार करना चाहते हो, असम्भव है। तुम्हारी यहअविश्वास की दीवार खड़ी है।[4] तुम्हें कभी भी सफलता नहीं मिलेगी। अरे! मनुष्यों तुम सच्ची

---

[1] पांच पचीसो की लहर जो बांधै सो ज्ञानी ।
मन दरिया तब हाथै आवै, मेटै अन्तरजामी ।।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, संख्या- ३००७

[2] पांचो इन्द्रिय बसके राखै, तिन्हे मिले अविनासी ।
गरम वास कबहु ना आवै, टूट जाय जम फांसी ।।
-वही, संख्या- ११८

[3] लाखन पोथी बांचिया, बंधे न पांच पचीस ।
कह मीता हरि ना मिले, मानुष तन गा बीस ।।, वही, संख्या-३६६

[4] लिये मोट सिर पापकी, करै तरै की आसा ।
खिचड़ी सतुआ देई कै, मन आया विस्वासा ।।, वही, संख्या-४२१

साधना में रत सच्चे भक्तों से बैर तथा पाखण्डियों से स्नेह करते हो । तुम्हारा ईश्वर प्राप्ति का यह मार्ग सही नहीं है । तुम व्यर्थ ही मुक्ति की आशा करते हो, तुम्हे तो नरक में भी जगह नहीं मिलेगी ।[1] पाखण्डी सच्ची बात कहने पर बैर रखते हैं लेकिन साधना-रत सच्चे संत, जिनकी कुबुद्धि नष्ट हो चुकी होती है, वे इन पाखण्डियों के भ्रम में नहीं पड़ते हैं । वे कभी भी इनके बहकावे में नहीं आ सकते ।[2]

मीता साहब ने गृहस्थ जीवन के अन्तर्गत ही ईश्वर-साधना पर बल दिया है । बनावटी वेश उन्हें पसंद नहीं है । छद्मवेश बनाकर घूमने से मनुष्य भक्त नहीं कहा जा सकता । संत इन पाखण्डियों के चक्कर में नहीं पड़ते । वे तो गृहस्थ आश्रम का पालन करते हुये भक्ति की साधना में लीन रहते हैं ।[3] जो गृहस्थ-आश्रम का परित्याग करके, सिर मुड़ाये हुए, अपने आपको सन्यासी कहते हुये बिना योग-समाधि के विचरण करते हैं, वे सच्चे सन्यासी नहीं हैं । वास्तव में जो पांचों इन्द्रियों को वश में करके रखते हैं वे ही सच्चे अर्थों में सन्यासी हैं ।[4]

---

[1] हरि दासन सौ बैर भावई, पाखण्डी का भौरा ।
मुक्ति की आशा करते हैं, नरकौ नाहि ठौरा ।।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, संख्या- ७२१

[2] सांच कहे ते बैर करत है, पाखण्डी जग लोय ।
मीता भरम न राखई, दुरमति डारि खोय ।।, वही, संख्या- ७२२

[3] संत साह गृह में भये, किरखी कै कै खाय ।
कह मीता कै वेस का, सतगुरु मा पतियाय ।।, वही, संख्या- ६९०

[4] गृह ते उतरे मूंड़ मुड़ाये, नाम धरा वैरागी ।
कह मीता जिन पांचो मारे, ते गिरही वैरागी ।।
-वही, संख्या- ३५२

मीता साहब की साधना पद्धति कृत्रिम नहीं है । कुछ लोग द्वारिका में शरीर को जलती हुयी लोहे की शलाखों से जल जाते हैं । चलते-चलते उनके पैरों में फफोले पड़ जाते हैं । सिर मुड़ाकर भांड़ जैसा वेश बनाकर भक्त होने का ढोंग भरते हैं लेकिन उनका मन वञ्चनाओं में ही लीन रहता है । इस प्रकार की ईश्वर साधना व्यर्थ है ।[1] कुछ पाखण्डी सन्त शरीर में राख लगाकर योगी कहलाने का स्वांग रचते हैं । वे वास्तव में योगी नहीं हैं क्योंकि योगी उनकी तरह भीख मांगकर नहीं खाते हैं ।[2] झूठे संतों का भगवत प्रेम बाजीगर के बन्दर के समान है । न तो ऐसे लोगों को ईश्वरत्व की प्राप्ति होती है और न उनका मन सन्तुष्ट होकर कहीं स्थिर हो पाता है ।[3] बिना ईश्वर को जाने इनका यहां-वहां घूमना बन्दर के दौड़ से अधिक नहीं । बन्दरों की तरह इनका कहीं भी निश्चित स्थान नहीं होता है । इनकी साधना स्थिर नहीं होती क्योंकि इनका एक ब्रह्म पर विश्वास नहीं है ।[4]

मीता साहब ने मन के अन्दर ही ईश्वर का निवास बताया है । ईश्वर मन्दिर, मस्जिद या वन में नहीं रहता है वह घट-घट में विद्यमान है । जो उसे घट (शरीर) के अतिरिक्त अन्यत्र बताते हैं वे शीघ्र ही काल

---

[1] देह दगाई द्वारिका, गोड़न पड़ गये फलुका ।
मुड़ मुड़ाये भांड़ ही आये, मन तैसे का तैसा ।।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, संख्या- ३३७८

[2] छारि लगाई देह मां जटा रखाई सीस ।
कह मीता ह जोगिया, मांग खाई का भीख ।।, वही, संख्या-125

[3] जो बाजीगर फैलना, यों झूठे का प्रेम ।
ना हरि मिले ना मन बंधा, वाके प्रेम न नेम ।।, वही, संख्या-१२६

[4] बिना भेद का ज्ञानियां जो मरकट की दौर ।
ड्यां ते कूद ड्डां गये, नहीं ठिकान ठौर ।।, वही, संख्या-१२८

क्वचित हो जाते हैं[1]। यदि किसी संत ने ईश्वर का निवास घट में बता दिया किन्तु ईश्वर को अन्यत्र ढूंढ़ता है, तो उससे कोई लाभ नहीं है । जो सच्चे भक्त ईश्वर को घट के भीतर प्राप्त कर लेते हैं वे सम्मान के योग्य हैं[2]। ईश्वर रूपी हीरा शरीर के भीतर ही विद्यमान है । संतों की संगति से ही उसकी उपलब्धि संभव है । व्यर्थ का सन्यासी कहलाकर ईश्वर की खोज में वन-वन फिरने से कोई लाभ नहीं । वन में तो जड़ कूढ़ा होते हैं ईश्वर नहीं[3]। पुस्तकीय ज्ञान-गर्व को त्यागकर सच्चे मन से ईश्वर पर ध्यान लगाने से मोक्ष की प्राप्ति संभव है । निरर्थक ज्ञान के द्वारा लाखों की गणना से कोई लाभ नहीं । जब तक धन नहीं है तब तक गिनती व्यर्थ है[4]।

भीखा साहब अपनी भगवत्भक्ति के स्रोत को बतलाते हुये कहते हैं कि जो भक्त दसवां द्वारा खोलने में समर्थ हो पाते हैं वे ही ईश्वर का साक्षात्कार कर पाते हैं । जो चौदहों भुवनों के नश्वर सुख को छोड़कर आगे बढ़ जाते हैं हम उन्हीं के मार्गों पर चलते हैं क्योंकि वह संतों का मार्ग है[5]। ईश्वर की साधना में मूर्खों के साथ चुप होकर बैठें और सज्जनों के साथ हंसकर

---

[1] घट ही मा हरि पाइये, अनत नहीं वह ठौर ।
जो अन्तै बतलावई, काल करौ तेहि कौर ।।
– भीखादास, ह०लि०ग्रंथ, संख्या- ३११

[2] घटहि बताये का भयो जो खोजा ना ठौर ।
कह भीखा जिन पाइया, तिन माथे की मौर ।।,वही,संख्या- ३१३

[3] हीरा काया भीतरे, संगत करै सो लेय ।
कहं भीखा बाका फिरे, वन में विरछे होय ।।, वही,संख्या- ३१८

[4] ज्ञान छाड़ करु ध्यान का, पावै पद निरबान ।
जो गनती लाखन गनी, बिन धन का परमान ।।, वही,संख्या- ३२८

[5] दसवां द्वारा खोलिया भिटा सिरजन हार ।
चौदह तज आगे गये, अलख पंथ हमार ।।, वही, संख्या- ३२६

बोले - संत मीता के यही अमूल्य शब्द हैं[1]।

मनुष्य को सुन्दर शरीर प्राप्त हो जाय, सुलक्षणा नारी के साथ उसका विवाह भी हो जाय, धन-दौलत उसके चरण-चूमने लगे फिर भी ईश्वर-भक्ति के बिना सब कूड़े-कर्कट की तरह व्यर्थ है[2]। ब्रह्म एवं पंच तत्वों के संयोग से नर-नारी दोनों का निर्माण हुआ है जो सन्त आत्म तत्व को समझ गये हैं वे उसी में रमे हैं। उनके लिये नर-नारी दोनों समान है[3]। मीता साहब ब्राह्मण को ईश्वर से साक्षात्कार किये हुआ मानते हैं। वास्तव में जो पूर्ण ब्रह्म से साक्षात्कार कर लेता है वही ब्राह्मण है। नहीं तो व्यर्थ का ढकोसला रखने वाले सब शूद्र हैं, जन्म चाहे उनका किसी कोख से क्यों न हुआ हो[4]। संसार जिन्हें ब्राह्मण की उपाधि देता है वे वास्तव में ब्राह्मण नहीं है। लोग मुख को ब्राह्मण, हाथ को क्षत्रीय, पेट को बनिया एवं पैर को शूद्र कहते हैं। ये सभी अंग तो मनुष्य के शरीर में ही विकसित हैं। अतः इस परिभाषा से न तो कोई ब्राह्मण हुआ और न कोई शूद्र[5]। जो अपने अच्छे कर्मों से ब्राह्मण बनते हैं वे संत होते हैं। जीव का ब्रह्म से जब साक्षात्कार

---

[1] मुरुख सो चुप रहे, सुज्जन सो हंस बोल।
संतो यही विचार है, मीता सबद अमोल।।
- मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, संख्या- २७६

[2] काया सुन्दर बहु बनी, मिली सुलच्छनि नारि।
घर बाहर लछमी भरी बिना-भगति बंभारि।।, वही, संख्या-३६५

[3] पांच तत्व और ब्रह्मते, नर नारी दोउ कीन।
संत न के दोउ एक ते, जे आतम लवलीन।।, वही, संख्या ७८६

[4] पूरन ब्रह्म जे मिले, सो जन ब्राह्मण होय।
नाहीं तो सब सूद्र हैं, कोनो कुबखा होय।।, वही, संख्या-७८१

[5] मुख ब्राह्मण कर छत्रिया, पेट वैश्य पग सूद्र।
इ अंग सबहि तन में, को ब्राह्मण को सूद्र।।, वही, संख्या-३२२५

हो जाय तभी वह ब्राह्मणत्व को प्राप्त करता है केवल ब्राह्मण कहे जाने वाले परिवार केबीच से जन्म लेने वाला ही ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता।[1] यह संसार ऐसे ही मनुष्यों को भ्रमवश ब्राह्मण समझ बैठा है।

संत कभी भी अपनी उदरपूर्ति के लिये गद्दी (मठ) चलाने की आज्ञा नहीं देते।[2] कबीरदास, नानक, नामदेव, धर्मदास व दादू जैसे महान संतों ने कभी भी गद्दीधारी प्रथा को प्रश्रय नहीं दिया। लोग व्यर्थ ही वाद-विवाद करके उनके पंथ का अपमान करते हैं।[3] भीखा साहब ने साधना के मार्ग में सच्ची भगवद्भक्ति को प्रधानता दी है, लौकिक कार्यों को नहीं। अजामिल को लोग व्यर्थ ही पापी और बधिक कहते हैं। वह पूर्व जन्म का बहुत बड़ा भक्त था। सद्गुरु की कृपा से आवागमन से मुक्ति पाकर उसने ईश्वरत्व को प्राप्त कर लिया।[4] सदन कसाई केवल कहने के लिये ही अपने रोजगार के कारण कसाई था। वह पूर्वकालीन ईश्वर भक्त था। अपनी पूर्वकालिक साधना में वह योग की अन्तिम सीढ़ी की सुरति-साधना तक पहुंच चुका था थोड़ी सी चूक हो जाने पर उसे इस संसार में पुन: जन्म लेना पड़ा।[5] लेकिन वह पुन: अपनी साधना

---

[1] जीव ब्रह्म का जब मिले, सो जन ब्राह्मन होय।
कोहे ब्राह्मन झूठ हैं, भूले हैं जग लोय।।
-भीखादास, ह०लि०ग्रंथ, संख्या-४२६

[2] संत न पंथ चलावहं, झूठे कन्हे ब्वार।
भीखा सांच पुकारहं सब संतै एक विचार।।, वही, संख्या-५२१

[3] दास कबीरा नानिक नामा, धर्मदास औ दादू।
इन संतन नाहिं पंथ चलावा झूठे करहं वादू।।, वही, संख्या-५१९

[4] अजामिल वदनाहता, हता पीछला दास।
तब सद्गुरु किरपा करी, पहुंचा हरि के पास।। वही, संख्या-४२८

[5] सदन कसाइ कहन का रहे पुरातिन दास।
सुरति चली जग में परा, फिर पहुंचा हरि पास।। वही, संख्या-५२६

के प्रयास से ईश्वर के सामीप्य को प्राप्तकर इस आवागमन से मुक्त हो गया । गणिका वेश्या जिसको अज्ञानी लोग पापी कहते हैं वास्तव में वह पाप आत्मा नहीं थी । वह सुरति-साधना के अन्तिम सोपान से डिग जाने के कारण फिर धरती पर आ पड़ी थी । अपनी साधना पूरी करने के पश्चात् पुन: ईश्वरत्व को प्राप्त हुयी ।[१]

भीखा साहब साधना के मार्ग में विषय-वासना को बाधक मानते हुए कहते हैं कि जो विषय-वासना के साथ-साथ ईश्वर-भक्ति का इच्छुक है वह अपने आपको धोखा दे रहा है । वह ईश्वरानुयायी नहीं बन सकता । जब भक्त अपने शरीर के सुख-दुख को भूल जाय तभी ईश्वर की प्राप्ति संभव है ।[२] बार-बार गर्भ में पड़कर विभिन्न योनियों में जन्म लेना और मरना यही नरक है । सच्ची भगवद्-भक्ति ही इसका निवारण है । अन्यथा कभी सूअर, कभी कुत्ता कभी राजा का जन्म लेकर जीव को बारबार भुगतना पड़ेगा ।[३]

भीखा साहब की साधना पद्धति के दार्शनिक निरुपण को अच्छी तरह समझने के पूर्व हमें गोरखनाथ एवं कबीरदास जी की साधना-पद्धतियों पर दृष्टिपात करना श्रेयस्कर होगा । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में यह स्वीकार किया है कि गोरखनाथ जी ने पतंजलि ऋषि

---

[१]गणिका पापी न हती, पापी कहता तौन ।
सुरति डिगी इहां अवतरी, फिर पहुंची हरि भौन ।।
-भीखादास, ह०लि०ग्रंथ, संख्या- ३०१

[२]विषै चाहै और हरि चाहै, कैसे करि का होय ।
देह बिसारै तब मिलै, कहुवा भीख न होय ।।, वही, संख्या-३०५

[३]गरभ वास तो नरक है, तौन बचावे कौन ।
कबहुं का सुकर कुकुर, कबहुं का राजा भौन ।।, वही, संख्या-६७६

के उच्च लक्ष्य - ईश्वर प्राप्ति को लेकर हठ योग का प्रवर्तन किया ।[१]
डा० सरनाम शर्मा ने `ह` का अर्थ `सूर्य` और `ठ` का अर्थ `चन्द्र` से लिया
है । उनका कहना है कि `सूर्य` और `चन्द्र` हठयोग की पारिभाषिक
शब्दावली में क्रमश: `इड़ा` और `पिंगला` नाड़ी के प्रतीक हैं । अतएव हठयोग
वह साधना है जिसमें `इड़ा` और `पिंगला` `सुषुम्ना` में मिल जाती है ।
हठयोग का प्रथम उद्देश्य प्राण-निरोध है । इसलिये हठयोग साधना एक प्रकार
से प्राण-साधना ही है जो कायिक-साधना से अभिन्न है । `गोरखनाथ` की
साधना अपने मूलरूप में कायिक-साधना नहीं है ।[२] गोरखनाथ जी मन साधना
को वेदशास्त्र आदि का ज्ञान नहीं मानते हैं । उनका कहना है कि वेदशास्त्रों
व कुरान की आयतों में जिस परमब्रह्म का वर्णन नहीं है उसे भी योगी जानते
हैं ।[३] गोरखनाथ जी मुसलमानों की हिंसक प्रवृत्ति की आलोचना करते हुये कहते
हैं कि हे, काजी, तुम मुहम्मद-मुहम्मद मत करो क्योंकि मुहम्मद साहब का मार्ग
हिंसा का नहीं था । उनका मार्ग दया और प्रेम का था जो तुम्हारे लिये बहुत
दुष्कर है । उनके हाथ में जो छुरी थी वह इस्पात की नहीं शब्दों की थी,
विषय-वासनारूपी जीव की हत्या के लिये थी मुहम्मद साहब का बहिर्मुख
जीवन नष्ट हो गया था । वे अपने आध्यात्मिक जीवन में जी रहे थे । तुम्हारे
शरीर में वह आत्मिक बल नहीं जो मुहम्मद साहब में था । तुम इस भ्रम में न
भूलो । मुहम्मद साहब को वास्तविक रूप में पहचानने की कोशिश करो ।[४]

---

[१] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास (संवत्-१९५७), पृष्ठ-१६ ।

[२] डा० सरनाम सिंह शर्मा, कबीर-कृतित्व एवं सिद्धान्त, (संवत् १९६६), पृष्ठ-३८७ ।

[३] डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल (सम्पादित), गोरखबानी, पदसंख्या-६

[४] वही, पदसंख्या- ८,१० तथा ११ ।

बाह्य साधना या बाह्य पूजा को गोरखनाथ जी योग का मार्ग नहीं मानते । उनका कहना है कि नागा, मौनव्रती व केवल दूध पीकर रहने वालों को योग साधना नहीं प्राप्त हो सकती ।[1] पयाहारी का मन सदा दूध लाने वाले के घर रहता है । नागा का मन ठंडक में शरीर को गर्म रखने वाली लकड़ी में रमता रहता है । मौनी को सदा एक व्यक्ति के सहारे की आवश्यकता रहती है ।[2] कुछ कच्चे साधक बाहरी क्रियाओं को ही योग समझ बैठते हैं कोई इस संसार में आवागमन को ही श्रेष्ठ समझ बैठता है, कितने भिक्षाटन को ही जीवन-यापन का अच्छा साधन समझते हैं । कुछ साधक गृहत्याग करके जंगल में वृक्षा के नीचे रहते हैं । वास्तव में ये सब केवल बाहरी-साधनायें हैं । आत्मिक-ज्ञान से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है ।[3] हे ! पण्डितो जिस ज्ञान को तुम पढ़ कर समझे उसे साधना करके सीखो । इस भव-सागर से पार उतरना कोई ज्ञान से नहीं अपने कार्यों से ही सम्भव है ।[4] गोरखनाथ जी कहते हैं कि शरीर रूपी मठ में मन रूपी योगी रहता है । योगी ने पांच तत्वों का कंथा बनाया है । क्षमा को उसने ढाल और ज्ञान को उसने तलवार बना रखा है । वह सद्बुद्धि की खड़ाऊ और विचार का डण्डा सदा उपयोग में लाता है ।[5] अति चंचलता से चन्द्र से अमृत का स्राव होता रहता है । स्थिर रहने से ब्रह्माग्नि का उद्गार होता है । चंचलता और स्थिरता के बीच की अवस्था से योगी को एक सिद्धि प्राप्त होती है जिससे योगी अदृश्य हो जाता है ।[6] यही मन शिव है यही मन

---

[1] डा० पिताम्बरदत्त बड़थ्वाल (सम्पादित), गोरखबानी, पदसंख्या-३६ ।

[2] वही, पद संख्या-४० ।

[3] वही, पद संख्या-५८ ।

[4] वही, पद संख्या-५६ ।

[5] वही, पद संख्या-४८ ।

[6] वही, पद संख्या-४६ ।

शक्ति है और यही मन पांच तत्वों से निर्मित जीव है । शिव और शक्ति के संयोग से योगी को तीनों लोकों की बातों का ज्ञान हो जाता है ।[१]
गोरखनाथ जी साधक के कायाकल्प के विषय में वर्णन करते हुये कहते हैं कि है । योगी तुम शरीर के नवों द्वारों को बन्द करलो । इससे शरीर के चौसठ बाजारों में व्यापार होने लगेगा । अर्थात् शरीर के इन वाह्य नव दरवाजों के बन्द हो जाने पर भीतर के चौसठों भागों में योग का व्यापार प्रारम्भ हो जाता है । इस प्रकार योगी का कायाकल्प हो जाता है और वह परम सिद्ध को प्राप्त हो जाता है ।[२] है । योगी तुम प्राण (श्वास) को वश में करो । इससे मन की उन्मना अवस्था सिद्ध हो जाती है । अनहद् नाद रूपी तुरही के बजने पर तुम्हें ब्रह्मरन्ध्र में सूर्य-चन्द्र के ब्रह्म का अलौकिक प्रकाश दिखाई देगा । केवल छठे-छमासे कायाकल्प के द्वारा काया को नवीन करो । नवो द्वारों को रोककर केवल कुंभक विधि द्वाराकायाकल्प संभव होता है ।[३] शरीर में फैले सहस्त्र नाड़ी जाल में जब पवन का संचार होगा तब अनाहत नाद सुनायी देगा । जब उस परमब्रह्म का प्रकाश फैलेगा तब वायु बहत्तरों चन्द्रमाओं को सोख लेगी ।[४] सहस्त्र दल कमल में अमृत की वर्षा करने वाला चन्द्रमा स्थित है । लेकिन सामान्य जीव को अमृत नहीं मिल पाता । क्योंकि मूलाधार में स्थित सूर्य उसे सोख लेता है । चन्द्रमा के प्रकाश से वंचित रहना ही वास्तविक अमावस है । सूर्य-चन्द्र का संयोग ही योग साधनाओं का प्रधान उद्देश्य है । जहां चन्द्र का प्रकाश स्पष्ट न होने से अमावस था वहां अब चन्द्रमा स्पष्ट रूप से

---

[१] डा० पिताम्बरदत्त बड़थवाल (सम्पादित), गोरखवानी, पद संख्या-५० ।

[२] वही, पद संख्या-५१ ।

[३] वही ।

[४] वही, पद संख्या-५२ ।

चमकने लगता है । इसी को कहते हैं कि नाद विन्दु में समा गया है और अनाहत नाद की तुरही बजने लगी है।[1] चन्द्र और सूर्य के योग से जब उन्मना अवस्था आती है तब ब्रह्मरन्ध्र में अमृत का स्राव होने लगता है । उसका सूक्ष्म शब्द स्थूल रूप में परिणित होकर रजोगुण का कारण बन जाता है । मूल की ओर सरकता हुआ विन्दु ऊर्ध्वगामी हो जाती है । यही अमृत्व की ओर जीव का अग्रसर होना है । क्योंकि जीव के ऊपर से काल का प्रभाव लगभग दीर्घ हो जाता है।[2] है । अवधूतों - सर्वप्रथम सुषुम्ना नाड़ी में नाद की भनक सुनाई पड़ती है । उष्ण-पिंगला नाड़ी में पवन का संचार होने लगता है एवं शीतल इड़ा नाड़ी में पवन (वीर्य) का निवास रहता है।[3] सूर्य नाड़ी में उष्ण वातावरण के कारण पवन का वेग बहुत तीव्र होता है लेकिन जब इंड़ा (चन्द्र) नाड़ी में इसका प्रवेश होता है तो वह स्थिर हो जाता है । जब श्वांस बाहर निकलती है तो सूर्य नाड़ी चलती है तथा जब शरीर के भी भीतर प्रविष्ट होती है तो चन्द्र नाड़ी चलती है । लेकिन योगी इन दोनों को छोड़कर तीसरे सुषुम्ना नाड़ी में शरण लेता है।[4]

सिद्धों, तान्त्रिकों तथा वज्रयानों की सिद्धयों योगों प्रयोगों में कितनी ही नवीनता, एकरूपता तथा मौलिकता क्यों न रही हो- कलान्तर में रूढ़ियों एवं आडम्बरों के कारण यह योग केवल साधारण जनता के लिये निरक्षर का विषय बनकर रह गया । इन सिद्धियों एवं मंत्रों-तंत्रों में इतना आकर्षण एवं आश्चर्य था कि साधारण अशिक्षित जनता स्वत: इसका शिकार

---

[1] डा० पिताम्बरदत्त बड़थवाल (सम्पादित), गोरखवानी, पद संख्या- ५४ ।

[2] वही, पद संख्या-५५ ।

[3] वही, पद संख्या-५६ ।

[4] वही, पद संख्या-५७ ।

बनती चली गयी । यद्यपि गोरखनाथ का प्रादुर्भाव इन सामाजिक रूढ़ियों को ध्वस्त करने का कारण बना फिर भी इसके आकर्षण को पूर्णतया विनिष्ट नहीं किया जा सका । गोरखनाथ जी ने कठिन वैराग्य एवं आध्यात्मिक रूप से परिष्कृत योग का श्रीगणेश किया । उन्होंने योग के वाह्य सतह पर केन्द्रित भाव भक्ति पर इतना बल नहीं दिया जितना प्राण-मन के स्थायीत्व पर । गोरखनाथ जी के अथक प्रयास से यद्यपि जादू, टोने, मंत्रों के विचित्रता पर से मनुष्य का विश्वास कम होकर योगपरक तत्वों पर दृढ़ होने लगा लेकिन सिद्ध मत की कुछ प्रक्रियायें - जैसे आकाश में उड़ना, पानी में बैठना, पानी पर चलना एवं कायाकल्प आदि का सम्बन्ध किंवदन्तियों के रूप में योगियों से जुड़ने लगी ।

कबीरदास जी की योग-साधना का स्वरूप:

यद्यपि गोरखनाथ जी ने विशुद्ध योग एवं आध्यात्मवाद की भावना का प्रचार एवं प्रसार किया लेकिन समाज की कुरीतियों, हिन्दू-मुस्लिम आडम्बरों को काट-छाँट कर उसका परिष्कृत रूप प्राप्त करने के लिये जनता अब किसकी खोज करती ? कबीर दास जी ने सरस योग साधना पद्धति का निरूपण कर योग की व्यापक अभिव्यंजना की । योगियों की अलख-अक्खड़पन में शील एवं विनम्र मोहक सारगर्भित भावों का समावेश करना कबीरदास जी की निजी विशेषता थी । नाथ सम्राट गोरखनाथ जी का आध्यात्मिक योग अब कबीरदास तक आते-आते अपने लक्ष्य से विमुख हो गया था उसके अन्तर्मुख योग को पूर्णतया कायिक और बहिर्मुख साधना की संज्ञा दी जाने लगी थी । कबीरदास जी विवश होकर नाथ पंथ एवं उसके अनुयायियों को कठोर फटकार सुनानी पड़ी । कबीरदास जी ने योग और भक्ति का उचित संयोग कर उसे अपनी वाणी का प्रमुख विषय बनाया । यद्यपि कबीरदास जी ने गोरखनाथ

के आध्यात्मिक योग को ही अपनाया लेकिन उसमें लबीलीउदार प्रवृत्तियों के समावेश से योग को एक विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया । आध्यात्मिक योग भक्तियोग एवं प्रेमाभक्ति के अद्भुत समन्वय से उन्होंने निर्गुण भक्ति की एक नवीन परिष्कृत योगधारा का निर्माण किया । कबीरदास जी ने जीवन का सारतत्व संग्रहित किया । इस सारतत्व को उन्होंने योग-साधना का प्रमुख-विषय बनाकर धर्म के उन गूढ़तत्व का प्रतिपादन किया जिसके अभाव में जनता आडम्बरों एवं रूढ़ियों के गर्त में पड़ी सिसकियां भर रही थी । उन्होंने न तो किसी की पद्धति-विशेष का अनुकरण किया, न किसी को प्रश्रय देकर उसके महत्व को बढ़ाया । बल्कि उन्होंने पूर्ववर्ती साधनाओं की क्लिष्टियों का सरलीकरण किया । उनका उद्देश्य भ्रमित साधना को भ्रम से मुक्त करके उसे सत्पथ प्रदान करना था । उन्होंने पातंजलि, गोरखनाथ, भर्तृहरि आदि महान संतों की योग साधना को उसी रूप में स्वीकार न करके उसे अपने अनुसार परिवर्तित किया है । यद्यपि कबीरदास जी ने अपने पूर्ववर्ती पातंजलियोग, अष्टांगयोग, षडांगयोग, सांख्ययोग एवं हठयोग के कुछ अंशों को स्वीकार किया किन्तु पूर्णतया उनका अनुकरण नहीं किया । हठयोग योग की तो उन्होंने कटु आलोचना भी की है । वे आत्मा को अनेकरूपों में विभक्त होना स्वीकार नहीं करते हैं । ईश्वर एवं जीव के भिन्न-भिन्न स्वरूप भी उन्हें ग्राह्य नहीं । वे आत्मा और परआत्मा का एकरूप मानते हैं । यही आत्मा परमात्मा में लीन होकर सम परिस्थितियों में एकाकार हो जाती है । कबीरदास जी ने मनोयोग का अवलम्बन लेकर भक्तियोग के मार्ग को प्रशस्त किया । मन को सांसारिक कुरीतियों, आडम्बरों, राग-द्वेष से विमुख होकर अभेद की नीति प्रस्तुत करना उनका प्रमुख लक्ष्य था । अपनी मनोयोग की साधना के अन्तर्गत उन्होंने राम-रहीम, हिन्दू-मुसलमान तथा राजा और रंक दोनों में अभेद प्रदर्शित किया है[१] । कबीरदास जी ने योग-साधना को मधुर लौकिक संबंधों से

---

[१] कबीर ग्रंथावली, पद संख्या- ३२७ ।

तुष्ट करने का प्रयास किया । ईश्वर को वे प्रियतम तथा अपने आपको उसकी प्रियतमा बनाकर मधुर अमरप्रेम के माध्यम से परम्परागत योग की कड़ियों का निर्माण किया है[1]। योग में परम्परा योग, कुण्डलिनी योग, नादविन्दु योग, नादानुसंधान, सुरति-निरति योग अजपाजाप आदि का स्पष्ट रूप से निर्वाह किया है । पूर्ववर्ती क्लिष्टतम योगों के बीच मध्यमार्ग की सहज-योग साधना के कबीरदास जी अनुयायी हैं[2]। कबीरदास जीनेकुछ उलटवासियों का प्रयोग काव्य में किया है । वास्तव में उनकी उलटवासियाँ योग के क्षेत्र विशेष किन्तु योग का अभिन्न अंग बन गयी हैं । उलटवासियों के लिखने का एक प्रतीकात्मक कारण भी है । मन की भाँति सदा बहिर्मुख रहती है जब अन्तर्मुखी होती है तभी सुरति-निरति का स्वतः मिलन हो जाता है और जीव को शब्द ब्रह्म के अनाहत नाद की ध्वनि सुनायी देती है । वास्तव में कबीरदास जी ने अतिवाद एवं समभाव के एक समदृष्टि का विवेचन किया है ।

संत भीखा साहब की योग-साधना:

भीखा साहब ने अपनी योग साधना में विभिन्न मनःस्थितियों का विवेचन किया है । मन को उन्होंने बहुत ही चंचल और उच्छृंखल माना है । यह इतना चंचल है कि इसे एकेन्द्रित करना बहुत कठिन है । इसकी महत्वाकांक्षा तो इतनी है कि यह सदैव महाराजा के समान हाथी पर चढ़कर राजभोग को भोगना चाहता है लेकिन इसके कर्म इतने पतित हैं कि गर्दभ की सवारी भी

---

[1] कबीर ग्रंथावली, पदसंख्या-१९७ ।

[2] वही, पद संख्या- ६६,७० ।

अप्राप्य है । ऐसे नारकीय कार्यों में रत जीव की मुक्ति कहाँ मिल सकती है ।[1] जीव के अन्दर एक ही मन विद्यमान है चाहे वह भगवद् भक्ति में लगे या लोभ-मोह में फँसकर भवसागर में तड़पता रहे । यदि भगवद्भक्ति की अपेक्षा जीव ने लोभ-मोह को अत्यधिक प्रश्रय दिया तो उसके अन्दर किसी अन्धमन की ऐसी स्थिति नहीं है जो ईश्वर से साक्षात्कार कर सके ।[2] मीता साहब मन: साधना के द्वारा ही ईश्वर को पाने का उपदेश देते हुये कहते हैं कि शरीर का प्रक्षालन तो जल से संभव है लेकिन मन की बुराई के प्रक्षालन के लिये किसका सहारा लिया जाये । क्योंकि मन के प्रक्षालन से ही ईश्वर का सामीप्य संभव है ।[3] जीव जब ईश्वर के अभाव का अनुभव करता है तो वह उसके वियोग में व्याकुल होकर ममता-मोह के रोग से ग्रस्त हो जाता है । ममता जीव को इस प्रकार अपने कैद में रख लेती है कि बिना ममता के विनाश से जीव ईश्वरत्व को नहीं प्राप्त कर सकता । अत: मन को वश में करने के लिये ईश्वर चिंतन अपरिहार्य है ।[4] मीता साहब ईश्वर का दर्शन कहीं अन्यत्र नहीं वरन मन के दर्पण में करते हैं । मनरूपी दर्पण की बुराइयों को दूर करने पर ही उसमें ईश्वर का प्रतिबिम्ब प्रतिबिम्बित होता है । ईश्वर का दर्शन मन-दर्पण में कर लेने के के पश्चात् जीव पुनर्जन्म एवं आवागमन के दुसह दुख से छुटकारा पा लेता है ।[5]

---

[1] मन हस्ती मां चहुत है कर्म न टट्टू होय ।
नरक परे की विधि करै, मुक्ति कहाँ ते होय ।।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-216

[2] मन र कुं में रमि रहा कोई नारी कोउ दाम ।
दूजा कंरवा पाइये, जौन मिलावै राम ।।, वही, दोहासंख्या-१३२६

[3] काया पानी धोइया, मन जैंह कैसे धोय ।
कहे मीता मन धोइ लै, सहज परम पद होय ।।
वही, दोहा संख्या-३५६६

[4] हरि वियोग जब व्यापई, तब ममता मरि जाय ।
ममता मारे हरि मिले, तब हरि देयु मिलाय ।।
वही, दोहा संख्या-४७१

[5] मन दरपन को माज, धनी तब लखि परै ।
बहुरि न आवै हाट, काल मुख ना सरै ।।, वही, दोहासंख्या-५१

शरीर के पश्चिम प्रदेश के निवासी परब्रह्म का निवास द्वारा सुषुम्ना के ब्रजवट कपाटों को योग के माध्यम से खोलने से ही ईश-मिलन संभव है । उसके मिलन के पश्चात् जीव स्वयं ब्रह्ममय हो जाता है [1]। यदि मनुष्य का मन पथभ्रष्ट हो गया तो भक्ति उसके लिये गूलर का फूल है । भक्ति-विमुख माया की मदिरा में रमने वाले जीव से भक्ति की आशा करना व्यर्थ है क्योंकि मदिरा के सेवन से दुर्गन्ध आ सकती है सुगंधि नहीं । अत: माया के प्रभुत्व में रमता हुआ मन ईश्वर-भक्ति को नहीं प्राप्त कर सकता [2]। मन रूपी मक्का के गहन तत्वों के खोज से ही ईश-दर्शन को सहज प्राप्त करता है इसलिये हमें मन की बुराइयों को दूर कर भवसागर से पार उतरने की चेष्टा करनी चाहिए । जब तक मन में बुराइ है उसमें काशी, उड़ीसा व मक्का जैसे पवित्र तीर्थस्थल खोजना असम्भव है [3]। हे । मियाँ जी । यदि तुम्हारा मन वश में नहीं है तो कुरान की आयतों के पाठन से तुम्हें कोई लाभ नहीं हो सकता यदि तुम परमतत्व के विषय में जाने बिना ही रोजा रखते हो तथा पाँचों वक्त की नमाज पढ़ते हो तो तुम्हारे इस ढकोसले से तुम्हारी मुक्ति नहीं हो सकती [4]।

नाद का स्वरूप:

संत साधना में नाद या शब्द का विशेष महत्व है । नाद स्वरूप

---

[1] मन दरपन का भाव धनी तब लखि परै ।
पच्छिम तारी खोल आप सा तुहि करै ।।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहासंख्या-४१

[2] मन माया में रमता, करै भगति की आस ।
कह मीता मदिरा पिये, कंहु आवै वास सुवास ।।
वही, दोहा संख्या-७९०

[3] मन मक्का का खोजकर, सबजै मिले खुदाय ।
कह मीता तज बदी का, अब ना धोखा खाय ।।
वही, दोहासंख्या-७९३

[4] मियाँ मन आये हाथ नाहिं रोजा रहै निवाज गुदरै कलमा तबै सहिये
वही, दोहासंख्या-१०२

को स्पष्ट रूप से समझे बिना योग की साधना पद्धति का वास्तविक ज्ञान संभव नहीं है । नाद का विवेचन बहुत विद्वानों ने बहुमुख से वर्णित किया है । `नाद` या `शब्द` - हठयोग, तंत्रयोग, नाथ योग व संतयोग साधना का प्रमुख विषय है । चेतन-विश्व में उत्पन्न प्रथम स्पन्दन नाद के रूप में अखिल ब्रह्माण्ड नायक तक पहुंचता है । वास्तव में शक्ति तत्व से ही नाद की उत्पत्ति होती है ।[१] तंत्रशास्त्र- `शारदा तिलक` के अनुसार शिव तत्व से शक्ति की उत्पत्ति होती है एवं शिवशक्ति के संयोग से नाद की उत्पत्ति होती है । शाक्ततंत्र में भी शिवशक्ति के संयोग से सृष्टि अथवा नाद का सृजन बताया गया है ।[२] वास्तव में शिव की इच्छा ही सारतत्व है । क्योंकि शक्ति की उत्पत्ति शिव की इच्छा के अनुसार होती है । अतः सरल शब्दों में यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि इच्छाओं के वश में ही शक्ति की उत्पत्ति होती है ।[३] लगभग सभी संतों ने शिव-शक्ति के संयोग से नाद की उत्पत्ति को स्वीकार किया है । कुछ ने इसे स्वतंत्र रूप देकर वर्णन किया है तो कुछ ने प्रतीक रूप में । आदि कवि बाल्मिकी ने `वाल्मीकि रामायण` के प्रथम सर्ग में परम इच्छाओं के वश में ही राम की कल्याणी शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ मानते हैं । डा० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित भी इच्छाओं के वश में ही राम के कल्याणकारी शक्ति के उद्भव एवं विकास पर अपना मत व्यक्त करते वाल्मिकी रामायण के अधोलिखित श्लोक को उद्धृत किया है -

> `इदा कुणामिदं तेणां राज्ञा की महात्मनाम ।
> मध्युत्पन्न माख्यानं रामायण मिति श्रुतम । (वा० रामायण)

अपने मत की प्रामाणिकता को सिद्ध करते हुये कहते हैं कि श्लोक

---

[१] डा० भानु प्रताप सिंह चौहान, कबीर साधना और साहित्य, १९७६, पृष्ठसंख्या-३१ ।

[२] इच्छा सेव स्वेच्छा संतत समवायीम् सती शक्तिः
सकारा कारस्य जातो बीजं निखिलस्य निजनिलीनस्य । -शक्तितंत्र

[३] शिवशक्ति संयोगात् जायते सृष्टि कल्पना - तत्व संदोह ।

१,५,१२ में आये हुये `रामायणमिति श्रुतम` से रामायण के श्रुति परक होने का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है । अत: वाल्मीकि की राम कथा का आधार जनश्रुति या किंवदंति नहीं है । `राज्ञा वंश महात्मनाम` से महान आत्माओं के राजवंश की कथा है । राजाओं के वंश की (राजा-रानी) कथा नहीं । वाल्मीकि के `इक्ष्वाकुवंशप्रभावो रामोनाम जनै:श्रुत:` से जिस इक्ष्वाकु वंश से राम नाम के श्रुति परक (वेद मूलक) होने का उल्लेख किया गया है, वह इक्ष्वाकु राजवंश का नहीं, इक्षा + वाक = वाणी (नाद) की इच्छाओं से उत्पन्न `प्रणव` (सूर्य) एवं नाद (वाक) से उत्पन्न सृष्टि के विकास का तात्विक चिन्तन है । अत: इक्ष्वाकु वंश वाक की इच्छाओं का वंश है । वाक = वाणी (नाद) की इच्छा से ही सृष्टि का जन्म होता है और यही श्रुत: अथवा श्रुतम का वाक ब्रह्म या सृष्टि पुरुष के रूप में उत्पन्न होता है । वस्तुत: सृष्टि वाक की इच्छा का ही परिणाम है । वाक की इच्छाओं (इक्ष्वाकु वंश) से पंच ज्ञानेन्द्रियां एवं पंच कर्मेन्द्रियों के संयुक्त परिणामों (दशरथ) से अक्षर पुरुष = नाद पुरुष राम का जन्म होता है ।[१]

शब्दों की रचना एवं व्याकरण के नियमों के अनुसार लोग शिव को पुरुष एवं शक्ति को स्त्री समझ बैठते हैं । शक्ति के रूप में ईश्वर को नारी इसीलिये कहा गया है क्योंकि वह माता के समान सृष्टि की रचना एवं पालन-पोषण करता है । लेकिन वास्तव में शक्ति ब्रह्म न तो स्त्री है न पुरुष । वह जड़ भी नहीं है ।[२]

---

[१]चन्द्रदास कृत रामविनोद, सम्पादक डा० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित, निदेशक- चन्द्रदास साहित्य शोध संस्थान, बांदा, पृष्ठसंख्या-२६ ।

[२]डा० प्रताप सिंह चौहान, कबीर साधना और साहित्य, १९७६, पृष्ठसंख्या- ।

भीखा साहब ने भी शिव की इच्छा से ही उत्पन्न शक्ति एवं नाद का बहुत ही स्पष्ट एवं सुदृढ़ व्याख्या प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक की इच्छा ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के नाश का कारण भी है।[१] भीखा साहब ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के सृजन, पालन और संहार का कारण इसी इच्छा शक्ति का व्यापार माना है। ईश्वर कभी भी इन कार्यों के लिये स्वयं नहीं अवतरित होता। उसकी इच्छा-शक्ति ही इन सभी कार्यों को सम्पादित करने के लिये पर्याप्त है।[२] भीखा साहब ने अनाहत नाद की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन किया है। उन्होंने अपने एक पद में सुन्दर रूपक द्वारा इनका अप्रतिम वर्णन करते हुये कहते हैं कि - मैंने अपने शरीर रूपी मटके में युक्ति से ब्रह्म योग रूपी दधि को रखा। सदा चलायमान चंचल पांचों इन्द्रियों को निश्चल करके तथा धैर्य को स्तम्भित करते हुये तीन गुणों (सत, रज, तम) की मथनी बनाया। रवि (इड़ा) शशि (पिंगला) दोनों के अविराम मंथन के पश्चात् नवनीत रूप तत्व-ब्रह्म की प्राप्ति हुयी। तात्विक ब्रह्म की उपलब्धि होते ही पचीसों लिप्सायें मन की दासी बन गयी। इस प्रकार संतों के आशीर्वाद से गगन-मण्डल में गम्भीर गर्जने की ध्वनि सुनाई देने लगी जो कुछ और नहीं अनाहत नाद था जिसे सुनकर मन मुग्ध हो गया।[३] भीखा साहब ने उस कुमारी

---

[१] इच्छे ते सब कीन्ह खलक रच ऐसा रे।
इच्छे ते कर नाश बली वह ऐसा रे।।
-भीखादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-७२३

[२] जिनकी इच्छा से सब होता सोकाहे धरिया अवतारे।
-वही, दोहा संख्या-७२६

[३] अब मैं तत्व मते बौराना, काह करौ ठे ग्याना रे।
येहि तन केरि कीन्ह मटकिया जोग जुगुति दधि आना रे।
धीरज खंभ किया जब निश्चल, के पांचो का डारा रे
तीन गुनन की कीई बढ़निया, रवि ससि मथबतु आना रे।
करै पचीसो सेवा ठाढ़े अब सो मन माना रे।
गाजै गगन होय कौतूहल, संतन का वरदाना रे।
काढ़ि काढ़ मिला जब माखन, भीखा मस्त दीवाना रे।।
- वही, पद संख्या- ५३०

यौवना जो निकट भविष्य में नयी नवेली दुल्हन बननेवाली है, के रूपक से अनाहत की दशा का वर्णन करते हुये कहते हैं कि अब कुण्डलिनी का मन उसके जन्म-स्थान नाभि-प्रदेश में नहीं लग रहा है, उसकी अपने प्रियतम अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक से मिलने में लगी है । पांचों इन्द्रियों और उनकी पचीस लिप्साओं को वश में करने के पश्चात् जब मूलाधार चक्र से कुण्डलिनी ऊपर की ओर अग्रसर होती है तो अनाहत् नाद सुनाई पड़ता है । यह अनाहत् नाद मधुर संगीत में बाजे के साथ निरन्तर प्रस्फुटित होता रहता है, यह योगासन की प्रथम स्थिति है । इस स्थिति में योगी का शरीर पीला पड़ जाता है । जब कुण्डलिनी अपने मूलाधार को छोड़कर आगे बढ़ती है तो नयी नवेली दुल्हन की भांति उसका शरीर मायके के वियोग में सूख काटे जैसा कृशकाय हो जाता है । ब्रह्मरन्ध्र में निरन्तर ब्रह्माग्नि जलती रहती है जिससे शरीर जलकर राख जैसे खोखला हो जाता है । वास्तव में कुण्डलिनी का ब्रह्म से मिलन अनाहत् नाद के पश्चात् ही संभव है ।[१]

मीरा साहब अनाहत नाद एवं साधना पद्धति के बारे में लिखते हैं कि योगियों की गति को विरले ही समझ सकते हैं । उनकी गति अपरम्पार है । योगी शरीर के अन्दर ही ध्यान की लय में सदा तल्लीन रहते हैं, बाह्य क्रियाओं से उनका कोई संगम नहीं होता । पंचेन्द्रियां एवं उनकी पच्चीस लिप्साओं को बांधकर वे मूलाधार चक्र में स्थित कुण्डलिनी

---

[१] अब ना नैहर मन लागी, पिया-पिया धुनि लागी ।
मूले मड़वा छावा हो, पांच पचीसो बांधि ।
अनगन बाजा बाजइं हरद बरन भइ देह ।
सूखी टटेरवा तब भई तजा गेह का नेह ।
बरै अग्नि अभिनास, जारि बारि भइ खेह ।
दूर देस गवना भयो, या विधि छूटि सनेह ।
-मीरादास, ह०लि०ग्रंथ, पद संख्या-२९३ ।

को जागृत करते हैं जिससे अनाहद् नाद की ध्वनि सुनाई पड़ती है । यह अनाहद् नाद मधुर संगीतमय वीन की ध्वनि के सदृश होता है । इस अनाहद् नाद की ध्वनि के पश्चात् ही आभ्यन्तर में ब्रह्माग्नि का उद्गार होने से ईश्वर का साक्षात्कार संभव हो पाता है ।[1] मीता साहब अनाहद् नाद की चिर प्रज्वलित अवस्था का वर्णन करते हुये कहते हैं कि ईश्वर के निवास स्थान शून्य अर्थात् गगन मण्डल में जहां ईश्वर का निवास है योगी का मन उन्मनी अवस्था में लगा रहता है । गुरु की दृढ़-सेवा भाव से उसे इस अमरपुर की प्राप्ति होती है और सभी पद इस अमर-पुर से नीचे स्थित है । यहीं पर योगी को अनाहद् नाद सुनाई पड़ता है और एक प्रकार के दिव्य भाकी का वह आनन्द लूटता है जिसका प्रकाश इस सूर्य और चन्द्र के प्रकाश के कई गुना अधिक है ।[2] मीता साहब ने अनाहत नाद के किसी पक्ष को छोड़ा नहीं है । इस अनाहद् नाद के स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हुये कहते हैं कि कुण्डलिनी के ब्रह्म समागम का प्रथम सोपान अनाहद् नाद है । यह मन रूपी सरिता का भेद ज्ञात करके षट-चक्रों को भेदन करने के पश्चात् सुरति साधना की सीढ़ी को पार करके

---

[1] अस हवै पंथ हमार जोगी गति को जाने ।
अन्दर धुनि ध्यान की, आवै नहीं आन ।
पांच-पच्चीसो बांधकर मूले लगै तार ।
अनहद वीन बजावई मति दसवें द्वार ।
ब्रह्म अगनि उदगार के रस लीना गार ।।
-मीतादास, ह०लि०ग्रं०, पद संख्या-३४५ ।

[2] सहज शून्य समान मनुवा उन्मुनि लागिर है ।
जोग जुगति विचार वेग भागते या पद लहे ।।
गुरु न माथ नवाई पूरे सेव मा दृढ़ जवर है।
अमरापुर बकशीश दीन्हा सबै पद नीचे रहे ।
तहाँ उठै अनहद नाद अगम जोति जगमग रहे ।
देखि झाका होति सांचा कुन ते न्यारा रहे ।
तहं नाहिं रजनी दिवस संध्या सदा तो एक रस रहे ।
गूंग मिसरी खाय मीता स्वाद के कैसे कहे ।
- वही, पदसंख्या- ४१० ।

अगम ब्रह्म के भेद को जानने के बाद ही अनाहत् बाजे की ध्वनि के रूप में सुनाई देता है । इसके सुनने के पश्चात् ही योगी को ब्रह्म का दर्शन संभव हो पाता है ।[१]

हठ योग की साधना एवं भीखा साहब का कुण्डलिनी योग:

भीखा साहब की साधना-पद्धति एवं उनके कुण्डलिनी योग को समझने के पूर्व यह आवश्यक है कि हम परवर्ती हठयोग की साधना एवं नाथ योग की पद्धति पर दृष्टि डालें । `हठयोग प्रदीपिका` में एक कुण्डलिनी नामक शक्ति का उल्लेख किया गया है ।[२] यह कुण्डलिनी सभी चेतन प्राणियों में व्याप्त है । प्रत्येक जीवधारी सदा तीन अवस्थाओं में पाया जाता है । चेतन (Concious), अर्द्धचेतन (Semi-concious) और अचेतन(Unconcious)। अर्द्धचेतन अवस्ता के भी दो रूप होते हैं । सुषुप्त,स्वप्न । इस प्रकार जीव सदा इन चारों अवस्था में से किसी एक अवस्था में होता है । इन चारों अवस्थाओं में शरीर का कार्य कुण्डलिनी द्वारा ही सम्पन्न होता है ।[३]

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार पायु और उपस्थ के मध्य भाग में त्रिकोण चक्र में एक स्वयंभू लिंग स्थित है । इस स्वयं भु लिंग को साढ़े

---

[१]पैठि दरियाव का भेद लै, चक्र छ बेधि मिलै सुरति था ही ।
पांच को जीत के सुरति को साधिके अगम का भेद तब हाथ आवी
बाजा अनहद बाजै ब्रह्म सो मन लागै, ब्रह्म को भेटि गह तीन तायी
- भीखादास, ह०लि०ग्रंथ, पदसंख्या-५०५ ।

[२]हठयोग प्रदीपिका, ४,१०५-८ ।

[३]डा० सत्नाम सिंह, कबीर व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धान्त, पृष्ठ संख्या-३८१ ।

तीनवलयों में लिपट कर सर्पिणी की भांति कुण्डलिनी अवस्थित है।[१] इस त्रिकोण को अग्नि चक्र भी कहते हैं। कुण्डलिनी शरीर के तीनों अवस्थाओं को कार्य करते हुये जीव को उसके गन्तव्य स्थान अमरपुर को ले जाना चाहती है। लेकिन जिस सुषुम्ना मार्ग से उसे जाना है वह उसे लेटे रहने के कारण बन्द रहता है। जो व्यक्ति इसे उर्ध्व करके इसका संचार कर लेता है वही योगी है।[२]

डा० सत्नाम सिंह - गोरखपंथ के अनुसार:

रवि की उपस्थिति नाभि प्रदेश में बतायी गयी है। नाभि पर लगातार उलाकर्षण विधि के कर्षण से भानु का प्रस्फुटन होता है जिसके फलस्वरूप कुण्डलिनी संचरित होती है। कुण्डलिनी के आगे बढ़ने से सुषुम्ना का अवरुद्ध मार्ग खुल जाता है जिससे मन और प्राण-वायु को लेकर कुण्डलिनी सुषुम्ना के मार्ग से उर्ध्व रूप में गमन करती है। इस प्रकार यह विभिन्न चक्र दल कमलों को बेधती हुये सहस्र दल कमल या अष्टदल कमल में पहुंचती है। इस समय यह कमल के डण्ठल के समान अलौकिक आभा से आलोकित होती रहती है।[३] हमारे मेरुदण्ड में प्राण वायु को वहन करने वाली बहुत सी नाड़ियां हैं जिनमें इड़ा और पिंगला प्रमुख है। ये दोनों एक साथ नहीं चल सकती। एक चलती है तो दूसरी बन्द रहती है। इन्हें गंगा और जमुना भी कहा जाता है। मौजी 'कबीर' ने अनुप्रास मिलाने के लिये इसका नाम इंगला पिंगला रखा है।[४] इन्हीं इंगला-पिंगला के बीच में सुषुम्ना नाड़ी है जिससे होकर

---

[१] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृष्ठसंख्या-४४।

[२] हठयोग प्रदीपिका- ३-१०५-८।

[३] डा० सत्नाम सिंह, कबीर व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धान्त, पृष्ठसंख्या-४११।

[४] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृष्ठसंख्या-४५।

कुण्डलिनी ऊपर ब्रह्म रन्ध्र में प्रवाहित होती है । वास्तव में सुषुम्ना भी स्वयं में पूर्ण नहीं है । इसके भीतर भी कई सूक्ष्म नाड़ियां है । सुषुम्ना के भीतर बज्रा, उसके भीतर चित्रिणी और चित्रिणी के भीतर ब्रह्मनाड़ी, जो कुण्डलिनी का असल मार्ग है । इस प्रकार सुषुम्ना वस्तुत: तीनों नाड़ियों का एकीभाव है । इस प्रकार इड़ा पिंगला मिलकर पांच होती हैं । इसलिये इनको पंच स्रोत या पांच धारायें भी कहते हैं।[१] तालु के उपर सहस्र दल कमल की स्थिति मानी गयी है । यह शरीर के बाहर स्थित है । इस स्थान को कैलाश भी कहते हैं । जब वाह्य सृष्टि मचलती है तो कुण्डलिनी की सुसुप्ता अवस्था होती है । जब योगी की समाधि अथ योग में स्थित हो जाती है तब इस सहस्र दल कमल में स्थित चन्द्र से अमृत का स्राव होता है जिसे योगी निरन्तर पीता रहता है । उसी कमल दल में कुण्डलिनी शक्ति विलीन हो जाती है जिससे योगी को अमरत्व प्राप्त हो जाता है ।[२]

प्राणायाम और नाड़ियां:

हठयोग ग्रंथों के अनुसार शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियों का जाल फैला है ।[३] लेकिन प्रायोगिक रूप में केवल इड़ा पिंगला तथा सुषुम्ना का ही महत्व है । ये तीन नाड़ियां ही प्राण-वायु के मार्ग है इनके पर्याय चन्द्र-सूर्य,अग्नि तथा गंगा जमुना और सरस्वती हैं ।[४] मीरा साहब ने कहीं-कहीं

---

[१]डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृष्ठसंख्या-४५ ।

[२]शिव संहिता, १९५-२०२ ।

[३]गो०प०, १-५ ।

[४]शिव संहिता, ५-१७३-१७४ ।

इड़ा पिंगला के लिये गंगा जमुना तथा कहीं कहीं चन्द्र सूर्य नाम भी दिया है ।[1]

शिव संहिता के अनुसार ऊपर आज्ञा चक्र होता है तथा नीचे मूलाधार चक्र । आज्ञा चक्र में स्थित प्राण वायु मूलाधार स्थित अपानवायु के बीच आकर्षण-प्रतिकर्षण होता है । योगी दोनों प्रकार की वायु को आकर्षण-प्रतिकर्षण से बचाकर सुषुम्ना में योग करा देता है ।[2] मूलाधार चक्र से प्रारम्भ होकर इड़ा और पिंगला क्रम से सुषुम्ना के दायें बायें होती हुयी ब्रह्मरन्ध्र तक पहुंचती है । इस प्रकार इड़ा और पिंगला का दो बार संगम होता है । प्रथम तो मूलाधार चक्र में दूसरे आज्ञा चक्र में । इसे त्रिवेणी कहा जाता है ।[3] भीखा साहब ने इस त्रिवेणी का स्पष्ट उल्लेख किया है ।[4]

चक्र- कमल:

हठयोग के ग्रंथों में चक्रकमल दलों को बहुत महत्त्व दिया गया है । कुण्डलिनी शक्ति जागृत अवस्था में विभिन्न कमलदलों का भेदन करती हुयी आगे बढ़ती है । योग धारा के प्रमुख रूप से छाट दल कमल को स्वीकार किया गया है । कुछ संतों ने सातवें कमल-दल को भी स्वीकार किया है जिसका स्थान शरीर से बाहर ब्रह्माण्ड में माना गया है ।[5]

---

[1] (क) 'गंग जमुन बिच मड़वा हो', भीखादास, हस्तलिखित ग्रंथ, २१५।

(ख) 'रवि शशि दोनो सम के राखे', वही ।

[2] शिव संहिता, ५-१६४ ।

[3] कबीर ग्रंथावली, पद संख्या-११,१४,१८, पृष्ठसंख्या-१८८ ।

[4] तीन लोक के ऊपर घाट हवै तिरबेनी ।
भीखा तहां नहाइया मीटी आवा जानी ।।
-भीखादास, ह०लि०ग्रंथ, पदसंख्या-१०८ ।

[5] डा० श्यामसुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, पदसंख्या-३८१-८, १३६-२१०, ६४-९८ ।

मीता साहब ने भी सभी चक्रों को अंगीकार करते हुये इन सब चक्रों के ऊपर एक अष्ट दल कमल की कल्पना की है[१]। सभी चक्रों में सर्वप्रथम मूलाधार चक्र का नाम आता है। इसे केवल मूल चक्र या आधार चक्र भी कहते हैं। सुषुम्ना के मूल में स्थित होने के कारण इसका नाम मूलाधार चक्र पड़ा। चार दलों से युक्त यह कमल दल सदा अधोमुख रहता है। यह गुदा और लिंग के मध्य में स्थित है[२]। दूसरे चक्र का नाम स्वाधिष्ठान चक्र है। इसे षटदल कमल भी कहते हैं। यह षट दलों के कमल के आकार का है। यह नाभि के पास प्रतिष्ठित है। इसकी स्थिति ऊर्ध्व मुखी होती है[३]। तीसरे चक्र को मणिपुर चक्र कहते हैं। इसकी स्थिति नाभि मूल में है। यह ऊर्ध्वमुख दसक मल दल के आकार का होता है[४]। तीसरे चक्र के ऊपर स्थित चक्र को अनाहत चक्र कहते हैं। यह द्वादश दल कमल के आकार का है[५]। मीता साहब भी इसी द्वादश कमल में भी जीव की स्थिति को स्वीकार करते हैं[६]। पांचवें चक्र की स्थिति कंठ में बतायी गयी है, इसका नाम विशुद्ध चक्र है। इसे षोडस दल कमल के नाम से पुकारते हैं[७]। षोडस कमल के ऊपर भ्रूमध्य में आज्ञा नामक चक्र है जिसमें केवल दो दल का कमल पाया जाता है। इसे आकाश चक्र भी कहते हैं[८]। सबसे ऊपर हृदय चक्र

---

[१] द्वादस कवल जीव का वासा।
अष्टकवल दल ब्रह्म त्रिवासा ।।,मीतादास,ह०लि०ग्रंथ,पदसंख्या-१९० ।

[२] कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ- ९४-९८ ।

[३] गोरखपद्धति ।

[४] कबीर ग्रंथावली, पृष्ठसंख्या-८८-४ ।

[५] वही, पृष्ठसंख्या-१९९-३१८, पद-११ ।

[६] मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, पद संख्या-१९० ।

[७] कबीर ग्रंथावली, पृष्ठसंख्या- ८८-४ ।

[८] वही, पृष्ठसंख्या-१९९-३२८, पद-६ ।

का स्थान है । इसके अतिरिक्त ब्रह्मरन्ध्र में सहस्रार चक्र की कल्पना की गयी है । इसे सहस्र दल कमल भी कहते हैं ।[१]

चक्रदल कमल और भीखासाहब:

भीखा साहब ने योग में चक्र एवं कमल दलों का बहुत ही विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण स्थान माना है । योग की प्रारम्भिक स्थिति का विवेचन करते हुये वे कहते हैं कि पांचों इन्द्रियों को वश में करने के पश्चात् काम का दमन करके अर्ध मुख कुण्डलिनी को हठाकर्षण विधि द्वारा ऊर्ध्वमुख करके सुषुम्ना के बंद द्वार को खोलने पर ही अष्टदल कमल में स्थित परब्रह्म का दर्शन संभव हो सकता है ।[२] मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी रूपी डोर को सुषुप्तावस्था से जाग्रितावस्था में लाकर तथा इसे अग्रसारित करके अधोमुख सुषुम्ना का अवरुद्ध मार्ग खोलते हैं । सुषुम्ना के इस प्रकार ऊर्ध्वमुख हो जाने पर इड़ा, पिंगला का सुषुम्ना से संगम हो जाता है । इसी संगम को त्रिकुटी कहते हैं । ऐसा ही संगम पुन: दूसरी बार तब होता है जब आज्ञा चक्र में कुण्डलिनी पर ब्रह्म से मिलकर उसमें अपने आपको लीन कर देती है । इसी संगम में अलख निरंजन ब्रह्म से जीव का साक्षात्कार होता है । इस संगम में ईश्वर की दिव्य ज्योति के समक्ष करोड़ों सूर्यों का प्रकाश भी धूमिल पड़ जाता है ।[३] जीव और ब्रह्म का स्थान अलग-अलग चक्र कमलों

---

[१] कबीर ग्रंथावली, पृष्ठसंख्या-१४४,१५८,१६८, पद २,१५४-१६६ ।

[२] भीखा पांची सी लरा अध उध के बीच ।
प्रेम पियाला पीजिया पद्म भका सीच ।।
भीखादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-१११

[३] मूल डोर मन लाइया कंज धरन मा दीन ।
त्रिकुटी सखर भेटिया, भीखा भाऊँ लीन ।।
कोटि भानु छवि ना छुवै, ते देवन के देव ।
सो भीखा पहचानिया, सतगुरु केरी सेव ।।, वही, दोहासंख्या-११३

में है । यही कारण है कि जीव और ब्रह्म में पर्याप्त भिन्नता है जबकि जीव ब्रह्म का अंश है । जो योगी इन दोनों कमल-दलों को उलटकर मिला देता है वही योगी ब्रह्मतुल्य हो जाता है ।[1] द्वादश कमल में जीव का निवास है जबकि अष्टदल कमल में सबसे ऊपर ब्रह्म का । जो प्राणी द्वादश कमल-दल को उलट अष्ट दल कमल मिला देता है वही इस भवसागर से पार उतर सकता है ।[2] मीता साहब योग-साधना के मार्ग में ब्रह्माग्नि को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं । उनका विचार है कि ब्रह्माग्नि के उद्गार के बिना शरीर रूपी जीव का घर जलना असम्भव है और शरीर के जले बिना जीव की मुक्ति नहीं । जब कुण्डलिनी के जाग्रित होने से सुषुम्ना में शक्ति का संचार होता है तभी ब्रह्मरन्ध्र में ब्रह्माग्नि की ज्वाला काम, क्रोध, मद,लोभ को जलाकर भस्म कर देती है । जब द्वादश कमल (जीव का निवास) को ब्रह्म से मिलाने के लिये उलटते हैं तो एक प्रकार की अलौकिक ज्योति प्रस्फुटित होती है तत्पश्चात् जब सुरति-निरति (समाधि-ध्यान) दोनों एक भाव हो जाते हैं तब अष्टदल कमल खुल जाता है । इस प्रकार द्वादश कमल का जीव तत्व अष्ट दल कमल के ब्रह्म तत्व में लीन हो जाता है । परमपुरुष अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक परब्रह्म से जीव का मिलन हो जाने पर योगी को संतुष्टि हो पाती है । इस प्रकार जीव और ब्रह्म का संयोग हो जाने पर

---

[1] एक कवल मा ब्रह्म है एक कवल मा जीव ।
मीता दोउ मिलावईं सोइ होत है पीव ।।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-२१६०

[2] द्वादश कवल जीव का वासा ।
अष्ट कवल दल ब्रह्म निवासा ।।
जीव ब्रह्म का एकई करई ।
कह मीता सो प्रानी तरई ।।, वही,पद संख्या- ३२०८

प्राणी जन्म-मरण के दुःखदुख से छुटकारा पा जाता है[१]। भीखा साहब गगन मण्डल के अष्टदल कमल में स्थित ब्रह्म का वर्णन करते हुये कहते हैं कि योग और युक्ति को विचार करके मन में सत् नाम का ध्यान करने से जीव का सभी भ्रम दूर हो जाता है। इस प्रकार सभी शंकाओं को निर्मूल करके अखिलेश्वर के प्रेम में योगी रम जाता है। कुण्डलिनी शक्ति के जागरण से ब्रह्माग्नि का संचार होने लगता है। इस प्रकार योगी की भूख, नींद आदि सभी तृष्णायें नष्ट हो जाती है। वह चन्द्र से झरने वाले अमृत को पीने लगता है। सुषुम्ना के मूल द्वार पर कुण्डलिनी शक्ति के संचार से अलौकिक दिव्य ज्योति का प्रकाश परिलक्षित होता है। प्राणवायु सुषुम्ना के बन्द द्वार को खोलकर गगन मण्डल में पहुंचती है, जहां पर अष्ट कमल-दल के भीतर जीव के प्रियतम ब्रह्म का निवास है। यहीं अष्ट दल कमल में भिन्न-भिन्न कमल दल की लम्बी दूरी तय करके थके हुये जीव का ईश्वर से मिलन होता है। जिस जीव को अपने प्रियतम से मिलने की पीड़ा होती है, वही इस प्रकार का दुष्कर प्रयत्न करता है। ब्रह्म से साक्षात्कार हो जाने पर मृत्यु पर जीव विजय प्राप्त कर लेता है[२]।

---

[१] रे सधुवा कुछ कैसे घर जयिया,
बिनु भर जरे कुसल है नाहीं का माला ला कथिया।
द्वादस कमल उलटिहै जबहिं किमि होइ उजियरिया।
अष्ट कमल दल कुलई तबहिं, सुरति निरति जब लगिया।।
परम हंस सो होई भवरी तब मन सो मन मथिया।
उतरै पार बार नहि आवै, काल [illegible] धथिया।।
-भीखा साहब, ह०लि०ग्रंथ, पद संख्या-२०१।

[२] सत्यनाम झकारे, करम कागज फारि डारा अगम तकारे।
जोग जुगति विचारि मन गहि, भरम भागारे।
संक तजि निसक खेला प्रेम पागारे।
नींद भूख बिसारि तृस्ना रैनि जागा रे।
ब्रह्म अगिन उद्गार लिन्ही, अमीय चाखा रे।
बरे जोति बिसाल सुन्दर मूल द्वारा रे।
खोलि खिरकी गगन पहुंचा जीव तारा रे।
अष्ट दल के कवल भीतर, मिला प्यारा रे।
कौन भेंटे जाय धावे, पिया प्यारा रे।
कहो कैसे देखि अचरज दुख भागा रे। - वही, पदसंख्या-८२६।

मीता साहब ने योग की चरमावस्था का वर्णन करते हुये बताया है कि अष्ट दल कमल में स्थित ब्रह्म से जीव का मिलन होते समय एक प्रकार की दिव्य ज्योति के प्रकाश की तुलना में करोड़ों सूर्य-चन्द्र का प्रकाश नगण्य लगता है। ऐसी अगम्य स्थिति को देखकर जीव मतवाला हो जाता है। संसार के दैनिक कार्यों से विरक्त योगी पर सब हँसते हैं। उस अलौकिक सुख की अनुभूति को वही समझ सकता है जो उस सीमा तक पहुँच चुका है दूसरा नहीं[1]। कठिन परिश्रम से योगी सभी कमल दल के सोपानों को भेदते हुए अपने गन्तव्य स्थान को प्राप्त करता है। पाँचों इन्द्रियों को वश में करके ध्यान में समाधिस्त होता हुआ योगी कुम्भ (नाभि) में स्थित कुण्डलिनी शक्ति को ब्रह्म में लीन करता है। अन्त में वह ईश्वर दर्शन से कृतार्थ होकर भवसागर से पार हो जाता है।

मीता साहब षट्चक्रों के बारे में स्पष्ट रूप से कहते हैं कि शरीर के अन्दर की नदी में पैठकर षट्चक्रों के कमलदल का भेदन करने के बाद ही सुरति-निरति का थाह पा सकता है। पाँचों इन्द्रियों को जीतने के पश्चात् सुरति-साधना पर विजय प्राप्त करके सब प्रकार से अगम ईश्वर से योगी साक्षात्कार करता है। ईश्वर से साक्षात्कार होते ही उसे अनाहत् नाद सुनाई पड़ता है।

---

[1] झलक झलके कोटि रवि ससि सुरज चन्दा तंह नाही।
देखि छवि मैं भई बावरि जगत हाँसी तब भई।
जेहि व्यापै सोइ जानै कहन की गति कुछ नहीं।
अगम सीढ़ी पांव दीन्हा सीस दे तंह चढ़ गई।
पांच सखियां संग लीन्ही निरति के तहां मिल गई।
कुंभ का जल नाह सागर सुमति ले बाढ़ी भई।
मिटा आवा जान सखियों काल फांसी कट गई।
कहे मीता बादु तज नल बिना करनी सुख नहीं॥
—मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, पद संख्या-१७६।

<u>सुरति-साधना का संक्षिप्त इतिहास:</u>

मीता साहब ने अपनी वचन-वाणी में सुरति-निरति को बहुत ही विशिष्ट स्थान दिया है। अत: सुरति-निरति साधना को विस्तृत रूप में समझने के लिये इसके इतिहास को संक्षिप्त रूप से समझना आवश्यक है। सुरति(ध्यान) को पूर्ववर्ती ग्रंथों में नादानुसंधान की संज्ञा दी गयी है। `ध्यान विन्दुपनिषद` में इसे `बीजाक्षर` एवं नादानुसंधान-योग (ध्यान-योग) अथवा सुरति योग) की महत्व पर प्रकाश डालते हुये बताया गया है कि ध्यान-योग से सभी दुष्कर पाप समूल नष्ट हो जाते हैं। बीजाक्षर परम विन्दु है। उसके ऊपर नाद की स्थिति है। जब नाद रूपी शब्द अक्षर-ब्रह्म में लीन हो जाता है तब शरीर रहित परम पद का स्वरूप योगी को प्राप्त होता है। अनाहत् शब्द के ऊपर स्थित परमपद को ग्रहण करते ही योगी के भ्रम-शंका आदि का निवारण हो जाता है[१]।

श्री आदिनाथ जी द्वारा उद्धृत सवा करोड़ लयों की स्थिति स्वीकार की गयी है। इन सभी लयों में नादानुसंधान को सबसे प्रमुख माना गया है[२]। नाभि से नाद को अनुसंधानित करके उसे एकाक्षरब्रह्म में लीन करना

---

[१]बीजाक्षरं परं विन्दुं नादं तस्योपरि स्थितम्
स शब्दश्चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमंपदम ।।२ ।।
अनाहतं तु यच्छब्दं तस्य शब्दस्य यत्परम ।
तत्परं बिन्दते यस्तु स योगी छिन्न संशय: ।।३ ।।
- ध्यान विन्दुपनिषत ।

[२]श्री आदिनाथेन सपाद कोटि लय प्रकारा: कथिता जयान्ति
नादानुसंधान कमेकमेव मन्यामहे मुख्यतमं लयानाम ।।
- हठयोग प्रदीपिका - ६६ ।

ही वास्तविक नादानुसंधान का उदय है । नाद की श्रवण करने के विधि का उल्लेख करते हुये बताया गया है कि मुक्तासन पर बैठे हुये योगी को साम्भवी मुद्रा में स्थित होकर दाहिने कान में भीतर प्रस्फुटित नाद को श्रवण करना चाहिये[1]। दोनों कानों, दोनों नेत्रों, नासिका और मुख सबको निरोधित करके शुद्ध सुषुम्ना नाड़ी मार्ग में शुद्ध अनाहत नाद को स्पष्ट रूप से श्रवण करना चाहिये । अँगूठे, तर्जनी एवं अन्य अंगुलियों से क्रमश: कान, आँख तथा नासिका को बन्द करना चाहिये । प्राणायामों में मल शुद्ध करने से नाड़ी शुद्ध होती है[2]। वास्तव में नाद की चार अवस्थायें होती हैं । आरंभावस्था, घटावस्था, परिचयावस्था और निष्पत्यावस्था । ये ही योग पद्धतियों की चार अवस्थायें हैं[3]।

नाथ सम्प्रदाय का गहन अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि नाथ सम्प्रदाय में नादानुसंधान या सुरति-साधना योग के चरमोत्कर्ष पर था । गोरखनाथ जी नादानुसंधान पर अपना मत व्यक्त करते हुये कहते हैं कि जब चन्द्र और सूर्य के योग से उन्मनावस्था आती है तब ब्रह्मरन्ध्र (शून्य-मण्डल) में अमृत का निर्झर झरने लगता है । नाद उलट जाता है । नाद सूक्ष्म शब्द तत्व का क्रियमाण स्वरूप है जो क्रमश: स्थूल रूप में परिणित होता हुआ सृष्टि

---

[1] मुक्तासने स्थितो योगी मुद्रां संधाय शाम्भवीम् ।
शृणुयाद्दक्षिणे कर्णे नादमन्त: स्थमेकाधी: ।।
हठयोग प्रदीपिका, श्लोक-६७ ।

[2] श्रवणपुट नयनयुगलघ्राण मुखानां निरोधनं कार्यम् ।
शुद्ध सुषुम्ना सरणौ स्फुट ममल: श्रूयते नाद: ।।
-वही, श्लोक-६८ ।

[3] आरंभश्च घटश्चैव तथा परिचयो पि च:
निष्पत्ति: सर्व योगेषु स्यादवस्था चतुष्टयम् ।।
-वही, श्लोक- ६९ ।

का कारण होता है । उसका सृष्टि-निर्माणक स्थूल रूप अपने मूल स्रोत की ओर मुड़ जाता है और नीचे उतरता हुआ विन्दु उर्ध्वगामी हो जाता है । जिसके फलस्वरूप काल का प्रभाव समाप्त होकर अमर तत्व में बदल जाता है ।[१] नाद की भमक अति सूक्ष्म नाड़ी सुषुम्ना में ही होती है । गरम पिंगला (सूर्य) नाड़ी में पवन का संचार होता है । शीतल (इड़ा अथवा चन्द्र) नाड़ी में वीर्य का निवास है इसकी गति को कोई विरला योगी ही जानता है ।[२]

नाथ सम्प्रदाय के पश्चात् सूफी प्रेममार्गी कवियों की वाणी का प्रमुख विषय नादानुसंधान अथवा सुरति साधना ही रहा है । प्रसिद्ध सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने भी अपने प्रसिद्ध काव्य `पद्मावत` में सुरति-साधना का स्पष्ट उल्लेख किया है । वास्तव में राजा, रत्नसेन, रूपी जीव का विभिन्न अवघट घाटियों के दुष्कर मार्गों को पारकर पद्म दल की रानी पद्मावती को वरण करने जाना और कुछ नहीं वरन् योग की विभिन्न अवघट घाटियों को पारकर विभिन्न कमल-दलों में ईश्वर को ढूढ़ना है ।[३] मीता साहब का `मोहि पिया-पिया धुनि लागी`[४] वास्तव में यह नागमती के विरह वर्णन का ही प्रारूप है ।[५] सिंहल गढ़ को उन्होंने (जायसी) कायागढ़ का नाम देकर योग स्थल की गुप्त भाग को वेध दिया है ।[६] वास्तव में यदि गम्भीर रूप से चिंतन किया जाय तो सम्पूर्ण पद्मावत (Symbolism) प्रतीकरूप में

---

[१] डा० पिताम्बरदत्त बड़थ्वाल (सम्पादित), गोरखवानी, पदसंख्या-५५ ।

[२] वही, पदसंख्या-५६ ।

[३] मलिक मुहम्मद जायसी, पद्मावत ।

[४] मीता साहब, हस्तलिखित ग्रंथ, पदसंख्या-२६३ ।

[५] मलिक मुहम्मद जायसी, पद्मावत-`विरहखण्ड`

[६] वही

नादानुसंधान का योगपरक ग्रंथ प्रमाणित है ।

मध्ययुग में कुछ संतो ने सुरति-साधना का रूप किंचित भिन्न रूप में स्वीकार किया है । बौद्ध सहजयान में पूर्वसिद्धि सहजावस्था की प्राप्य स्थिति को कहते हैं । इनके अन्य नाम भी है जिनमें निर्वाण, महासुख, सुखराज, महामुद्रा, साक्षात्कार आदि प्रमुख है । इस मार्ग के अनुयायी ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान की तृप्ति को ग्रंथि का जाल मानते हैं । अत: इनके विनिष्ट में ही साधक का कल्याण है । इन सबके ऊपर निर्विकल्प अथवा मोक्ष की प्राप्ति संभव है । यही सहजयान मार्ग की सहजावस्था है ।[1]

बौद्ध सहजयान मार्गी सहजावस्था में ही मन और प्राण की स्थिति शून्य मानते हैं । यहाँ पर चन्द्र सूर्य (इड़ा-पिंगल) का संचरण नहीं होता । क्योंकि इसके संचरण से ही कालचक्र चलायमान है । इड़ा पिंगला के स्थिर होने पर सुषुम्ना का कार्यक्षेत्र प्रारम्भ हो जाता है । सुषुम्ना का बन्द मार्ग खुल जाने पर मन की उन्मनी अवस्था प्राप्त होती है । इसकी गति ऊर्ध्व होती है अर्थात् मन जो अर्ध्व स्थिति में गति करता था अब वह उर्ध्व रूप में गति करने लगता है । अत: उन्मनी अवस्था में ही मन संसार लिप्सा को त्यागकर लय में विलीन हो जाता है । वास्तव में सहजयानी मन की सूक्ष्मतम अवस्था को भी निर्वाण के मार्ग में बाधक मानते है । अत: लय में ही उसका समाप्ति की स्थिति को ही वे निर्वाण की संज्ञा देते हैं ।[2] निर्वाण की स्थिति सूक्ष्मतम परमाणु के अभावों

---

[1]डा० प्रतापसिंह चौहान, कबीर साधना और साहित्य,(१९७६), पृष्ठ-६२ ।

[2]वही, पृष्ठ-६३ ।

सहजयान इसे महासुख कहते हैं। इस महासुख की उपलब्धि उन्हें उष्णीषाब्ज कमल में प्राप्त होती है। वास्तव में तंत्रशास्त्र, हठयोग और सुरतिशब्द योग में उल्लिखित सहस्रार चक्र ही उष्णीषाब्ज कमल है।[१] सहजयानी इड़ा को ललना तथा पिंगला को रसना के नाम से पुकारते हैं। इनके मत में गुरु की कृपा से ललना और रसना अपने मध्य में स्थित अवधूती से मिलती है। जिसका मार्ग सदा बन्द रहता है। ललना तथा रसना दोनों अवधूती के अशुद्ध रूप है। अवधूती से मिलकर ये शुद्ध हो जाती है। ललना तथा रसना दोनों अवधूती से मिलकर शून्य अथवा परमानन्द की गति को प्राप्त कर लेती है।[२] इसी अवधूती का शून्य मण्डल में मिलना संत मत सुरति योग है। सहजयानी अवधूती या सुषुम्ना को डोम्बी या डोमिन भी कहते हैं। वास्तव में ब्रह्म नाड़ी (सुषुम्ना) जब पूर्णतया अपनी अशुद्धियों का परित्याग कर देती है तभी उसे डोम्बी कहते हैं। कुछ लोग डोम्बी अथवा डोमिन को चाण्डाल की पत्नी की संज्ञा देते हैं लेकिन यह वास्तविकता से परे है। इसके नाम - अवधूती, चाण्डाली, डोम्बी अथवा बंगाली है। यह अपनी प्रारम्भिक अवस्था में भले ही अशुद्ध रही हो, परन्तु ब्रह्म नाड़ी में गुजरने के पश्चात् शुद्ध हो जाती है।[३]

संत मत में सुरति निरति योग का बहुत ही व्यापक प्रचार एवं प्रसार हुआ। वास्तव में यदि कहा जाय कि संत साधना पद्धति की सुरति-निरति रीढ़ बन गयी तो अतिशयोक्ति नहीं। सगुण विचारधारा के अनेक संतों ने भी

---

[१] डा० प्रताप सिंह चौहान, कबीर साधना और साहित्य, पृष्ठ संख्या-९४ (१९७६)।

[२] वही, पृष्ठ संख्या-९५।

[३] वही, पृष्ठ संख्या-९६।

हुये स्वीकार किया है । जगत प्रसिद्ध संत रामानन्द जी ने सगुण मार्गी होते हुये भी सुरति साधना का वर्णन किया है । अपने ग्रंथ "रामरक्षा स्त्रोत" में रामानन्द जी ने सुरति साधना योग पद्धति का स्पष्ट उल्लेख करते हुये कहते हैं कि घट से कुण्डलिनी शक्ति के सुप्तावधि से जागृतवस्था में आने पर मूल (नाभि) को बांधकर संघटन से अस्थूल का दर्शन होता है । गगन मण्डल में अनाहत नाद की ध्वनि होती है । इस प्रकार तीन गुणों से इतर औंकार की प्राप्ति होती है ।[1] पंच तत्व, पंचभूत, पच्चीस प्रकृतियां, पंच भूतात्मा, पंच वायु आदि का निवास स्थान शरीर है । रामानन्द जी कहते हैं कि इन्हें समान रूप से व्यवस्थित करने पर अनाहत नाद सुनायी पड़ता है ।[2] कुण्डलिनी की अर्ध्व गति को उलटकर उर्ध्व गति से गगन मण्डल में स्थित कमलदल को भेदन करने के पश्चात् काम, क्रोध, मद, लोभ आदि मानवी ग्रहों को समूल नष्ट करने पर सोलह कलाओं से युक्त चन्द्र का दर्शन होता है । रामानन्द जी कहते हैं कि - ब्रह्मरन्ध्र में ब्रह्माग्नि का निरन्तर उद्दीपन सांसारिक कष्ट को नष्ट कर देता है ।[3] मूल और गगन मण्डल के बीच सुषुम्ना के मार्ग से आगे बढ़ने पर महारस अमृत का स्राव होने लगता है ।

---

[1] बांधिया मूल देखिया स्थूल
गगन गर्जत धुनि ध्यान लागा
त्रिगुण रहित शील संतोष में
श्रीराम रक्षा के लिये औंकार जागा । - रामरक्षास्त्रोत ।६।।

[2] पंच तत, पंच भूत, पच्चीस प्रकृति,
पंच भूआत्मा, पंचवाई, समदिष्टि सम आगी प्राण अपान
उदन व्यान मिलि अनहद शब्द की खबर पाई । -वही ।४।।

[3] उलटिया सुर गगन भेदन किया ।
नव ग्रह डंक छेदन किया
षोडश चन्द जहां कला सारी ।
अगनि परगट भई जुरा वेदन जरी ,
डंकिनि संकिनि धरि मारी ।। - वही ।।८ ।।

इसे पीते ही मन की सारी बुराइयां निर्मूल हो जाती हैं। योगी अब काल पर विजय प्राप्त करने में सक्षम हो जाता है क्योंकि सुषुम्ना का बज्रद्वार हठाकर्षण विधि के बज्र प्रहार से खुल जाता है।[१] रामानन्द जी ब्रह्म के मिलन के समय का वर्णन करते हुये कहते हैं कि इस लोक में अलौकिक अनाहद् नाद प्रस्फुटित होता है। अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक की झिलमिल दिव्य ज्योति दिखायी पड़ती है। ईश्वर से मिलकर जीव ईश्वर तुल्य बन जाता है।[२] वहां ईश्वर के साक्षात्कार से योगी की स्थिति सच्चे लौकिक प्रेमी की भांति हो जाती है। उसके नयनों में नयन मिलने पर नयन एकटक स्थिर हो जाते हैं। मुख की ओर उन्मुख होकर योगी मुखवाणी में तल्लीन हो जाता है। उसके श्रवण में श्रवण मिलाकर अनाहद् नाद को सुनता रहता है। शब्द शब्द-ब्रह्म में शब्दमय और ध्वनि लय में लीन होकर लयमय हो जाती है।[३] योगी की समाधि अखण्ड धमाधिस्थ ब्रह्म में लीन होकर सदा उसी के नाद में लव लगाये रहती है। ध्यान उस अलौकिक ध्यान में लय होकर सदा ध्याता के संग रहता है।[४] सुरति साधना के क्षेत्र में स्वामी रामानन्द

---

[१] धरनि अकाश बीचि पंथ चलता किया
अगम-निगम महारस अमृत पिया।
भूत प्रेत दैत्य दानव संहारा किया।
बज्र की कोठरी बज्र का दुंढ है
बज्र का संगल काल मारा ॥ - रामरक्षा स्त्रोत ॥८॥

[२] झिलमिला ज्योति रूणाकार झलका रहै।
नाद बिन्दु मिल गया रंग रेला ॥ ११ ॥

[३] धुनि के नैहरो धुंनि सीझत रहै
आपसु आप मिलि आप जाग्या ॥ १२॥
नैन सो नैन मिलि नैन निरखत रहै
मुख से मुख मिलि बोल बोल्या
श्रवण सो श्रवण मिलि नाद सीझत रहै
सब्द सो सब्द मिलि सब्द बोल्या ॥ १३ ॥

[४] निरति सो निरति मिलि निरति लागी रहै
सुरति सो सुरति मिलि सुरति अवै।
ध्यान सो ध्यान मिलि ध्यारि सूझत रहै
रंग सो रंग मिलि रंग आवै ॥ १४ ॥

के पश्चात् उनके शिष्यों का अच्छा प्रभाव रहा जिनमें कबीर दास जी प्रमुख हैं। कबीरदास जी ने योग परक तत्वों एवं सुरति-साधना को विशद रूप में अपनाया और उसे एक स्वच्छ व सारगर्भित दिशा प्रदान की। यही कारण है कि आज संत निर्गुण साधना के क्षेत्र में कबीर निर्गुण काव्यधारा के पर्याय बन गये हैं। आज कबीर का निर्गुण और निगुण का अर्थ कबीरदास सामान्यजन द्वारा स्वीकार किया जाने लगा है। सुरति-निरति घाट-चक्र कमल-दल आदि का बहुत ही सूक्ष्म विवेचन कबीरदास जी ने किया है। कबीर दास जी अपने एक योगपरक पद में सुरति-निरति, चक्र-कमल दल आदि का विवेचन करते हुये कहते हैं कि हे ! विट्ठल जी आपके चरणों में मेरा मन पूर्णतया अनुरक्त हो गया है। मेरे भ्रमित मन को आप अपने निवास अष्टदल कमल में लगा दीजिये। लेकिन मैं जानता हूं कि यह तभी होगा जब द्वि-दल कमल में मध्य मेरा मन समाधिस्थ हो जाय। जहां काल नहीं पहुंच सकता, उस स्वाधिष्ठान चक्र में मूलाधार चक्र से निकल कर कुण्डलिनी पहुंच जाय। अष्टदल कमल ईश्वर का निवास है तथा सुरति चक्र ईश्वर का क्रीड़ा स्थल है। सच्चे साधक गुरू के सहयोग से अष्ट दल निवासी स्वामी (ईश) से साक्षात्कार कर सकता है। अन्यथा मानव जीवन निष्फल हो चला जाता है। कदली वृक्ष के समान रीढ़ की हड्डी के बीच नाड़ियों के जाल में स्थित मूलाधार चक्र से अनाहत् चक्र के बीच की दूरी केवल दस अंगुल की है। द्वादश कमल खोलने के पश्चात् साधक को अपना मन इसी अनाहत् चक्र में लगा देना चाहिये। इस क्रिया के पश्चात् योगी संसार में आवागमन के कार्य से मुक्त हो जाता है। टेढ़े-मेढ़े नाड़ियों के जाल के भीतर से सुषुम्ना का मार्ग है। इसी रास्ते से जाकर ब्रह्मरन्ध्र युक्त भ्रमर गुहा के घाट पर सहस्रार स्थित चन्द्र से झरते हुये अमृत रस का पान करना चाहिये। साधक को इड़ा पिंगला व सुषुम्ना की त्रिकुटी में स्नान करना चाहिये। त्रिकुटी पर योगी को सुरति (साधना) की प्राप्ति होती है। यहीं पर सुरति निरति में लय हो जाती है जिससे योगी परम ब्रह्मय हो जाता है। यहीं पर जीव से ऊपर का आवरण नष्ट हो जाता है जिससे वह पवित्र हो जाता है। तत्पश्चात् अनाहत नाद के शब्द को श्रवण

करके योगी को आगे बढ़ना चाहिये । वहाँ ब्रह्म के निवास अष्ट दल कमल में अनन्त अलौकिक प्रकाश का दिग्दर्शन होता है । चारों ओर परम ज्योति के विद्युत का प्रकाश झिलमिलाता रहता है जिससे अमृत की वर्षा होती रहती है । सभी आवागमन से मुक्त जीव चन्द्र से स्रवित अमृत में स्नान करते हैं तत्पश्चात् साधक सोलह पंखुड़ियों वाले कमल अर्थात् विशुद्ध चक्र में अपना ध्यान केन्द्रित कर लेता है । जहाँ ईश्वर से उसका तादात्म्य स्थापित हो जाता है जिससे जन्म-मरण का प्रश्न सदा के लिये समाप्त हो जाता है।[1] कबीर दास सुरति-निरति को स्पष्ट करते हुये कहते हैं कि सुरति निरति में प्रविष्ट होकर निरति के साथ एकाकार हो जाती है । सुरति निरति का आपस में तादात्म्य हो जाने पर ब्रह्म का रहस्यमय द्वार स्वयं ही खुल जाता है।[2] सुरति-निरति के विलय से जाप अजपा जाप में परिवर्तित हो जाता है । इस प्रकार साकार निराकार में विलीन होकर आत्मा और ईश्वर का एक ही रूप प्राप्त हो जाता है।[3] कबीर दास जी सुरति साधना को और स्पष्ट करते हुये कहते हैं कि साधना द्वारा ब्रह्म को प्राप्त कर लेने पर माया तरु के फल-फूल पल्लव अंकुर तथा बीज तत्व मद-मोह मत्सर आदि नष्ट हो जाते हैं । गुरु ज्ञान के प्रकाश से ब्रह्म ज्ञान की अग्नि प्रज्जवलित होती है जिससे सहस्रार स्थित चन्द्र एवं मूलाधार स्थित सूर्य की दूरी समाप्त हो जाती है । त्रिकुटी में ध्यान केन्द्रित करने पर सहस्रार एवं मूलाधार का भेद समाप्त हो जाता है । प्राणायाम द्वारा पवन की गति ऊर्ध्व करने पर ही कुण्डलिनी का जागरण संभव होता है । इस प्रकार कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, विशुद्ध, अनाहत और आज्ञा

---

[1] डा० श्यामसुन्दर दास (सम्पादित), कबीर ग्रंथावली, पदसंख्या-४ ।

[2] वही, परचा को अंग, दोहा संख्या-२२ ।

[3] वही, परचा को अंग, दोहा संख्या-२३ ।

इन षाट चक्रों को भेदा जाता है[1]। कबीर दास जी सुरति साधना की एक और स्थित का वर्णन करते हुये कहते हैं कि साधक का मन जब बहिर्मुखी मार्ग को छोड़कर अन्तर्मुखी हो जाता है तभी विषयानन्द से विरत होकर उसका मन आत्मलीन हो पाता है[2]।

सुरति साधना में महात्मा `चरणदास` जी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे सुरति-साधना एवं अनाहत् नाद पर बल देते हुये कहते हैं कि इस संसार में अनाहत् नाद के समान कोई दूसरा नाद नहीं। नाद में सारा ब्रह्म समाहित है। इससे परे कुछ भी नहीं। अपने मन को वश में करने पर पंचइन्द्रियों का व्यापार रुक जाता है। जिससे मनुष्य को दिव्यानन्द की अनुभूति होती है। सभी नाड़ियों में श्रेष्ठ सुषुम्ना ही सभी नाड़ियों की माता है एवं कुम्भक घट ही सबका पिता है। मुद्राओं से सर्वश्रेष्ठ खेचरी मुद्रा है जो अनाहत् नाद की बहन है। ब्रह्ममय जीव ही इस अनाहत् नाद को सुन पाता है। कुण्डलिनी शक्ति के जागरण से जीव ब्रह्मत्व के परम पद को प्राप्त कर लेता है वही उसका अन्तिम स्थान है। वह अनाहत् नाद की खिड़की सुषुम्ना के द्वार को खोलकर ही ब्रह्ममय हो सकता है[3]।

संतों की सुरति साधना पद्धति को प्रसिद्ध सतनाम-सम्प्रदायी-संत जगजीवन साहब ने भी अपनाया। वास्तव में उन्होंने सुरति-साधना के क्षेत्र में एक और कड़ी जोड़ दी। इनके अनुसार सर्वप्रथम आदि से जो शब्द प्रकट हुआ वेद उसी का रूप है। इसी का अनाहत् नाद कहते हैं। यही अनाहत् ब्रह्म भी है।

---

[1] कबीर ग्रंथावली, पद संख्या- ६९।

[2] वही, पदसंख्या- ७०।

[3] वही, पद संख्या- ७२।

`शब्द` की महिमा का वर्णन संत ही कर सकते हैं । शब्द का प्रथम रूप अत्यन्त सूक्ष्म है । उसका दूसरा रूप स्थूल है । आत्मा में ही उसका स्वरूप ध्वनित होता है । शब्द का दूसरा रूप नाभि से प्रस्फुटित होता है । उसी को योगी परा वाणी की संज्ञा देते हैं । हृदय से ध्वनित वाणी को `पश्यन्ती` एवं कण्ठ से निकलने वाली वाणी को मध्यमा वाणी कहते हैं । इस संसार के सार तत्व को स्पष्ट करने वाली, जिह्वा से प्रस्फुटित वाणी को मध्यमा कहते हैं । शब्द `रा` बहुत ही महत्वपूर्ण है । यह चिर आकाश (आकाश ब्रह्म) को उसका चैतन्य स्वरूप प्रदान करने वाली है । इसका ही दूसरा नाम चेतन ब्रह्म है । `शब्द` और `सुरति` दोनों का स्वरूप जल-तरंग के समान है ।[१]

संत पलटू साहब ने भी सुरति-साधना को अपनाया है उन्होंने सुरति-साधना योग की महिमा का बहुत ही स्पष्ट वर्णन किया है । उनके अनुसार सत्गुरु झावां (कोयला) रूपी योग की आग मन को जलाकर उससे मैल को बाहर निकाल देते हैं । तत्पश्चात् सुरति साधना के रन्दे से रंद कर मन को तीक्ष्ण धार दे देते हैं । इस प्रकार सुरति साधना के माध्यम से निर्मल मन संसार से विरत हो जाता है ।[२]

---

[१] कबीर ग्रंथावली, पदसंख्या- १७१ ।

[२] सतगुरु सिकलीगर मिलै तब छूटै पुराना दाग
छूटै पुराना दाग गड़ा मन मुरचा माहीं ।
सतगुरु पूरे बिना दाग यह छूटै नाही
झांवा लेवें जोग रोग की मलै लाई
जौहर देय निकार सुरत को रंद चलाई
सब्द मस्कला करै ज्ञान का कुंड लगावै
जोग जुगत से मलै दाग तब मन का जावै
पलटू सैफ को साफ करि बाढ़ धरै वैराग ।
सतगुरु सिकलीगर मिले तब छूटै पुराना दाग ।
-डा० प्रताप सिंह चौहान, कबीर साधना और साहित्य, पृष्ठ संख्या- १५७ ।

बिहार के संत दरिया साहब एक महान शब्द-मार्गी संत हुये हैं। सुरति शब्द या परम के नाम शब्द को स्वीकार करते हुये वे कहते हैं कि चाहे ज्ञानी लोग करोड़ों ज्ञान का उपदेश दें लेकिन बिना शब्द की महत्ता को स्वीकार किये उनकी मुक्ति असम्भव है। `शब्द` योगी का संजीवनी मूल के समान ऐसा ऐनक है जिसके द्वारा अल्प दृष्टिवाले योगी को अजपा ईश्वर के दर्शन स्पष्ट रूप से प्राप्त हो जाते हैं।[१]

प्रसिद्ध संत धारी साहब सुरति साधना पर प्रकाश डालते हुये कहते हैं कि मन को इस प्रकार एकाग्रचित्त करके ईश्वर का भजन करना चाहिये जिससे स्फटिक मणि के समान ईश्वर का नाम दृष्टिगोचर होने लगे। मनुष्य को अपने शरीर के आकाश मण्डल में स्थित सुरति कमल (ध्यान) में उसी प्रकार ध्यान केन्द्रित करना चाहिये जैसे सीपी स्वाती नक्षत्र के जल के लिये आकाश में एकाग्र दृष्टि रखता है। जीव की एकाग्रता चन्द-चकोर की भांति होनी चाहिये। सागर की बूंद की भांति घट की कुण्डलिनी को अष्टदल के ब्रह्म में लीन कर देना ही सच्ची साधना है। मृग की भांति योगी को अनाहत्‌ नाद को सुनने के लिये वाह्य स्पन्दन को भुलाना होगा तभी तत्व रूपी तिलक मन-मुद्रा का अजपा जाप करके भवसागर से पार उतर सकता है। इस योग-मुक्ति से ही भंवर गुफा और ब्रह्माण्ड मण्डल का ज्ञान हो सकता है। कुण्डलिनी बांबी (भंवर गुफा) में प्रविष्ट

---

[१]कोटि ज्ञानी ज्ञान गावहि, सब्द बिनु नहि बाचही
सब्द सजीवन मूल ऐना, अजपा दरस देखा वही।
सत्त शब्द संतोष धरि धरि प्रेम मंगल गावहीं।
मिलहिं सतगुरु शब्द पावहिं फिरि न भौजल आवही
सोरठा- ज्ञान रत्न की खानि मनि मानिक दीपक बरै
सब्द सजीवन जाति, अमरपुरि अमृत पियै ।।

- डा० प्रताप सिंह चौहान, कबीर: साधना और साहित्य, पृष्ठ संख्या- १५९।

कराना, सुषुम्ना रूपी मछली को आकाश मण्डल के आज्ञा चक्र में स्नान कराना ही सच्चे भक्त का लक्षण है ।[१]

प्रसिद्ध संत मलूक साहब सुरति साधना पर अपना मत व्यक्त करते हुये कहते हैं कि रसमय निर्गुण परब्रह्म का जाप करने वाला जाग्रत ही योगी है । वही असीम रस का पान करने संसार से विलग हो जाता है । भ्रमों का निवारण कर कर वह अनासक्त रूप से ब्रह्म की तुरही का अनाहत नाद सुनता है । अनाहत् नाद होने पर अमृत की रिमझिम वर्षा होती है जिससे योगी के मन में ज्ञान की तरंगे उठती हैं । गगनमण्डल में जगमग ज्योति साधक निरन्तर देखता रहता है । ऐसा सुरति-साधक योग शिव नगरी (सहस्रार) में स्थित कैलाश में प्रवेश करता है और उसका ध्यान (आकाश) चक्र में स्थित हो जाता है । वह शरीर की तीन दशाओं को छोड़कर चौथे स्थान पर पहुंच जाता है जहां पर शरीर

---

[१] या बिधि भजन करो मन लाई
निर्मल नाम लखे बिनु लोचन संत फटिक रोसनाई ।। १
सीप कि सुरति अकास बसत जस, चित चकोर चंदाई
कुंभक नीर उलटि भरो जैसे, सागर बुंद समुंद समाई ।। २
जैसे मृग की रीति परस्पर, लोह कंचन ह्वै जाई
मन गगरी पर बात सखिन संग, कुभला नट लाई ।। ३
तत्व तिलक काया मन मुद्रा, अजपा जाप तिर पाई
भंवर गुफा ब्रह्मंड मेखला, जोग जुगति बनि आई ।। ४
बाबी उलटि सर्प को खाई, ससि में मीन नहाई
चारी दास सोई गुरु मेरा, जिन यह जुगति बताई ।। ५

- डा० प्रताप सिंह चौहान, कबीर: साधना और साहित्य, पृष्ठ संख्या-१६० ।

का बाह्य व्यापार बन्द हो जाता है[1]।

प्रसिद्ध संत रविदास जी ने सुरति-साधना, अजपा जाप आदि का बहुत ही स्पष्ट वर्णन किया है वे साधना से कुण्डलिनी शक्ति की सुषुम्ना के मार्ग में वायु का प्रवाह प्रारम्भ हो सके । अजपा जाप से आवागमन को निरुद्ध करना ही रविदास जी का प्रमुख लक्ष्य है । गंगा (इड़ा) की यमुना (पिंगला) में उलटकर दोनों बिना जल की धाराओं को एक करना ही उनका लक्ष्य है । अलौकिक ज्योति के समक्ष अन्य प्रकाश को रविदास जी हेय समझते हैं । वे अनाहत् नाद को सुनकर अपने अन्तिम निवास शून्य मण्डल में स्थिर हो जाना चाहते हैं । अष्टदल कमल में स्थित ब्रह्म ही उनकी उपासना का केन्द्र बिन्दु हैं जिसकी कृपा मात्र से ही जीव का संसार सागर में आवागमन समाप्त हो जाता है[2]।

संत कवियित्री दयाबाई ने भी सुरति-साधना में निम्नतम प्रदेश घट (कुंभ) से कुण्डलिनी शक्ति को सुषुम्ना मार्ग से आकाश मण्डल में प्रवेश कराते

---

[1] रस रे निर्गुन राग से, गावै कोई जाग्रत जोगी
अलग रहै संसार से, (सो) इस रस का भोगी ।। १
भरम करम सब छाड़, अनूठा यह मत पूरा
सहजे धुन लागी रहै, बाजे अनहद तूरा ।। २
लहरें उठती ज्ञान की, बरसे झिमझिम मोती
गगन गुफा में बैठ के, देखै जगमग जोती ।। ३
सिव नगरी आसन किया, सुन ध्यान लगाया
तीनों दसा बिसार के, चौथा पद पाया ।। ४
- डा० प्रताप सिंह चौहान, कबीर:साधना और साहित्य, पृष्ठ संख्या-१६३ ।

[2] उलटि गंग जमुन में लावो । १
बिनही जल मंजन ह्वै पावो ।। २
लोचन भरि भरि बिंब निहारो
जोति बिचारि न और बिचारो ।। ४
पिंड परे जिव जिस घर जाता
सबद अतीत अनाहद राता ।। ५
जा पर कृपा सोई भव जानै
गूंगों साकर कहा बखानै ।। ६
सुन्न मंडल में मेरा बासा
तातें जिव में रहौं उदासा ।। ७
कह रैदास निरदास धियावो
जिस घर जाव सो बहरि न आवो।।८।। , वही, पृष्ठ संख्या-१९८ ।

हैं । लेकिन उनका मन इतना चंचल है कि कबूतर की तरह कलाबाजी करते हुये गगन मण्डल की ओर अग्रसर होता है ।[१]

प्रसिद्ध संत सहजोबाई शरीर में ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को निहित मानती हैं । वे सुरति-निरति (साधना-समाधि) में लय लगाने की आवश्यकता पर बल देती हैं । ईश्वर का अनहद नाद भी शील, संतोष, क्षमा, धैर्य आदि को ग्रहण करने के दुर्वासनाओं को त्यागने के पश्चात् ही सुनाई पड़ता है । गुरु की साधना पद्धति में दीक्षित हो जाने पर जीव को उन्मनी अवस्था प्राप्त हो जाती है जिसके बिना ईश्वर का साक्षात्कार असंभव है ।[२]

प्रसिद्ध संत कवियित्री मीराबाई ने सगुण कृष्ण की पूजा-अर्चना के साथ-साथ निर्गुण आतम ब्रह्म की सत्ता को भी स्वीकार किया है । वे सुरति-साधना में आकाश मण्डल के स्वामी ब्रह्म में लीन होने की आवश्यकता पर बल देती हैं । अपने अन्तिम गुरु की स्मृति का वियोग लौकिक प्रिय के वियोग से

---

[१] प्रथम पैठि पाताल सूं, धमकि चढ़ै आकास
दया सुरति नटिनी भई, बाँधि बरत
- डा० प्रताप सिंह चौहान, कबीर: साधना और साहित्य, पृष्ठ संख्या-१६८ ।

[२] बाबा काया नगर बसावौ ।
ज्ञान दृष्टि सूं घट में देखो सुरति निरति लौ लावै ।। १।।
पाँच मारि मन बसि कर अपने, तीनों ताप न सावौ ।
संत सन्तोष गहो दृढ़ से तौ, दुर्जन मारि भजावौ ।। २।।
सील क्षिमा धीरज कूं धारौ, अनहद बंब बजावौ ।
पाप बानिया रहन न दीजै, धरम बजार लगावौ ।। ३।।
सुबस बास होवै जब नगरी, बैरी रहै न कोई ।
चरनदास गुरु अमल बतायौ, सहजो संभलो सोई ।।४ ।।
- डा० प्रताप सिंह चौहान, कबीर: साधना और साहित्य, पृष्ठ संख्या-१७२ ।

किसी भी प्रकार कम नहीं है । ईश्वर का वियोग उन्हें काँटे की भाँति पीड़ा पहुँचाता रहता है । सुरति शब्द साधना के माध्यम से ही उनकी पीड़ा[1] का अन्त हो पाया क्योंकि उन्हें साधना के माध्यम से परब्रह्म का दर्शन हो सका ।

संत भीखा साहब का सुरति-योग-साधना

सुरति शब्द का शाब्दिक अर्थ स्मृति और ध्यान है । भीखा साहब ने अपने पूर्ववर्ती संतों की भाँति ही सुरति शब्द का अर्थ स्वीकार किया है । षटचक्र भेदन के पश्चात् सुरति (ध्यान) की अवस्था को योगी प्राप्त करता है । यही सुरति अपने अन्तिम लक्ष्य निरति में समाधिस्थ होकर परम पद को प्राप्त करती है । इन्होंने सुरति और निरति की पारिभाषिक शब्दावली में उलझाकर योग को क्लिष्ट नहीं बनाया बल्कि उसे बहुत ही सरल शब्दों में व्यक्त किया है । केवल षट चक्र का भेदन ही जीव का परम लक्ष्य नहीं है । यह एक क्रिया है जिसके माध्यम से परमब्रह्म की उपलब्धि हो पाती है । यह साधन है साध्य नहीं ।

---

[1] मीरा मन मानी सुरत सैल असमानी ।। टेक ।।
जब जब सुरत लगे वा घर की, पल पल नैनन पानी ।।१।।
ज्यों हिये पीर तीर सम सालत, कसक कसक कसकानी ।।२।।
रात दिवस मोंहि नींद न आवत, भावे अन्न न पानी ।।३।।
ऐसी पीर विरह तन भीतर जागत रात बिहानी ।।४।।
ऐसा वैद मिले कोई भेदी, देस बिदेस पिछानी ।।५।।
तासों पीर कहूं तन केरी, फिर नाहं भरमो खानी ।।६।।
खोजत फिरी भेद वा घर को, कोई न करत बखानी ।।७।।
रैदास सन्त मिले मोहि सतगुरु, तब मोरी पीर बुझानी ।।८।।
मैं मिलो जाय पाय पिय अपना, तब मोरी पीर बुझानी ।।९।।
मीरा खक खलक सिर डारी, मैं अपना घर जानी ।।१०।।

- डा० प्रताप सिंह चौहान, कबीर: साधना और साहित्य, पृष्ठसंख्या-१७३ ।

साध्य तो षट चक्रों के भेदन के पश्चात् सुरति को निरति में लीन करके अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक को वरण करना है । इन्होंने हठयोग में प्रचलित षटचक्रों से भी आगे सहस्रार (अष्टदल कमल) अथवा सुरति चक्र की मान्यता दी है । प्रारम्भिक षट चक्रों का भेदन करने वाले जीव को कुछ दिव्य शक्तियां प्राप्त हो जाती हैं । लेकिन इससे उनका साध्य नहीं प्राप्त हो पाता । सुरति कमल में लीन योगी को इस समय भी भयंकर मानसिक तनाव का सामना करना पड़ता है । यदि सुरति से उसका मन तनिक भी विचलित हुआ तो वह सांसारिक दुर्वासनाओं का शिकार बन जाता है लेकिन सुरति को निरति में लीन करने के पश्चात् योगी की ऐसी स्थिति की सम्भावना नहीं रहती है । वह मोक्ष को प्राप्त हो जाता है । अत: सुरति साधना ही योगी के योग की परम कसौटी है । इस कसौटी पर खरा न उतरने पर उसे इस पापमय संसार में पुन: आना पड़ता है । सदन कसाई, अजामिल इसके उदाहरण हैं । भीखा साहब इस स्थिति का वर्णन करते हुये कहते हैं कि सदन कसाई केवल नाम का कसाई था, कर्म से ईश्वर का परम भक्त था । वह पूर्व जन्म का षट भेदन करने वाला संत था । षट चक्रों को भेदन करने के पश्चात् किसी कारणवश उसकी साधना लड़खड़ा गयी, जिससे उसे पुन: मृत्युलोक में जन्म लेना पड़ा । इस संसार में जन्म लेने के पश्चात् वह पुन: भक्ति योग के माध्यम से अपनी सुरति-साधना को पूरा करके ईश्वर को प्राप्त कर उन्हीं में लीन हो गया ।[१] गणिका भी दुर्भाग्यवश इसी दुर्घटना की शिकार बनी । उसे पापी कहना स्वयं में एक पाप है । वास्तव में वह पापी नहीं थी । वह भी पूर्व जन्म में योग-सोपानों के सभी षट चक्रों को भेदन करने के पश्चात् अन्तिम सोपान (सुरति-साधना) से डिग गयी जिसके कारण उसे पुन:

---

[१]सदन कसाइ कहन का रहा पुरातिम दास ।
सुरति चली जग में परा, फिर पहुंचा हरि पास ।।
-भीखादास, ह०लि०ग्रं०, दोहा संख्या-१५२६ ।

इस संसार में जन्म लेना पड़ा । दूसरे जन्म में वह सभी चक्रों का भेदन करती हुयी सुरति को निरति में लीन करने के पश्चात् ईश्वरत्व में लीन हो गयी ।[1]

संसार की दृष्टि में दुष्ट अजामिल वास्तव में दुष्ट नहीं था । पूर्व जन्म का वह एक बहुत बड़ा संत था । अपनी साधना में अधूरा रहने के कारण उसे जन्म-मरण के दु:सह दु:ख को एक बार फिर भोगना पड़ा । लेकिन उसका यह जन्म अन्तिम रूप से गुरु की कृपा से भगवद् भक्ति को पूरा करके उसने ईश्वर का साक्षात्कार कर ही लिया ।[2]

भीखा साहब सुरति की डोर को इतना कोमल मानते हैं कि थोड़ी सी असावधानी से भी योग के सोपानों को बांधने वाली डोरी टूट जाती है । सुरति की डोर टूट जाने पर जीव को सुरति चक्र से बाहर निकलना ही पड़ता है । वहां पर उसका रुकना किसी प्रकार भी संभव नहीं । सुरति के छिगने पर जीव को संसार में पुन: जन्म लेकर विभिन्न वासनाओं का शिकार होना पड़ता है ।[3] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने भी इस मत को स्वीकार किया है । वे सुरति-योग की स्पष्ट व्याख्या करते हुए कहते हैं कि "सन्त मत में सहस्रार चक्र के भी ऊपर एक अष्टम चक्र (सुरति कमल) की कल्पना की गयी है । कहते हैं कि सहस्रार तक पहुंचे हुये योगी का चित्त व्युत्थान-काल में अर्थात् समाधि टूटने के बाद

---

[1] गनिका पापी नाहती, पापी कहता तौन ।
सुरति छिगी इहां अवतरी, फिर पहुंची कुरि भौन ।।
- भीखादास, ह०लि०ग्र०, दोहा संख्या- ३६१ ।

[2] अजामिल बदनाहता, हता पीछला दास ।
जब सत् गुरु किरपा करी तब पहुंचा हरि पास ।।
- वही, दोहा संख्या-३६२ ।

[3] टूटी डोरि जीव निकसा तहां समा ना जाय ।
जहां आसा तहं वासना, सोई देह पहुंचाय ।।
- वही, दोहा संख्या-११२६ ।

फिर वासना का शिकार हो जाता है पर सुरति काल में निवास करने वाले सन्त का चित्त ऐसे खतरे से निश्चित रहता है ।[1]

मीता साहब सुरति-निरति (ध्यान-समाधि) को ईश्वर से सादात्कार का सोपान मानते हुए कहते हैं कि सतगुरु की सेवा से ही मनुष्य को ईश्वर की गति के बारे में कुछ ज्ञान प्राप्त हो सकता है । बिना गुरु की कृपा के वह मृतक समान निरीह रहता है लेकिन ईश्वर से सादात्कार के पश्चात् वह माया मोह के बन्धन से छुटकारा पा जाता है । सांसारिक प्रपंचों को त्यागकर सार-तत्व को ग्रहण करके, पांच इन्द्रिय एवं उनकी पचीस लिप्साओं को वश में करके, अपने ध्यान को समाधि में लीन करते हुये अनवरत प्रवित अमीय-रस का पान करना चाहिये । ऐसी अवस्था में उसे ईश्वर का सादात्कार हो जाता है एवं जीव को तत्व ज्ञान की उपलब्धि हो जाती है और यह संसार उसे सारहीन सात्व जान पड़ता है ।[2] मीता साहब ने सुरति को ध्यान का पर्याय माना है । वे इसकी स्पष्ट व्याख्या करते हुये कहते हैं कि इस संसार से मोक्ष का वही अधिकारी है जो योग-असि की तीदण धार पर भी चलने में भयभीत न हो । योग का मार्ग जौहर से भी कठिन है । जो ज्ञानरूपी तलवार पर खड़ा होकर, हृदय रूपी महल में प्रवेश करता है और द्वार पर ही अपनेअहं का परित्याग कर

---

[1] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर (हठ योग की साधना), पृष्ठ संख्या- ५७ ।

[2] राम गति समुझ परै को कैसे, सतगुरु से ये ऐसे ।
माया मोह की टूटी फांसी मीरतुक होय रहु जैसे ।।
मूल गहो डारन का झाड़ो, बांधो पांच पचीसो ।
सुरति निरति की लागि खुमारि पियो अमीय रस ऐसे ।।
मेटि ले ब्रह्म ज्ञान तबु उपजे जगु लागे सब फीको ।
सोई भक्त जो या मत पावै, माला तेरा झूठो ।।
कह मीता पशुवा सठ भूले, साच कहे चलो रूठो ।
जब जम मोगरा आई तबहीं परिहै टूटो ।।

-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, पद संख्या- १५०४ ।

देता है तथा निर्भय होकर पांचों इन्द्रियों से लड़ता हुआ अपराजित भावना से धैर्य के स्तम्भ के समान सुरति (ध्यान) की निरति (समाधि) में स्थित करता हुआ क्षमा का निरन्तर बाह्य प्रवृत्तियों पर आक्रमण करता है वह ही अमरलोक-वासी परब्रह्म से साक्षात्कार कर पाता है ।[1]

मीता साहब ने सुरति का अर्थ परब्रह्म के स्वरूप (Form) से लिया है लेकिन यह स्वरूप जीव के स्वरूप (आंख, कान, नाक, मुख आदि) की भांति दृश्य नहीं है । परब्रह्म का स्वरूप निर्गुण निर्विकार, निराकार होने के कारण सुरति अर्थात ध्यान स्वरूप है । यह सुरति (स्मृति) से पूर्णतया भिन्न है । जिस प्रकार प्रियतम दृश्य स्वरूप प्रियतमा के हृदय में बस जाता है उसी प्रकार निर्गुण परब्रह्म की सुरति (ध्यान) योगियों के अन्त:करण में बस जाती है । ईश्वर को वही जान सकता है जो उसका प्रेमी हो जिसके हृदय में उसकी प्राप्ति के निमित्त प्रेम की निरंतर धारा बहती हो क्योंकि ऐसे प्रेमयोगी के अन्त:करण में ही ईश्वर की सुरति (ध्यान) समाविष्ट हो सकती है ।[2]

---

[1] साधो मुक्ति होय मन मारे जो चढ़े बाड़े धारे ।
जोहर ते या जोग कठिन है जाने जानन हारे ।।
ज्ञान खरग ले धंसे मल्लं का, सीस देहं बहि डारे ।
हवै निसंग लरै पांचो सो, अमल टरै नहीं टारे ।।
धीरज खंभ सुरति ले गाड़े, क्षिमा चोट ले मारे ।
अमर लोक का सहजे पावै, जब संतन सो हारे ।।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, पद संख्या- १४२६ ।

[2] जानै कोई हरि जी का प्रानी रे, जा घट प्रेम निसानी रे ।
बाद-विवाद से साहब न्यारा, या तो अकथ किहानी रे ।
जैसी कहे चले फिर तैसी, हरि अंतर की जानी रे ।
ताते कौन सयान बनो नट, दुरमति बात नसानी रे ।
करे निसाय राम बड़ दाता, काहु परे न जानी रे ।
जानी परै सो उनका मानै, तेहीं करौं उन रानी रे ।
जिनका रामचन्द्र से ध्यावै, तिन्हु ना गति जानी रे ।
कह मीता ते निकटै पाये, नैनन सुरति समानी रे ।
- वही, दोहा, संख्या- ८०३ ।

भीखा साहब ने सुरति का वास्तविक अर्थ `ध्यान` मानकर उसे अपनी वाणी का विषय बनाया है । वे मनुष्यों को दुष्टों के पास बैठकर समय नष्ट न करने की सलाह देते हैं क्योंकि भक्ति में बाधा पड़ती है । मनुष्य को विषय वासना से बचने के लिये संसार रूपी विषय-वासना से सदा सावधान रहना चाहिये । सज्जन मनुष्य के संग में बैठकर निर्गुण ब्रह्म में ध्यान को एकाग्र करके दृढ़ हो जाना ही मन की स्थिर व्यवस्था है । यही सच्ची साधना है ।[1]

भीखा साहब की दृष्टि में सुरति और निरति का अर्थ क्रमश: `ध्यान` और `समाधि` है । अपनी व्याख्या में उन्होंने स्वीकार किया है कि जीव का उद्धार उसके अभ्यन्तर में उठी ब्रह्माग्नि को प्रज्ज्वलित करके जीव के निवास द्वादश कमल को उलटकर अष्ट दल कमल में स्थित ब्रह्म के संगम से उत्पन्न दिव्य प्रकाश में सुरति को निरति में लीन कराने पर ही ईश्वर का साक्षात्कार होता है । यही जीव का भवसागर से पार होने का सर्वोत्तम साधन है ।[2]

---

[1] विमुखन संग ना बैठि, भजन खतरा परै ।
दावा दारी छाड़ि राम सो हित करै ।
या जग विष की बेलि, देखि तिनका डरै ।
सुज्जन सो हित जोरि, बांह तिनकी धरै ।
केहरि तहां न जाय, जहां मरकट थारि ।
ऐसे हरि के दास विमुख संग ना करि ।
भीखा कहै विचार, सुरति लागी रहै ।
चितना कतहुं जाय, ज्ञान ऐसी करै ।

- भीखादास, ह०लि०ग्रंथ, पद संख्या- ३२० ।

[2] रे सधुवा कहु कैसे घर जाइया ।
बिनु घर जो कुशल है नाहिं का माला लै कारिया ।
जब घर जो तब जीव उबरो या मत विरलै धाइया ।
द्वादस कमल उलटि है तबहीं, विमल होइं उजियाइया ।
अष्ट कवल दल खुलें तबही, सुरति निरति जब लागिया ।
परम हंस सो होइं भंवरो, तब मन सो मन मानिया ।
उतरै पार बार नहिं आवै, काल फांटि धाइया ।
छार परै तबनी करनी का जो चौरासी पाइया ।
साकत सो जो गर्भ आवै सो गुरु मुख जो तारिया ।
जे तारिया है जियते तारिया मुए न कोई तारिया ।
जलम जलम के मिटे कल्पना जब समरथ गुरु पावै ।
[illegible]

इन्होंने ब्रह्म के साक्षात्कार काल में सुरति और निरति को उसकी प्रेयसी के रूप में स्वीकार किया है । शरीररूपी भाती से 'राम' नाम रूपी वायु प्रवाह से ब्रह्माग्नि का उद्गार होने पर ही जीव को अवघट घाटी की प्राप्ति होती है । ब्रह्माग्नि का प्रज्वलन मन की सारी दुर्वासनाओं को नष्ट कर हृदय में कुबुद्धि के स्थान पर सुबुद्धि का प्रादुर्भाव करता है । सूर्य, चन्द्र की सम-अवस्था योग की दुर्गम प्रक्रिया को सरल बना देती है । इस प्रक्रिया की पूर्णाहुति पर सुरति निरति में विलीन होकर अष्ट कमल दल के स्वामी ईश्वर की प्रेयसी (कमल गढ़ की रानी कमलिनी) बन जाती है । जीव का उद्धार इसी प्रक्रिया के पूर्ण होने का परिणाम है[1] ।

भीखा साहब ने सुरति साधना को योग के मार्ग में विशिष्ट महत्व दिया है । पंच इन्द्रियों के साथ-साथ उनकी पचीस लिप्साओं को वश में करके सुरति निरति साधना में लीन होना ही उनका लक्ष्य है । पाखण्ड का परित्याग कर मनरूपी हाथी को वश में करके सुषुम्ना के बन्द कपाटों पर निरन्तर प्रयास से ईश्वर का साक्षात्कार करना ही योगी का परम उद्देश्य है । ईश्वर त्रिगुणातीत है । चतुर्गुण माया का कृत्रिम बाजार है । इस माया के कृत्रिम बाजार में जीव की समस्त अमिक पूंजी निर्गुण ब्रह्म के उपासना के अभाव में निष्फल हो जाती है ।

---

[1] भाती भरी नाम ले लागी, ब्रह्म अगिनि उद्गारी रे ।।
जोग जुगुति का संजम किन्हा, पायो औघट घाटी रे ।
जरे मदन पाप सब जरि गये, कुमति झाड़ गई डरा रे ।
सुमति सोहागन मारगे लागी, देखो भाग हमारी रे ।
बाटि घाट कोई रोकत नाहीं, भये चोर सब साहे रे ।
अगम पंथ का बेड़ा बांधा सतगुरु कीन्ह सहामी रे ।
रवि ससि दोनों सम कै राखे, सोई सुमेर समाना रे ।
सुरति निरति मोरि भई पद्मिनी जाई मिली करतारा रे ।
- भीखादास, ह०लि०ग्रंथ, पद संख्या- १६२० ।

माया-मोह सगुण नदी के समान है । इसमें अवगाहन करने वाले जीव बहकर विनिष्ट हो जाते हैं । निर्गुण ब्रह्म उपासक गुरु की सहायता से इस माया-मोह की नदी से पार उतरते हैं ।[1]

महाप्रलय काल में सुरति और निरति का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है । यह समस्त संसार भ्रम-सागर में निमग्न है । लोग सत्य को त्यागकर असत्य का आश्रय ले रहे हैं । भवसागर से पार उतरने का कोई रास्ता नहीं बताता । संत ही नामरूपी नौका से भवसागर पार करा सकते हैं क्योंकि उनके पास सुरति और निरति के दो पतवार हैं जिनकी सहायता से जीव भवसागर से पार उतर सकता है । महाप्रलय के समय जब चौदहों-लोक जलकर नष्ट हो जाते हैं उस समय भी अष्टदल कमल निवासी परब्रह्म का नाश नहीं होता ।[2]

भीखा साहब ने सुरति को हंस-रहस्य का परम साधन माना है । सुरति निरति के भेद का ज्ञान ज्ञात होने पर अलौकिक सत्ता का साक्षात्कार

---

[1] बनो एक राम का बहरा, सतगुरु का सिरनायी रे ।
पांच पचीस एक घर लाये, सुरति निरति लौ लायी रे ।
मन मतंग का अंकुश लाये, खोले बज्र किवारा रे ।
राम मिलाना सहजे किन्हा, तज पाखण्ड त्योहारा रे ।
राम रसायन रस मतवाला, पिये अन्न न भावै रे ।
तीन गुनन ते ऊं है न्यारा । या मत अगम अपारा रे ।
सतजुग त्रेता, द्वापर या सब, गुन का रचा बजारा रे ।
तजो हाट झूठी सब पूंजी, बिन निरगुन त्योहारा रे ।
माया मोह सरगुन की नदिया बही गयी सब संसारा रे ।
बाचे संत नाम ले ऊबरी, भीखा सिजन हारा रे ।
-भीखादास, ह०लि०ग्रंथ, पद संख्या- १६२७ ।

[2] भिन्ही २ हमका हो नौका मोरे पास
सुरति निरति ले खेव हु, मानो विस्वास
आवत है अगिया हो, कुछ करो विचार
चौदहपुर जरि जरिहैं हो कहा रहनि तुम्हार
अगमपुर अविनासिया, तहां अनभय बास ।
- वही, पद संख्या- १६७० ।

संभव है । मन में प्रवेश करके आठ दल कमल चक्रों के भेदन के पश्चात् ईश्वर की सुरति (ध्यान) का बोध होता है । सुरति को निरति में एकाग्र करने पर ही सब प्रकार से निर्गुण त्रिगुणातीत ब्रह्म का पता चलता है । तत्पश्चात् अनाहत नाद की स्पष्ट अनुभूति होती है । जीव ब्रह्म की ओर उन्मुख हो जाता है । इड़ा, पिंगला सुषुम्ना नाड़ियाँ ईश्वर में अपने आपको विलीन कर देती हैं । परिणामस्वरूप जीव आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाता है ।[१]

भीखा साहब की योग धारा में सुरति निरति में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है । सुरति और निरति एक दूसरे पर अवलम्बित है । दोनों का प्रथम रूप संभव नहीं है । जैसे धनुष एवं बाण एक दूसरे के बिना प्रभावहीन होते हैं उसी प्रकार सुरति और निरति भी एक दूसरे के अभाव में अर्थहीन हैं । जब योगी काम को नष्ट करने के बाद धैर्य को स्थिर करके, मूलाधार चक्र का भेदन करके रात-दिन के जागरण के पश्चात् नींद एवं तृष्णा समाप्त हो जाने पर ही जीव इन्द्रियों और उसकी लिप्साओं को वश में कर सकता है ।[२]

---

[१] पैठि दरिया दरियाव का भेद लै चक्र छः बेधि मिलै सुरति थाही
पाँच को जीति कै सुरति को साधि कै अगम का भेद तब हाथ आयी
बाजा अनहद बाजै, ब्रह्म सो मन लागै ब्रह्म को भेटि गयी तीनताई ।
काल का जारि कट जाई भाई तबै करनी का सार सब भरम जाई ।
–भीखादास, ह०लि०ग्रं०, पद संख्या-१६०१ ।

[२] धरनि को बाँधि मूल मा माड़िकै
मदन को औटि जब रैन जागा
नींद बहोर भूख तर्हां, छिन्न खण्डित भई पांच पचीस
का सहज बांधा हरा धीरा किया जीन
मुकता किया, चित चाबुक किया, प्रेम लगाम है
ऐड़ लायै । तब खग किया सील का सेला किया ।
निरति कमान लै सुरति के बान सो, क्रोध मारा ।
– वही, पद संख्या- १६०३ ।

गुरु-भक्ति:

मीता साहब ने गुरु की महिमा को अपरमपार बताया है । गुरु के अभाव में जीव को ब्रह्म-ज्ञान का होना असम्भव है । सच्चे गुरु के शरण में जाने से ही जीव का कल्याण है । केवल कर्ण में गुरुमंत्र धारण कर लेने से ईश्वर तत्व की प्राप्ति नहीं होती है । गुरु-ज्ञान के अभाव में जीव अज्ञानता के गहरे गर्त में पड़ा सिसकियाँ भरा करता है[1]। मौलाना चाहे जितना भी कुरान का पाठ क्यों न करे, पण्डित वेद के भेद में भले ही डूब जाये, जब तक सच्चे पीर और गुरु की उपलब्धि नहीं हो पाती तब तक ईश्वर के निवास अष्ट दल कमल का भेद नहीं प्राप्त हो सकता[2]। मीता साहब ने ईश्वर की उपलब्धि के सम्बन्ध में गुरु को पर्याप्त महत्व देते हैं । गुरु के शरण में जाने से ही मन की चंचलता समाप्त हो पाती है[3]। सच्चे गुरु की उपलब्धि बड़े भाग्य से होती है । गुरु कृपा से त्रितापों का नाश सहज ही हो जाता है । सच्चे गुरु जीव के भ्रम का नाश कर उसे आवागमन के भय से मुक्त कर देते हैं जिससे परम तत्व की प्राप्ति सहज हो जाती है ।

सामाजिक दर्शन:

मीता साहब ने सामाजिक परिस्थितियों को अपनी वाणी का प्रमुख विषय बनाकर मानव जीवनकी व्यापक अभिव्यंजना की । उनके वचन-वाणी

---

[1] गुरु बिनु कैसे हरि पद सूझै ------ ।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-१६०६ ।

[2] मुल्ला पढ़े कुरान का पंडित भाखै वेद ।
पीर गुरु बिन ना मिलै वा घर केरा भेद ।।
- वही, दोहा संख्या-११२३ ।

[3] संत गुरु सरने जाय तो मन न डुलाये हो - वही, दोहा संख्या-४४ ।

में किसी राव-राजा के आदर्शवाद की कल्पना नहीं बल्कि सामान्य वर्ग दैनिक कार्य-कलापों का लेखा-जोखा है । तत्कालीन समाज की सम-विषम परिस्थितियों की कटु आलोचना के रूप में उसका परिष्कृत रूप प्रस्तुत करना भीखा साहब की निजी विशेषता है । उनका काव्य-रचना की प्रेरणा भी समाज से ही मिली । समाज में व्यापार नाना-प्रकार की रूढ़ियों का उन्होंने निर्भिकता पर विरोध ही नहीं किया बल्कि दर्शनशास्त्र की दुरुहता, वैषम्य एवं जटिलता का गम्भीर चिन्तन भी किया[1] तत्कालीन समाज विभिन्न प्रकार के सम्प्रदायों एवं मतों में विभक्त होकर अपनी लीक से दूर हटता जा रहा है । ऐक्यता में एकता के बीजारोपण का कार्य भीखा साहब की प्रमुख देन थी । तत्कालीन सामाजिक रूढ़ियों, भेदभाव एवं आडम्बरग्रस्त समाज को एक निर्लिप्त भेद-विहीन दर्शन की आवश्यकता थी जो उसके दाय को रोक पाता । भीखा साहब ने समाज की इस आवश्यकता की पूर्ति का भार उठाया । समाज में वर्ण-भेद का इतिहास उनके समय में नया नहीं था, वरन् उसपर वाह्य आडम्बरों एवं रूढ़ियों की इतनी मोटी परत जम गयी थी कि उसका यथार्थ रूप विकृत हो गया था[3] अपने वचन वाणी के माध्यम से ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य, शूद्र के बीच बढ़ती खाई का पाटना ही उनका लक्ष्य था ।

---

[1] तीरथ बरत तरै ना कोइ ना सुनि वेद-पुरान ।
कह भीखा इक संत संगति बिनु जमपुर होय पयान ।।
-भीखादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-१२११ ।

[2] संत न पंथ चलावहू झूठी करै लबार ।
भीखा सांच पुकारहू, सब सन्तन एक विचार ।।
- वही, दोहा संख्या- १२२६ ।

[3] पंडित या विधि भगति न होई ------ ।।टेक।।
नहाय धोय पाहन का पूजे, भोंदु बन की गति होई ।
संध्या होम देखा है सोई, छाप तिलक का होई ।
खान पीयन का पाखण्ड किन्हा, या तो भक्ति न होई ।
अवधू या विधि जोगुन खोई, केस रखाई छार गहि लोई ।।
पूजे जग के लोई ।
- वही, पद संख्या-१३२० ।

मीता साहब धर्म की छत को समाज की दीवारों का सहारा देना पसन्द करते थे, उन्हें हवा में लटकाये रखना उनका लक्ष्य नहीं था । धर्म के बिना समाज और समाज के बिना धर्म का कोई अस्तित्व नहीं है । धर्म और समाज में उन्होंने अन्योन्याश्रित सम्बन्ध माना है । धर्म को पत्थर की लकीर बनाना उनका उद्देश्य नहीं था । धर्म का वास्तविक स्वरूप क्या है ? समाज इससे कितना दूरस्थ है ? इस पर मीता साहब ने अपना स्पष्ट मत व्यक्त किया है ।[1] धर्म के माध्यम से सम्पूर्ण समाज को एकता के सूत्र में बांधना मीता साहब का परम लक्ष्य था । उनके मत में प्राणी-मात्र का मूल ईश्वर है । समस्त जातियां सनातन एवं शाश्वत नहीं है । इनका निर्माण समय की आवश्यकता एवं पुकार के अनुसार हुआ है ।[2] समाज में वर्ग-भेद पैदाकर उसमें साम्प्रदायिक विष व्याप्त कराना उनका लक्ष्य नहीं था वरन् आलोचना द्वारा मिथ्या-तत्वों से परिष्कृत करना उनका प्रमुख कार्य था ताकि स्वर्ण की तरह शुद्ध होकर अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट कर सके । प्रबल-वर्ग की आलोचना करके पद-दलितों का उद्धार एवं उत्थान ही उनकापरम लक्ष्य था ।[3] प्रबल-वर्ग से संघर्ष द्वारा पद-दलितों की प्रगति में उनका विश्वास नहीं था क्योंकि वे समाज के प्रत्येक वर्ग का संगठन चाहते थे विघटन नहीं ।

---

[1] छार लगायी देह मा जटा रखाई सीस ।
कह मीता ई जोगिया मांग खाइ का भीख ।।
- मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-२३९७ ।

[2] मुख ब्राह्मन कर क्षत्रिया, पेट वैस्य पग सूद्र ।
इ अंग सबहि मनुजन में, को ब्राह्मन को सूद्र ।।
- वही, दोहा संख्या- २७६५ ।

[3] करनी ते ब्राह्मन भये ते जग सतें आप ।
नामा और रैदास कबीरा सदना किया मनाय ।।
- वही, दोहा संख्या- १६६ ।

मीता साहब की वाणी का प्रमुख स्रोत तत्कालिक समाज रहा है । वे जो कुछ सीखते हैं समाज से सीखते हैं और जो कुछ सिखाते हैं समाज को ही सिखाते हैं । समाज की सम-विषम परिस्थितियों का निवारण उन्होंने बहुत सौहार्द पूर्ण वातावरण में किया है । उनका दृष्टिकोण व्यापक और उदार है । समाज की अच्छाइयों एवं बुराइयों का अनुमापन उन्होंने दो प्रकार से किया है । समाज के सुन्दर अनुशासित रूप में सम्पूर्ण समाज को प्रतिष्ठित देखना ही उनका अनुशासन है । इस अनुशासन को आडम्बरों, अंधविश्वासों के द्वारा विकृत करने वाला निंदा का पात्र है । वे आपसी समझौते की नीति के समर्थक नहीं थे । थोड़ी सी अच्छाई व थोड़ी सी बुराई लेकर अग्रसर होना उनके वचन-वाणी का उद्देश्य नहीं है । अच्छाई और बुराई के बीच मध्यम मार्ग पर चलना वे श्रेयस्कर नहीं समझते हैं, परिस्थितियों से घबड़ाकर उनसे समझौता करना उनका उद्देश्य नहीं है ।

मीता साहब ने समाज के उच्च और निम्न श्रेणी के व्यक्तियों के गुणों का विवेचन भी स्पष्ट रूप से किया है ।[1] बाह्य आडम्बरों एवं छद्मवेषियों की कटु आलोचना भी की है ।[2]

मीता साहब ने वर्ण-व्यवस्था को समाज का प्रमुख अंग स्वीकार नहीं किया है । अठारह वर्णों में समाज का विभाजन व्यर्थ है क्योंकि पंच तत्वों

---

[1] बड़ा बड़ाई ना तजे, बाशा रोहि इतराय ।
भानु तपै तिहुं लोक मां, बाह जारै पाय ।।
- मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या- ३२१ ।

[2] देह दगावै द्वारिका, पशुवा मुरुख नदान ।
कहै मीता सतगुरु बिना, साकट फिरै भुलान ।।
- वही, दोहा संख्या-११७१ ।

से ही सभी का निर्माण होता है अत: एक को श्रेष्ठ दूसरे को निम्न कहना कहाँ तक ठीक है ? अभेद वर्ण-व्यवस्था ही उनके वचन-वाणी का प्रमुख विषय रहा है [1]।

आडम्बर एवं अन्ध विश्वास के माध्यम से नरक द्वार पर पहुंचने वाले असन्तों की संख्या सत्यमार्ग का अनुगमन करने वालों की संतों की अपेक्षा बहुत अधिक होती है। संत मार्ग पर चलने वाले विरले ही होते हैं [2]। धर्म क्षेत्र में संसार की गति विपरीत है। सांसारिक व्यापार में उलझाकर भवसागर में डुबोने वाले कथित-संतों को धोती कुरता देकर सम्मान दिया जाता है लेकिन सत्य मार्गी उपदेशकों के हिस्से में केवल ताड़ना आती है [3]।

योग साधना में बिना खेचरी मुद्रा के जीव को ईश्वर का साक्षात्कार होना असम्भव है। जिसके मन में सत्य है ईश्वर का दर्शन उसी को सुलभ है [4]। धन की लालच में निंदा-स्तुति करने वाले जीव मनुष्य नहीं हैं, पशु हैं [5]।

---

[1] बरन अठारहका करै, ब्रह्म सकल घट माहिं।
घर के भेदी संत हैं पंडित बाने नाय ।।
बरन दूसरा है नहीं पंडित करो विचार।
पत्व तत्व से सब बना, सबमें सिरजन हार ।।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, पद संख्या- ९८६ ।

[2] नरक पंथ मा भीड़ बड़ी है साजी कबहुं न होइ ।
कह मीता संतन के मारग देखा बिरला कोइ ।।
- वही, दोहा संख्या- 2302 ।

[3] बोरन वाले साड़ी पावै तारन वाले डण्डा ।
कही मीता अंधा नाचिन्हे सन्तन केरे शण्डा ।।
- वही, दोहा संख्या- 2307 ।

[4] जेहि बन्दे के सांच है अल्लाह तहां हजूर ।
मेहर बिना न पावई मेहरबान का पीर ।।
- वही, दोहा संख्या- 2311 ।

[5] दाम दिये स्तुति करै, बिन पाये करै निन्दा ।
कह मीता तेहि नरो न गनिये, मानो कुती-कुत्ता ।।
-वही, दोहा संख्या- 2356 ।

मीता साहब वास्तविक सन्तों और वैरागियों के गुणों की विवेचना में बताया है कि वास्तविक संत वही है जो ठाट-भेष से अपने आपको विलग रखकर गृहस्थाश्रम में स्वधर्म का पालन करता है।[1] सच्चे वैरागी वही है जो पांच इन्द्रियों और उनकी पच्चीस लिप्साओं को वश में करके सदा भगवत् भजन में तल्लीन रहते हैं।[2]

गृहस्थाश्रम ही संतों का कार्यक्षेत्र है। सच्चे अर्थों में गृहस्थाश्रम में रहकर ही भक्ति से ईश्वरत्व की प्राप्ति होती है क्योंकि ईश्वर का निवास घट-घट में है। गृहस्थाश्रम का त्यागकर वन में उसे ढूंढ़ना अज्ञानता है क्योंकि इससे संशय एवं शोक का कभी भी विनाश नहीं हो पाता। परिणामस्वरूप ईश्वर की प्राप्ति असम्भव है। मूड़ मुड़ाकर सन्यासी का वेश धारण करके जो वन आदि में चले जाते हैं वे ठगों के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। ईश्वर-भक्तों की उत्पत्ति गृह में होती है वे श्रम करके जीविकोपार्जन करते हैं भीख मांगकर नहीं।[3]

सच्चे संतों का मार्ग छल-कपट रहित है। मीता साहब ने बाह्याडम्बरों एवं कृत्रिम वेशभूषा को साधना के मार्ग में बाधक माना है। कपड़े को रंगकर, भीक्षाटन की अपेक्षा श्रम करके भगवद् भक्ति करने पर बल देते हैं।

---

[1] छवो भेस पाखण्ड है इनमें संत न होय।
संत भये ते गृह भये मीता ज्ञानै जोय।।
-मीतादास, हंसविलास, दोहा संख्या-2026।

[2] गृह ते उतरि मुड़ मुड़ाये, नाम धरा वैरागी।
कह मीता जिन पांच मारे ते गिरही वैरागी।।
-वही, दोहा संख्या- २०५६।

[3] घर माहिं हरि मिलै रे वीर वन का जाहिं गंवारारे।
- वही, दोहासंख्या- १६१८।

क्योंकि सर्वशक्तिमान ईश्वर भक्त भीख माँगकर जीविकोपार्जन करना ईश्वर का सबसे बड़ा अपमान है।[१] मुसलमानों की अपरिपक्व साधना को उन्होंने बाह्य साधना की संज्ञा दी है। बाह्य साधना से जीव का उद्धार असम्भव है। जब तक मन की चंचलता वश में नहीं होती तब तक कुरान की आयतों को पढ़ने से कोई लाभ नहीं। चंचल-मन के रहते रोजा रखना, नवाज पढ़ना, ईश्वर दर्शन के सहायक अंग नहीं बन सकते। मक्का कहीं अन्यत्र नहीं है। पंच इन्द्रियों को वश में करने पर मन के भीतर स्वतः उसकी उपलब्धि हो जाती है। शारीरिक सुख-दुख के रहते सही कलमा का पढ़ा जाना टेढ़ी खीर है। मुस्लिम धर्मानुयायी न होने से ही न तो कोई काफिर होता है न तो नरक में ही जाता है। काफिर और नरकवासी वही है जो आठो पहर कुबुद्धि को मन में स्थान देते हैं। ईश्वर तो सभी जीव के अन्दर निवास करता है। उसका तुम वध कर डालते हो। तुम्हारे इस कृत्रिम बंदगी से क्या लाभ? ईश्वर ने हिन्दू-मुसलमान सबका निर्माण एक सा किया है। दोनों अभेद है एक हैं।[२]

---

[१] कपट चाल हाथे ना आवै, संतन की रजधानी रे।
कपटि चाल नरक निज होइहैं, तोहि परि ना जानी रे।
कपरा न रंग किसी के ठे, छल-बल के ना आनी रे।
सर महिमा ह्वै लादे फिरिहो, किसी केरे काढ़े रे।
जग अंधा छल-बल का पूजै झूठ सांच जग चिन्है रे।
चोरा गारे साहु न पूछै, तुम्हारि बातें जानी रे।
गिरही मां कहि बिरला संता, सो पाखण्ड ना ठानी रे।
राम का भक्त भीख नहीं मांगै, बुडिहै जो ना नामी रे।
— भीखादास, ह०लि०ग्रंथ, पद संख्या-२१२६।

[२] मियां मनु आये हाथ नहीं है, का भये वे त कहे है।
रोजा रहे नेवाज गुदारे, व तो दीदार नहीं है।
पांचो मारे जीव उबारे, तो मक्का दिल ही है।
तन बिसराये, अल्ला पाये, कलमा तबै सही है।
दोजख कौन, कौन कुफराना, का भये वेत कही है।
दोजख वही, वही कुफराना, कुफ्र न परत तो ही है।
हरदम है सब केरे भीतर सो मारा तुम्हही है।
का भये किये बंदगी तेरे, जो वा राजी नहीं है।
— वही, पद संख्या-७६७।

भीखा साहब ने ब्राह्मणों की हिंसक प्रवृत्तियों को ब्राह्मण का नहीं हिंसक का गुण माना है । उनके ब्राह्मणत्व की शुद्धता की परिभाषा पर व्यंग करते हुये कहते हैं कि अशुद्ध लोगों को मंत्रों द्वारा शुद्ध करने का पास-पत्र तुमको कहां से प्राप्त हुआ ? यह एक धोखा है । इससे तो केवल नरक की प्राप्ति होती है । अज्ञानी ही तुम्हारी शरण में जाते हैं । ज्ञानी सदा तुम्हारे आडम्बर से दूर रहता है । तुम क्षुद्र प्रकृति जैसे मनुष्यों की भांति लोगों को छुरी-छुरी कर मार डालते हैं ।[१]

भीखा साहब पंडितों के वेद-पुराण के ज्ञान को उनका अधूरा ज्ञान मानते हैं क्योंकि इनमें कहीं भी हिंसा को स्थान नहीं दिया गया है । एक ओर तो चौका देकर आचमन द्वारा पवित्रता का प्रकट करना और दूसरी ओर घर में मांस पकाना वेद-पुरान जैसे धार्मिक पुस्तकों का विषय नहीं है । यदि इस प्रकार मांसाहारी अपने आपको ब्राह्मण कहेंगे तो कसाई और चाण्डाल जाति विलुप्त हो जायेगी । ज्ञानकोश की वृद्धि निमित्त वेद श्रवण के साथ-साथ चाण्डाल कर्म को करने वाले कभी भी ईश्वरत्व नहीं प्राप्त कर सकते । वास्तव में ब्राह्मण के वेश में संसार को ठगने वाले ब्राह्मण नहीं हैं । ब्राह्मण वही है जो ब्रह्म से

---

[१] पंडित कैसा होय कसाई
जीयत बकरिया का जाहि मारा, नाहति है कुल्हाई ।
अशुद्ध काम के शुद्ध करावै, तुम कमनी कहं पायी ।
धोखा कहं कहं भाव कबौरी, जीव नरक मा जाई ।
अंधरन के घर तुम्हरी पूजा, डिठियारे घिरकाई ।
डोम चमार सोहिं तुम बौरे, ब्राह्मण ब्रह्म मिलाई ।
कह भीखा साहब की अज्ञा, जग का दीन्ह जनाई ।

-भीखादास, ह०लि०ग्रं०, पद संख्या-८८८ ।

जीव का संगम कराता है ।[१]

बाह्य परिवेश में ईश्वर की भक्ति असम्भव है । स्नानोपरान्त मूर्ति-पूजा, संध्या, होम-तर्पन या छापा-तिलक के वेश में सन्यासी का ढ़ोंग रचने वाला वास्तव में पाखण्डी है यदि उसने अपने भोज्य में मांस-मदिरा को स्थान दिया है । मुसलमानों में भी वही ईश्वर-भक्त कहा जायेगा जिसे ईश्वरत्व की प्राप्ति हो जाती है । केवल जीहृवा से ईश्वर-भजन करना व्यर्थ है ।[२]

भीखा साहब गुरु ज्ञान के अभाव में नाना प्रकार के साम्प्रदायिक पाखण्डों तथा ढ़ोंगो की आलोचना करते हुए कहते हैं कि छापा-तिलक लगाना, कण्ठी पहनना, माला-जपना, जटा रखना, भभूति लगाना, यज्ञ करना, आचार-व्यवहार, तीर्थ-व्रत, पति के साथ सती हो जाना, वाह्य नाटकों के साधन-पवन को उलटा चढ़ाना, पाहन-पूजना, कृत्रिम अजपा-जाप आदि योग-साधना

---

[१] पंडित या विधि वेद कहाई, है ब्रह्म सकल घट मांही ।
वेद पुरान दोउ है साचे, बुझीन तुक्क जाई ।
जो बुझै ता जीव न मारी, रहो क्या लपटाई ।
कपट रहनि नहीं भेद कहाई, बाद करै बहुताई ।
चौका दै आचमन किन्हा, धूवी कीन्ही बहुताई ।
मुर्दा चुरै रसोई भीतर, या देखो उजराई ।
या विधि कहै ते कवन कहावै, केहिका कवन कसाई ।
जीयत जीव पटकि कै मारै, जनी केरि दुहाई ।
पोथी सुनै ज्ञान के काचे, ज्ञान तहां न जाई ।

- भीखादास, ह०ग्रंथ, पद संख्या- ८६१ ।

[२] पंडित या विधि भगत न होई ।

- वही, दोहा संख्या- ८६२ ।

के तत्व नहीं है । इनसे केवल आडम्बरों की वृद्धि होती है, ईश्वरत्व की नहीं ।[1]

विनम्रता योग-साधना का प्रथम सोपान है । मधुर वाणी के विपरीत आचरण विनम्रता नहीं वरन् पाशविकता है । विनम्रता वह सहज गुण है जिसके प्रादुर्भाव से ईश-प्राप्ति का मार्ग सरल हो जाता है । विनम्रता का अर्थ अन्त: बाह्य एकरूपता लाना है । मोर की तरह वाणी मे माधुर्य और व्यवहार में विषधरों का भक्षण करना विनम्रता के गुण के विपरीत है । समाज में ऐसे ढोंगी-संतों का आचरण अमंगलकारी है ।[2] दूसरे के समक्ष अपने आपको झुकाकर विनम्र होकर प्रदर्शन करना सच्ची विनम्रता नहीं है । ऐसे व्यक्तियों का दैन्य

---

[1] भरम गढ़ तोरि हम डारा, ले ज्ञान का बाड़ा ।
भरम छाप तिलक कंठी, भरम जप माला ।
भरम जटा भभूत सेली, भरम तप दाना ।
भरम जग्य अचार किरिया, भरम व्रत ठाना ।
भरम तीर्थ भरम विधि, भरम गुन ज्ञाना ।
भरम राग अलाप चारी, बाजते बाजा ।
भरम स्तुति स्तुति औ सखियां, पाहिर कै बाना ।
मुक्ति का सो पावई ले जरि मुरदाना ।
भरम पवन चढ़ाइ उलटा, मुनिन मन माना ।
भरम खोजै शून्य काया, भरम की ठाना ।
भरम अजपा सुनै अनहद, भरम ना जाना ।
भरम पहन वृति मूरति पूजि नादाना ।
मिले सतगुरु भयो अनभय, सांच मत ठाना ।
भेटि प्रीतम मिटा आवन, भयो मनमाना ।
कहै भीखा सुनो सुज्जन, ख्वा नहीं रहना ।
हद बेहद त्याग दोनों निकारि मरदाना ।

— भीखादास, ह०लि०ग्रंथ, पद संख्या १२१२ ।

[2] दीनता भाग बड़े ते होई, धन्य धन्य घट सोई ।
काह भया सकुचा सिर नाये, भीतर भरी भंगोई ।
सुनि सुनि नर्व बहुत सकलानि, सांच बिना का होई ।
जैसे मोर मीठ दे बोले, विषहर लीले लोई ।
उपर पाषाण भेद बनाया, हरि से काह छपोई ।
काहू जंजीर बेहु गर डारि, जग ठगियन कै लोई ।
साचे सुज्जन का गुरु मिलिया, तहां न दुविधा होई ।
कहै भीखा सन्तन तनु लिन्हा साकठ लिन्ही लोई ।

— वही, पद संख्या- १२१३ ।

प्रदर्शन होता, चोर और कसाई के समान ही हानिकारक होता है।[1]

भीखा साहब ने मुस्लिम धर्म में व्याप्त हिंसक प्रवृत्तियों पर कठोर व्यंग्य किया है। दम्भी-हिंसक वास्तव में मुसलमान नहीं हैं। सच्चे मुसलमान वे हैं जो दैन्य भाव से मन की कुवृत्तियों (आशा-तृष्णा) की पाशविकता को त्यागकर ईश्वर को प्राप्त करता है। इनके अनुसार मक्का घर में ही है। घर के भीतर चंचल पंचेन्द्रिय रूपी बकरी एवं ममता रूपी मुर्गी को वध करने पर ईश्वर के पवित्र स्थान मक्का-मदीना का दर्शन सुलभ हो सकता है। दुधारी गाय को वध करने की अपेक्षा श्वांस प्रक्रिया को मारने (स्थिर) से ईश्वर की अलौकिक ज्योति का दर्शन होता है। रज-वीर्य की घृणित संयोगित प्रक्रिया से उत्पन्न जीव को मारकर खाना कितना निकृष्टतम कर्म है। कीड़े-मकोड़े आदि खाने वाली मुर्गी को पाक (पवित्र) कहना तथा कपड़े (वस्त्र) पर पड़े कीचड़ के छींटे को नापाक (अपवित्र) कहना कितना हास्यास्पद है। मुस्लिम धर्म में आडम्बरों की अतिशयोक्ति सीमातीत है। उन आडम्बरों पर भीखा साहब ने व्यंग्योक्ति द्वारा वज्र प्रहार करते हुये कहते हैं कि मुसलमान लोग हलाल (सिर-धड़ संयुक्त मांस) को खाना उचित तथा हराम (झटका, धड़ सिर पृथक मांस) को अनुचित

---

[1] दीन के दुरमति कबहुं न होइँ तहवां सांच कहाँहि।
जैसे उपर तैसे भीतर जनु जाने के छाँहि।
छुनि छुनि नहि बहुत सठ लागे भीतर भरी भँगाहिं।
चित्रा चोर कसाइनि नवाति हैं, नवि विगुन करै लहिं।
काह भयो मीठ दै बोलै, येहि विधि दीन होहिं।
जैसे मोर मीठ दै बोलै, विषहर लीलै लाहिं।
असल दीनता जब घट आवै राम मिलावा होहिं।
कपट दीनता राम ना पावै उलटी काह कपाहिं।।

-भीखादास, ह०लि०ग्रंथ, पद संख्या- १४११।

समझते हैं परन्तु वास्तविक रूप में हलाल और हराम जीव रहित शरीर के एक ही रूप हैं क्योंकि दोनों दशा में जीव शरीर से निकल जाने पर मुर्दा बन जाता है[१]।

मीता साहब ने मुसलिम समाज में प्रचलित दरवेस मुसलमान, हक, हलाल, हराम आदि भ्रममूलक शब्दों के भ्रान्तियों का उन्मूलन करते हुये उनके सही अर्थ के प्रकाश का प्रयास किया है। वास्तविक दरवेस (सन्यासी या संत) वेही हैं जो ईश्वर के अधिकार को अपने उदार कर्मों द्वारा प्रमाणित करते हैं। सच्चे मुसलमान वे ही हैं जो ईमानदारी (सच्चाई) से अपनी पांचों इन्द्रियों को वश में कर लेते हैं। जब तक शरीर इन चोरों (पंच इन्द्रियों) को वश में नहीं कर लेते तब तक ईश्वर का दर्शन नहीं हो सकता। ईश्वर के संदेश की असत्य-भ्रान्ति में गाय, बकरी आदि को मारकर उनके मुख से अन्तिम शब्द `हक``हक` को सुनकर

---

[१]मियांजी मुसलमान सोई दीना, जेहि पीर मिलै परबीना।
हिरस, हैवान दूरि कै डारै काम न करै कमीना।
बकरी पांच रहवै घट भीतर, ममता मुर्गी संगा।
इनका मारी जीव उबारो, घट ही में मक्का मदीना।
अह गऊ गायी को मारो, रहि जीति परगासा।
गइया दूधि खान की मारै, दोजख रोह हैं बासा।
किया पेशाब जुनि जीव भीतर, तहवां जीव उपजाना।
तिनका मास मारि तुम पावो, भल तुम्हार मनमाना।
कपार माँ कुछ छिटकी पाई, ताको कहो न पाका।
मुरगी भल कीरा चुग पाये, कहो भई यों पाका।
कहते हैं मुरदा नहीं खाना, कै हलाल कै खाना।
जीव देखो बाहर रहिगा, तब तो भा मुरदाना।
करो विचार डरो साहब का, छाड़ो गरब गुमाना।
जिना जानि आखिर दुख पइहो, मार पड़ी घमसाना।
जाके मेहर सोई निज पीरा, जो पर पीरे खाना।
कहै मीता सोई करम कसाई, जिन पर दरद न जाना।
- मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, पद संख्या-१५२६।

ईश्वर को सन्तुष्ट समझना वास्तव में एक पाखण्ड और ढोंग है ।[1]

मीता साहब समाज में पण्डितों के मूर्ति-पूजा, छापा-तिलक, संध्या, होम, तर्पण, जटा-जूट आदि पाखण्डों को जीविकोपार्जन का एक अंग माना है । ईश्वर का दर्शन करने वाला ही वास्तविक दरवेश (सन्यासी) है क्योंकि न तो वह (ईश्वर) जीव का वध करता है और न खाता है । छः वेश और छानबे पाखण्ड संसार को लूट-खाने वालों का एक व्यापार है ।[2]

समाज में विवाह प्रथा सामाजिक-पद्धति के निर्वाह का एक प्रमुख अंग है । मीता साहब ने तत्कालीन हिन्दू-मुसलिम वैवाहिक पद्धति को ही प्रमुख माना है । अपने वचन-वाणी के माध्यम से हिन्दू विवाह के विभिन्न रीति-रिवाजों का उल्लेख कर तत्कालीन समाज का एक सजीव चित्र प्रस्तुत किया है । यद्यपि प्रतीकों के माध्यम से योग-धारा की विवेचना की गयी है लेकिन लौकिक पक्ष सामाजिक पक्ष का चित्रण उल्लेखनीय है - विवाह मण्डप में बीचो-बीच हरे बांस का एक मड़वा गाड़ा जाना साथ ही मण्डप के चतुर्दिक चार अन्य बांस को गाड़कर पंच मड़वे के स्वरूप को पन्चीय अतिरिक्त छोटी-छोटी बांस के

---

[1] सो मिया दरद बन्द दरवेशा, जिन हक साबित के देखा ।
रहे गरीब जुलुम नहीं करता उनका न्यारा लेखा ।
मूसे आप मुसल्लम सोई, इमान दोस्त जिन किन्हा ।
घर के चोर मूसे नहीं पावे, भेद पीर जब दिन्हा ।
तु खूनी की है दरवेशा, भुखिया होय अन्देशा ।
मुरगी बकरी गाय जबहकी, किन्ह संदेश तोहि भेजा ।
आखिर हक हक करेगा तब सौदा है तेरा ।
कहै मीता क्यों कहले जोरा, क्हां दुख हवे घनेरा ।
- मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, पद संख्या-132 ।

[2] पंडित या विधि भगति न होई ।, वही, दोहा संख्या-८७ ।

टहनियों से सजाना, वैवाहिक मण्डप का सजीव चित्र है । युवती की हल्दी-उबटन द्वारा पीत वर्ण करना एवं विवाह के समय नाना-प्रकार के बाजों की ध्वनियाँ उसके स्वरूप को प्रदर्शित करती हैं । नव-यौवना, तीन मंगली के तीन दिन व सात मंगली के सात दिन में सूखकर क्षीणकाय हो जाती हैं क्योंकि युवती को मायके को तजने का दुःख सदैव बना रहता है । माड़ों के नीचे रखा कलश रात-दिन जलते हुये उसे ससुराल गमन की तिथि समीप लाता जाता है ।

इन्होंने तत्कालीन समाज-व्यवस्था में प्रचलित द्विरागमन-पद्धति (गौना) का बड़ा भावपूर्ण वर्णन किया है । अवयस्क अवस्था की दुल्हन विवाह के समय के पांच वर्ष पश्चात् द्विरागमन की रीति से ससुराल जाती है । द्विरागमन के पश्चात् दुल्हन का मायके लौटना संभव नहीं होता ।[1]

हिन्दू विवाह पद्धति में अग्नि को साक्षी रूप में मानकर उसके सात फेरे लगाकर अपने प्रगाढ़ प्रेम को दाम्पत्य के सूत्र में बांधते हैं । योग के प्रतीक रूप में इसे स्पष्ट चित्रित किया गया है ।[2] साथ ही तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में प्रचलित ससुराल में पानी लाने की रीति के दो रूप चित्रित किये गये । कहीं नदी तालाब से घड़े द्वारा पानी लाया जाता है और कहीं गहरे कुएं से रस्सी व घड़े से पानी निकाला जाता है । ससुराल की एक नयी दुल्हन मायके

---

[1] अब ना नैहर मन लागै पिया-पिया धुनि लागी ।
मूलै मड़वा छावा हो, पांच पचीसो बांधि ।
अगम बाजा बाजई, हरद बरन भई देहि ।
सुखि टटेरवा तब भई, तजा ग्रह का नेह ।
बरे अग्नि अभियन्तरा जरि बरि भई खेह ।
दूर देस गवना भयो, यो विधि ग्रुलि सनेह ।
अब ना आयब जायब हो, कुछ नाहीन सन्देह ।
कुंभ नीर सागर मिला, कैसे न्यारा होय ।
-भीखादास, ह0लि0ग्रंथ, पद संख्या-१६८५।

[2] परम हंस सो रहिं भंवरि तब मनवो मन मानिा ।
- वही, पद संख्या-७२१ ।

की भांति पानी लाने हेतु बिना रस्सी के ही कुएं पर पहुंचती है । उसे उसकी भूल का ध्यान दिलाते हुये मीता साहब कहते हैं कि हे ! नागरी ! तुम्हारे मायके जैसे तालाब या नदी नहीं है जहां बिना रस्सी के ही पानी की उपलब्धि हो सके । यहां के कुएं के पानी का स्तर बहुत नीचे है बिना रस्सी के तुम्हें पानी प्राप्त नहीं हो सकेगा ।[1]

तत्कालीन समाज के नव-दुल्हन की पहचान रस्सी व गगरी मानी जाती थी । घुंघट डाले कुएं पर जाती हुयी यौवना के हाथों में रस्सी-गगरी का होना उसके दुल्हन होने का सहज ही अनुमान किया जा सकता था ।[2]

मीता साहब ने समाज के विभिन्न सदस्यों के मनोभावों का बहुत ही स्पष्ट चित्र अंकित किया है । क्वांरी लड़कियों को विवाह के पूर्व मायका प्रिय होता है परन्तु विवाह के बाद ससुराल जाने पर उनके मन में आमूल परिवर्तन हो जाता है । इस प्रचलित नारी-मनोभावों का भी चित्रण मीता साहब ने अपने काव्य में किया है ।[3]

---

[1] लेजुरी नहीं वली पनियां, कुंअना है बड़ि दूरि ।
पनिया हाथ नहिं आइहैं, मुंह में परिहैं धूरि ।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-१८१८ ।

[2] मिल है सखिन का नागरि, कुंअना भरि ले पानी ।
लेजुरी लै औ गगरी ससुरे की पहिचानी ।।
- वही, दोहा संख्या- १८१९ ।

[3] मयका लगै सुहावन हो, जो लगि ससुरे न जाइ ।
ससुरे के हो आगम हो, मन औरस होइ जाइ ।।
- वही, दोहा संख्या- १८२० ।

मीता साहब ने नव व्याहिता दुल्हन के हृदय में प्रस्फुटित 'लज्जा' मनोभावों का बहुत ही हृदयग्राही चित्रण प्रस्तुत किया है । गुड़ियों से खेलती हुई क्वारि बाला का अपनी विवाहित सखियों से सेज के क्रिया-कलापों के प्रश्नोत्तर में सखियों की असमर्थता प्रकट करना वास्तव में श्रृंगारिक चित्रण का सर्वोत्कृष्ट वर्णन है ।[1]

ससुराल में वैवाहिक जीवन की आनन्द अनुभूति प्राप्त करने वाली दो नव-यौवना के अपने प्रेमानन्द की अनुभूति को केवल मुस्कराहट द्वारा प्रकट करना वैवाहिक जीवन की प्रचलित नारी मनोभावों का सुललित चित्रण है ।[2]

तत्कालीन समाज की सती प्रथा का विरोध करके उसका स्पष्ट चित्रण प्रस्तुत किया है । इनके अनुसार विधवा नारी को गृहस्थाश्रम में ही रहकर जीवन यापन करना चाहिये । तपस्विनी बनकर वन में इधर-उधर भटकने से उसका पुनर्जन्म में जन-वधू (वैश्या) के रूप में जन्म लेना पड़ेगा ।[3]

तत्कालीन समाज में अज्ञानी भ्रमित योगियों के वृहत् समुदाय के क्रिया कलापों का स्पष्ट चित्र खींचते हुये मीता साहब ने उनकी भर्त्सना की है । अज्ञानी योगियों का ईश्वर प्राप्ति का सारा उपक्रम व्यर्थ ही चला जाता है । अर्थहीन

---

[1] क्वारि खेलत गुड़ियन अरि पूछत सखियन सो बात ।
गौने जाव तो जाने मैं तो कहत लजात ।।
- मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-१८२१ ।

[2] गौने ते आई री दोनो चितै-चितै मुस्काय ।
कौउन कहे दोनो जाने, सेजरि कौ स्वभाव ।।
- वही, दोहा संख्या-1822 ।

[3] रवहुं संग जरै मुरदाना, ते जनकोरिनी होहिं निदाना ।
विधवा नारि जिन तप ठाना, तेउ विस्वा होइ निदाना ।।
-वही, दोहा संख्या-१८२३ ।

योग मुद्रा में लीन रहने वाले योगी को ईश्वरत्व की प्राप्ति नहीं होती क्योंकि उसकी गति इससे भिन्न है । जो सूर्य रन्ध्र से करोड़ोंबार श्वांस का उच्छ्वास प्रच्छ्श्वास करते हैं वे ही इस तत्व को समझते हैं । व्यर्थ का अनाहत् नाद के श्रवण का झूठा उपक्रम, अलौकिक प्रकाश के काल-कवलित होने की पृष्ठभूमि है । वाह्य षाट कर्मों की साधना में उर्ध्वमुख करके पवनाहार करने वाले मुक्ति को नहीं प्राप्त कर पाते । करोड़ों अजपा जाप के चक्कर में पड़ने वाले षाटकर्मी रेचक और कुंभक मुद्राओं में फंसकर नरकगामी होते हैं । वाह्य नेत्रों द्वारा भौतिक आकाश को शून्य मण्डल मानकर निरन्तर देखने का अभ्यास वास्तविक योग-साधना नहीं । समाज में कुछ ठग दान में धोती मांगने वाले एवं मुख से पट्टी निगलकर आंत पखारने वाले वास्तव में षाष्टकर्मी हैं और योग साधना से इनका कोई तात्विक सम्बन्ध नहीं होता ।[१]

---

[१] का मुद्रा योगी करै, साहिब की गति न्यारी ।
जिन देखा सो जानिहै, रवि कोटिन वारी ।
वाह भयो अनहद सुनि लखि कै उजियारी ।
या तो झाईं काहु की जीव की रखवारी ।
उर्ध मुख पवन चढ़ाइँ कै, जीवै अधिकारी ।
देह छूटि अजगर भयो, इन पूंजी हारी ।
रेचक कुंभक मुनि मरा या भरम पसारी ।
कोटिन अजपा ध्यावइँ भूलि विष धारी ।
शून्य मण्डल बहु सोजइँ अंध व्यापारी ।
बकुलन का परमोदिया, ठगिया संसारी ।
धोती नेती बहु करै, बहु आंत पखारी ।
ज्यों बाजीगर पेखना जग देखन हारी ।
ब्रह्म अगिन उद्गारि कै, खोलि पश्चिम केवारी ।
जीव ब्रह्म मा मिल गयो, आवागमन नेवारी ।
सोई माठि सोई भयो, को काढ़नहारी ।
कहै मीता अब एक हि जहां लोह संसारी ।
– मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, पद संख्या-१६१६ ।

मीता साहब ने अपने वचन-वाणी में कृषि का समानार्थक शब्द `किरषी` का प्रयोग किया है। `किरषी` को दो अर्थों में (कृषि तथा उद्यम) ग्रहण किया है। बिना उद्यम से जीव का निस्तार संभव नहीं है।[१]

मीता साहब ने व्यापार के विभिन्न दशाओं का वर्णन योग मार्ग को स्पष्ट करने के लिये किया है। जिससे तत्कालीन समाज में प्रचलित व्यापार पद्धति का बोध होता है। व्यापार में पूंजी का प्रयोग पूंजी से माल का क्रय-विक्रय एवं माल को बैलों पर लादकर बाजार में बेचने के लिये ले जाना, व्यापार की कुशलता का परिचायक है। नगर में अपना माल चोखा (खरा) कहकर शीघ्र बेच देने से एक कुशल व्यापारी का चित्र प्रतिबिम्बित होता है। प्रतिस्पर्धा में सस्ती दर से माल बेचने पर प्रतिद्वन्द्वियों द्वारा हंसने पर कि इनका दिवाला अब पीटा तब पीटा। अपने आपको लाभ की स्थिति में ले जाना भी एक अच्छे व्यापारी का लक्षण है। इस प्रकार मीता साहब की वचन-वाणी सेठ-साहुकारों के साख रूप हुण्डी आदि का वर्णन कर तत्कालीन व्यवसाय का एक स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करते हैं जो स्वयं में व्यापार की स्पष्ट अभिव्यंजना है।[२]

सैद्धान्तिक विवेचन

मीता साहब ने आध्यात्म के जिस सिद्धान्त को स्वीकार किया है वह बहुत ही व्यापक है। गोरखनाथ भृर्तहरि, गोपीचन्द और कबीर द्वारा अनुप्राणित

---

[१] (क) हरि के दास गिरही मा उपजै किरषै के निस्तारा रे।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-५३

(ख) दर मस्तिा है लादै फिरियो किरषी के लाड़े रे।
- वही, दोहा संख्या- २०१५ ।

[२] टाड़ा लादा अगम नगर का जहाँ न सुर मुनि जाई।
- वही, दोहा संख्या- २०१६ ।

मार्ग पर आयी हुयी भ्रान्तियों का निवारण कर उसे एक सही दिशा देना आसान काम न था । भीखा साहब ने योग और आध्यात्म के सारे सिद्धान्तों को प्रयोग में लाकर स्वर्ण के समान परिष्कृत किया इन्होंने जहाँ एक ओर शंकराचार्य एवं रामानुज जैसे महान विद्वानों की भाँति दार्शनिक परम्परा की सूक्ष्म एवं गंभीर तत्वों के सार का अन्वेषण किया वहीं दूसरी ओर कबीर और गोरखनाथ की वचन-वाणी को अपनी वाणी का प्रमुख विषय बनाकर उसका सच्चा आध्यात्मिक निरूपण भी किया । गोरखनाथ से प्रारम्भ होकर कबीर से होते हुये भीखा साहब तक पहुँचते पहुँचते आध्यात्मिक तत्वों की ऊपरी सतह आडम्बरों एवं अज्ञानो से पूरी तरह दब गयी थी । इस्लाम के आगमन ने उसपर भाव-भेद की एक और परत चढ़ा दी । भीखा साहब का प्रादुर्भाव संत-जगत में इन सारी विसंगतियों को दूर करने के लिये ही हुआ था । भीखा साहब ने हिन्दू और मुसलमानों के बीच भेद-भाव की खाई को उनके आडम्बरों एवं रूढ़ियों पर कुठाराघात करते हुये उनके मलवे से पाटने का प्रयास किया । अत: आध्यात्म के क्षेत्र में भीखा साहब ने अवतरण को एक क्रान्ति कदम कहना अतिशयोक्ति होगी । जिस योग के कारण भारत सारे विश्व का गुरु समझा जाता था, वह अब वाह्याचार के विस्तार के कारण लुप्त हो चला था । लोग मनमंदिर में योग के माध्यम से ईश्वर की दिव्य-मूर्ति के स्थान पर ईंट-पत्थर के बने मंदिर-मस्जिद में ईश्वर का काल्पनिक साक्षात्कार करने लगे थे । योग की भावना के ह्रास में समाज विघटन के कगार की ओर अग्रसारित हो रहा था । भीखा साहब ने ऐसे समय अपने अध्यात्म में योग को स्थान देकर मानव जीवन की व्यापक अभिव्यंजना की । इनका योग यद्यपि ऋषि पातंजलि, गोरखनाथ अथवा कबीरदास जी से भिन्न न था लेकिन इनके योग-दर्शन में नये जीवन की नयी झांकी का नया संदेश है । उनका योग शताब्दियों की योग परम्परा को अग्रसर करने की एक और कड़ी है जिससे योग परम्परा को कबीर के पश्चात् अग्रसर होने का एक प्रबल सहारा मिला । अत: भीखा साहब के आध्यात्मिक सिद्धान्त को समझने के पहले उनके द्वारा दर्शाये गये योग-परक तत्वों पर एक गंभीर दृष्टि डालना श्रेयस्कर होगा क्योंकि योग ही निर्गुण धारा के

तत्वों की परख का प्रमुख साधना है ।

योग:

मीता साहब के काव्य में योग के तीन रूप पाये जाते हैं -

(१) कायिक योग
(२) मानसिक योग
(३) सहज साधना

(१) कायिक योग- कायिक योग में शरीर का महत्वपूर्ण साधना है । बिना शरीर की स्थिति में कायिक योग-साधना संभव नहीं । गोरखनाथ से प्रारम्भ होकर कबीर के समय तक इसका बहुत ही महत्व था । कबीर के समय योग का एक विशिष्ट नाम हठयोग था । नाथ पंथी हठयोग की साधना द्वारा प्राण वायु को सुषुम्ना के मार्ग से ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश कराकर अविचल स्थिति में लीन हो जाते हैं । ऐसी अवस्था में उन्हें एक अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती थी । संत कबीर के पदों में भी इसकी कुछ झलक दिखायी देती है । हठयोग दर्शन में हठयोग के आठ अष्टांग नियम बताये गये यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान और समाधि । 'हठयोग प्रदीपिका' के अनुसार शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियाँ है लेकिन शिव संहिता के अनुसार केवल तैंतीस हजार है । सभी नाड़ियों में इंड़ा पिंगला और सुषुम्ना प्रमुख है । इन्हें कुछ लोगों ने रसना ललना और अवधूती भी कहा है ।

हठयोग की साधना और मीता साहब:

मीता साहब ने यम, नियम, संयम आदि का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है लेकिन योग परख स्थिति को प्राप्त होने के लिए ये परम आवश्यक हैं । मीतादास

ने योग के बताये गये आसनों आदि का स्पष्ट उल्लेख किया है । हठयोग में वर्णित इड़ा, पिंगला का सुषुम्ना के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश, गंगा-यमुना के बीच संधि, प्राणवायु का गगन मण्डल में प्रविष्ट होना, त्रिकुटी तरुवर पर संगम, तथा चन्द्र द्वारा अमृत रस का स्राव, योगी का निरन्तर उसे पान करना मूलाधार से प्रस्फुटित कुण्डलिनी शक्ति द्वारा षट चक्रों का भेदन करने के पश्चात् अष्ट कमल दल में प्रवेश करना, द्वादश कमल के जीव का अष्ट कमल दल निवासी ब्रह्म से साक्षात्कार करना आदि हठयोग के तत्वों का वर्णन मीरादास ने अपने काव्य में किया है । हठयोग के प्रचलित परम्परागत चक्रों में विभिन्न देवों की स्थिति मीरा साहब को स्वीकार नहीं है । उन्होंने कबीर की भांति षट चक्रों से ऊपर अष्ट कमल दल की कल्पना की है जिसमें पारब्रह्म का निवास स्थान माना है । हठयोग के तत्वों को अपनाते हुए भी मीरा साहब हठयोग के तत्वों पर निर्भर नहीं है । नाथ पंथियों की भांति हठयोग साधना ही उनकी योग साधना का परम लक्ष्य न था । कबीर की भांति हठयोग की साधना केवल ईश्वर को प्राप्त करने का साधन था साध्य नहीं । वे हठयोग को केवल इसलिए महत्व देते थे क्योंकि उसके द्वारा मन एकाग्रचित हो जाता था । मीरा साहब इस बात को भलिभांति समझते थे कि हठयोग को साध्य समझने के कारण ही नाथ पंथी अपने मार्ग से विचलित होकर धीरे-धीरे षटकर्म को ही अपने जीवन का लक्ष्य मानने लगे थे । ऐसे षट कर्म को ही हठयोग का पर्याय समझने वाले हठयोगियों की आपने कड़ी आलोचना किया है । हठयोग के मर्म से अनभिज्ञ उसके समानान्तर षटकर्मों की क्रिया के साधकों पर व्यंग करते हुए मीरा साहब कहते हैं कि जो अर्द्धमुख करके हठयोग साधना की भांति वायु को शरीर के ऊपरी भाग में अग्रसारित करता है उसका अगला जन्म अजगर का होगा । नाना प्रकार के आसनों में व्यस्त साधक बन्दर बनेंगे । अपनी आंत की पट्टी निगल कर प्रक्षालन करने वालों का जन्म कुएँ के रूप में होगा आदि

(२) <u>मानसिक योग साधना</u>:- मानसिक योग साधना का दूसरा नाम राजयोग है । यद्यपि हठयोग के लिए नियम, आसन, प्राणायाम आवश्यक है तथापि राजयोग के लिये नहीं । वस्तुत: राजयोग के लिए प्रत्याहार आवश्यक है । मन की गति सदा बहिर होती है । उसकी वृत्तियों को अन्तर्मुखी करना राजयोग का एक उदाहरण है । मन बहुत ही चलायमान है । इसको शरीर के किसी भाग में स्थिर करने से अन्य वृत्तियां चित्तवृत्ति में लीन हो जाती है । चित्तवृत्ति की स्थिर अवस्था को ध्यान कहते हैं । ध्यान जब समाधिस्थ होता है तब मन को एक स्थायी साम्यावस्था प्राप्त होता है । ध्यान के समाधिस्था अवस्था में विशिष्ट साध्य की प्राप्ति होती है । मनुष्य की दसों इन्द्रियां स्वतंत्र रहकर अपना व्यापार चलाना चाहती है । साधारण मनुष्य इन इन्द्रियों का क्रीत दास बना रहता है । किन्तु योगी मानसिक योग साधना के माध्यम से मन को वश में कर लेता है । मन के वशीभूत होते ही इन्द्रियां स्वत: उसकी दासी बन जाती है क्योंकि मन ही सारी इन्द्रियों का संचालक है । मीतादास जी ने इसी मन को वश में करने के लिए नादानुसंधान योग साधना पर बल दिया है ।

मीता साहब ने मानसिक योग साधना को ईश्वरानुभूति के लिए बहुत ही आवश्यक माना है । मन को वाह्य विषयासक्तियों से हटकर उसे अन्तर्जगत में उन्मुख करने पर ही आन्तरिक पर्यवेक्षण की क्रिया का श्रीगणेश संभव है अन्यथा मन की पच्चीसों वृत्तियां उसे चलायमान बना देती हैं ।[1]

आशा और तृष्णा मन को एकाग्रचित्त करने में बहुत बाधक हैं । इनके त्याग से अन्य वृत्तियों का प्रवाह सुप्त होता है । वृत्तियों के प्रवाह की सुप्तावस्था के अन्तर में ध्यान ईश्वर में केन्द्रित हो पाती है । ध्यान के केन्द्रित होते ही

---

[1] पांच पचीसो की लहर, जो आवे सो ग्यानी ।
मन दरिया तब हाथे आवे मिटे अन्तयामी ।।
- मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-२०४६ ।

योगी को समाधि अवस्था की उपलब्धि होती है।[१] मन को वश में करने के लिये उसके चंचल रूप को त्यागकर मौन (स्थिर रूप) देना आवश्यक है। इस हेतु आभ्यान्तर में नादानुसंधान द्वारा इसकी चंचलता को निर्मूल करना योगी का परम लक्ष्य होना चाहिये। वाह्य रूप में केवल मुख द्वार को बन्द (स्थिर) करने से कोई लाभ नहीं क्योंकि मुख द्वारा बन्द (मौन) होने से प्राण की हानि संभव है।[२] शरीर प्रक्षालन से जीव की शुद्धि केवल एक कल्पना मात्र है। मन को वाह्य कुवृत्तियों से प्रक्षालन करने पर ही ईश्वर का दर्शन सुलभ हो सकता है क्योंकि वाह्य वृत्तियाँ मन की चंचल अवस्था को स्थिर करने के स्थान पर उसे और चलायमान कर देती हैं।[३] चित्त की चंचल प्रकृति का निरोध सरल नहीं है। चित्त की चंचलता की समाप्ति पर जीव को उस परम लोक की उपलब्धि सहज ही हो जाती है जो देवताओं तक को दुर्लभ है।[४] किसी वस्तु का निरन्तर स्मरण ध्यान योग कहलाता है। बार-बार के स्मरण से वाह्य वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हो जाती हैं। अन्तर्मुख वृत्तियाँ जब एक ही बिन्दु पर केन्द्रित हो जाती हैं तो जीव अपने परम लक्ष्य को पकड़ लेता है। इसे ध्यान योग कहा जाता है।[५]

---

[१] आशा तृष्णा कठिन है छाड़े बिरला कोय।
मीता हरि मन सो लगै दाग न लागै कोय।।
-मीतादास, हस्तलिखित ग्रंथ, दोहा संख्या-५८५।

[२] मन का मौन जो करै, पावै पद निरबान।
साकर मुँह का मूद कै चाहत है हो जान।।
- वही, दोहा संख्या-७२६ ।

[३] काया पानी धोइया, मन जहँ कैसे धोय।
कह मीता मन धोयतो सहज परम पद होय।
- वही, दोहा संख्या-2028 ।

[४] चित चंचल निश्चल किया जहाँ न सुरमुनि जाय।
मीता तहाँ पाना किया, जहाँ न सुरमुनि जाय।।
- वही, दोहा संख्या-2035।

[५] कबीर और कबीर पंथ, डा० केदारनाथ द्विवेदी, पृष्ठ-१२१।

हठयोग में नादानुसंधान से कुण्डलिनी को जागृत कराना, सुषुम्ना रन्ध्र की कुण्डलिनी को ब्रह्मरन्ध्र में पहुंचाना, गगन मण्डल में अनाहत नाद सुनना एवं जिह्वा को उलटकर चन्द्र से स्रवित अमृत रस का पान करना ही हठयोगी का परम लक्ष्य होताहै।[1] लेकिन लययोग का योगी केवल इस अमृत रस को पीना ही अपना लक्ष्य नहीं मानता। वह ब्रह्म रन्ध्र में कुण्डलिनी शक्ति को लय कर देता है। प्राण वायु का ब्रह्मरन्ध्र में लय होने से ही सारे पाप-पुण्यों का विनाश संभव है। तभी मन सभी वासनाओं से मुक्त हो पाता है। वास्तव में वासनाओं का लय कर देना ही लय माना गया है।[2] लययोग से ही सारी वासनाओं के विलुप्त होने का कार्य सम्पादित होता है। भीखा साहब ने लययोग में मन को केन्द्रित करने की दशा को अजपा जाप कहा है। इसी अजपा जाप से आशा रूपी वासनाओं के विनिष्ट होने पर मुक्ति का मार्ग प्रसारित होता है।[3]

सुरति योग और भीखा साहब:

सुरति योग लययोग का ही दूसरा रूप है। भीखा साहब ने सुरति-निरति योग की बहुत ही विशद व्याख्या की है। सुरति (ध्यान) को ब्रह्म से जोड़कर मन की चंचलता को समाप्त करना इस योग का परम लक्ष्य है। सुरति-साधना द्वारा ही सुरति कमल (अष्टदल कमल) में स्थित परब्रह्म की प्राप्ति संभव है।

---

[1] डा० केदारनाथ पाण्डेय, कबीर और कबीर पंथ, पृष्ठसंख्या-१२१।

[2] हठयोग प्रदीपिका, ४।३४।

[3] विषय चाहै और हरि चाहै, कैसे हरि का होय।
देह बिसारे तब मिलै, बैठुवा भीत न होय।
टूटी डोरी जीव निकसा, तहां सभा ना जाय।
जहां आशा तहं वासना, सोइ कै पहुंचाय।।
-भीखादास, ह०लि०ग्रंथ, पद संख्या-२५६६।

सहज-साधना:

मीता साहब ने चिर परिचित सहज साधना को अपनाया एवं उसपर अपने नवीनतम योग-प्रयोग की मुहर लगा दी । उनकी सहज साधना में बौद्ध सिद्धों की न तो अति रहस्यमयता है और न शून्य साधना द्वारा महासुख प्राप्ति का उपाय ही है । इन्होंने अपनी सहज साधना में ईश्वर साक्षात्कार एवं उसके परमानन्द की अनुभूति को बहुत ही सहज ढंग से बताया है । उनकी सहज साधना वास्तव में ईश्वर प्राप्ति का सहज साधन है । मन की चंचलता को त्यागने पर ईश्वरानुभूति सहज ही प्राप्त हो जाती है ।[१] अपनी सहज साधना का स्पष्टीकरण करते हुये मीता साहब गुरु रूपी नौका द्वारा जीव को भवसागर से पार उतारने का साधन बताया है । इनकी सहज साधना में गुरु पर विश्वास, उससे स्नेह, मन की स्थिरता, गुरु की सच्ची सेवा, इन्द्रिय निग्रह, धैर्य या सत्य अक्रोध आदि तत्वों का महत्वपूर्ण स्थान है ।[२]

मीतादास और ब्रह्म:

सारे विश्व की सत्ता अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक में निहित है । उसे परम तत्व खुदा, भगवान, अल्लाह आदि अनेक नामों से जाना जाता है । वह मन, बुद्धि, वाणी से परे है । ज्ञान से अगम्य है । वह अविकल निराकार अविगत और अगम्य है । मन वाणी से अगम अगोचर होते हुये भी योगी उस अलौकिक सत्ता से भिन्न-भिन्न रूपों में साक्षात्कार करता है । उसका निवास अमरपुर है । वह

---

[१] काया पानी धोइया-------------- ।
-मीतादास, पदसंख्या- ३४६६ ।

[२] (क) साधो मुक्ति होइ मन मारे जो चाहै धारे ।
(ख) सुन ससुरे की बतिया, घूंघट टोटी टाटियाँ ।
(ग) तब या घर का पइया गुरु सेवै जाय ।
- मीतादास, पद संख्या-७६३ ।

अजर अमर और अविनाशी हैं । भीखा साहब ने ब्रह्म के लिये राम, अन्तर्यामी सतनाम प्रीतम, दयानिधि सत् पुरुष हरि करतार सिरजनहार आदि शब्दों को स्थान दिया है ।

ब्रह्म का रूप:

मन, वाणी, बुद्धि से परे - भीखा साहब का ब्रह्म मन, वाणी एवं बुद्धि से परे है । वह निर्गुण, निराकार, निरालम्ब एवं निर्विकल्प है[1] । वह शरीर धारण नहीं करता है[2] । जरा और मृत्यु उसे प्रभावित नहीं कर सकते । ब्रह्म महान तेज युक्त है । उसकी दिव्य छवि अनूप है । वह इतना तेजस्वी है कि उसके अलौकिक तेज पुंज के समक्ष करोड़ों सूर्यों का प्रकाश फीका पड़ जाता है । निर्गुण रूप होते हुए वह इतना विशाल है जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती । उसका रूप रेखा, आकार अनिश्चित है । सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में इसके सदृश्य कोई नहीं है । वह कभी भी जन्म-मरण के भूले में भूला भूलने वाले जीव के रूप में अवतरित नहीं होता । अवतारवादी राम, कृष्ण आदि परम्परागत ब्रह्म समझे जाने वाले महापुरुष ब्रह्म न थे । क्योंकि उपरोक्त महापुरुष पेट, पीठ, आंख, कान, नाक आदि इन्द्रीय सुख के बंधनों में बंधकर काल कवलित हो गये । ब्रह्म की सत्ता का क्षेत्र

---

[1] ब्रह्म अखण्ड विनश नहि जाता देह धरैवा नाहीं ।
- भीखादास, दोहा संख्या- ७०६ ।

[2] रूप अनूप महबूब का कायाधारी नांय ।
तन सोधे सो पाइया सतगुरु देंह बताय ।।
- वही, दोहा संख्या- ८६० ।

काल से ऊपर है ।[1]

ब्रह्म का स्थान:

सर्वव्यापी - आपके अनुसार ईश्वर सर्वत्र है । सम्पूर्ण जड़-चेतन में वह व्याप्त है । केवल मंदिर, मस्जिद या गिरजाघर ही उसका निवास नहीं है । उसका वास घट-घट में है । घट से अन्यत्र उसकी स्थिति सम्भव नहीं है ।[2]

शरीर के अभ्यंतर तीनों लोकों में श्रेष्ट तीर्थ विद्यमान है जहां इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों का संगम त्रिवेणी घाट के नाम से विख्यात है । इस त्रिवेणी में ही ईश्वर का निवास बताया गया है ।[3]

---

[1] (क) भक्त न विनसै ब्रह्म न विनसै और विनस सब जाई ।
अजर अमर है साहब तेरा विनस न कबहु जाई ।।
(ख) भका-भकि ब्रह्म सो लागा छका छवि देख मन पागा ।
(ग) राम रूप अगम सोभा कोटिन काम लजाइयो ।
राम रूप विशाल मूरति केहि विधि देखन पाइयो ।।
(घ) भरम तजु रामचन्द्र कौन कन्हाई ।
भजलो साँचा साई ।।
(च) रामचन्द्र और नन्द कन्हैया ह मानुष के बेटा ।
जो इनका करता के जानी तिनका जाम की चोटा ।।
-भीखादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या २०६९ ।

[2] (क) हरि हीरा हिरदे बसे का खोजे बड़ा दूर ।
कह भीखा सतगुरु बिना मुंह में परिहैं धूर ।।
-वही, दोहा संख्या- ।
(ख) घर में ही हरि मिलै रे बौरे बन में जाई गंवारा रे ।
-वही, दोहा संख्या- ।
(ग) हीरा काया भीतर संगत से लेय ।
कह भीखा बन का फिरै बन में बिकै होय ।।, वही, दोहा-१६५३ ।

[3] घटहि मा हरि पाइये अनत नहीं कह ठौर ।
जो अनते बतलावई काल करै तेहि कौर ।।
तीन लोक के उपर घाट हवै तिरवेनी ।
भीखा तहाँ नहाइया मीटी आवा जानी ।।
-वही, दोहा संख्या- १६७०

संत मार्ग में प्रचलित विभिन्न कमल दलों की स्थिति को स्वीकार करते हुए आपने द्वादस कमल में जीव का निवास तथा अष्टदल कमल में ब्रह्म के निवास को मान्यता दी है। द्वादश कमल का जीव अष्टकमल दलवासी ब्रह्म से साक्षात्कार करने के पश्चात् ही आवागमन से मुक्त हो पाता है।[1] अष्टदल कमल स्थित ब्रह्मलोक को अमर लोक भी कहते हैं। जहां योगी की सुरति ईश्वर से निरति कर उसकी प्रेयसी बन जाती है। योगी की सुरति-निरति साधना ही केवल उस लोक तक पहुंचने का माध्यम है। वह लोक त्रिदेवों के अधिकार क्षेत्र से परे है। वहां न तो ब्रह्मा का वेद है और न खुदा का कुरान है।[2] रवि-शशि दोनों स्वास छिद्रों को सम रखने पर ही उस लोक की राह का तनिक आभास सम्भव हो पाता है।[3] ब्रह्म का स्थान इन तीनों लोकों से ऊपर चौथे लोक में स्वीकार किया गया है। यही कारण है कि तीनों लोकों के व्यापार में व्यस्त जीव की मुक्ति असम्भव है।[4] ज्ञान-योग के माध्यम से तीनों लोकों के लौकिक सुखों का परित्याग करने पर ही चौथे लोक में मुक्ति की प्राप्ति हो सकती है।

---

[1] (क) अष्ट कमल दल के भीतर मिला प्यारा रे।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या- 2201।

(ख) द्वादस कमल जीव का वासा।
अष्ट कवल दल ब्रह्म निवासा।।
जीव ब्रह्म को हकुं कहं।
कह मीता सो प्रानी तहं।।, वही, पद संख्या- ७६८।

[2] सुरति निरति भौरि भई पदमिनी।
जाय मिली करतारा रे
शेष महेस विष्नु तह नाही नाही जग व्यवहारा रे।
ब्रह्मो वेद कीतेब नही है हुआ है सिरजन हारा रे।।
- वही, पद संख्या- २७८।

[3] रवि शशि दोनों समकै राखै सहि सुमिर समाना रे।

[4] तीन लोक के भीतर जो है तिनका नहीं उबारा।
चौथे जाइं सो जाइं मवासे कोइं न पकड़न हारा।।
-वही, दोहा संख्या- १६८१।

सृष्टिकर्ता:

ईश्वर सम्पूर्ण सृष्टि का सृजनकर्ता है । उनकी वचन-वाणी में प्रयुक्त 'सिरजन हारा' शब्द सृष्टिकर्ता का ही द्योतक है । पांच तत्वों से निर्मित सम्पूर्ण सृष्टि में 'सिरजनहारा' (कर्ता) व्याप्त है । जीव का एक ही वर्ण है दूसरा नहीं । ईश्वर ही सर्व पुरातन है । गगन, सूर्य, चन्द्र, धरती, समुद्र, पर्वतों आदि की स्थिति उससे प्राचीन नहीं है । कालान्तर में सृष्टि का विस्तार करने वाली आदि ज्योति की रचना भी ब्रह्म से पुरानी नहीं है । ब्रह्म ने त्रिदेवों की सृष्टि के बाद ही इस सृष्टि का सृजन किया है ।[१]

इच्छा-शक्ति:

ईश्वर अपनी इच्छा-शक्ति के बल पर ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का सृजन पालन और संहार करता है । इसी इच्छा-शक्ति को आधार मानकर ही भीखा साहब सभी अवतार वादों का विरोध करते हैं । वे कहते हैं कि पुराण पुरुष- राम, न तो किसी के दादा थे और न किसी के बेटा । बिना रूप रंग, आकार का ईश्वर माया से विरत होकर माया के कार्यकलापों को देखता रहता है । वह इतना शक्तिशाली

---

[१] हौं तोरक्का तक्का, जब सूरज न तारा ।
धरती मण्डप ना रहा ना समुद्र पसारा ।
आदि ज्योति तब ना रही जिनसे विस्तारा ।
तीन देव तिनसों रचे फिर सब संसारा ।।

-भीखादास, ह०लि०ग्रंथ, पद संख्या-१५६८ ।

है कि अपनी इच्छा-मात्र से ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को भस्मीभूत कर सकता है भला उसे अवतार लेने की क्या आवश्यकता है ।[1]

अनादि:

मीता साहब ने पूर्ववर्ती संतों की भांति ही ब्रह्म को अनादि और अनन्त माना है । सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के निर्माण से पूर्व और उसके विनाश के पश्चात् भी सर्वशक्तिमान ईश्वर की स्थिति अपरिवर्तनशील है । महाप्रलय के समय बिना अग्नि के मनुष्य का जीवन समाप्त हो जाता है । ब्रह्म की माया उस समय किसी पर दया नहीं करती । राजा-प्रजा, जीव-जन्तु, देव-मुनि सभी काल के कराल गाल में चले जाते हैं । चौदहों भुवनों में केवल अमरपुरवासी ब्रह्म ही महाप्रलय में शेष रहता है और अन्य सभी का विनाश हो जाता है ।[4]

---

[1] (क) राम न काहु के दादा नाहि उं बेटा रे ।
इच्छे ते करि नास बलि वा सेया रे ।।
- मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या- ७५१ ।
(ख) जिनकी इच्छा ते सब होता, सो काहे धरिया अवतारे ।
- वही, दोहा संख्या- ७५३ ।
(ग) मार तोर साहब के नाहि उं पाले संसारा ।
उनकी इच्छा ते सब होता ना धरते अवतारा ।।
-वही, दोहा संख्या- ७५६ ।

[2] (क) आदि पुरुष नैनन लखा, सब देवन का देव ।
मीता पारस पाइया करौं न पाहन सेव ।।
- मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या- ८६० ।
(ख) आदि पुरुष पहिचान है दिया सत गुरु भेद बताय ।
-वही, दोहा संख्या- ३०२ ।

[3] अविनाशी है नाव प्रभु ताहि काल न खाय ।, वही, दोहासंख्या- ३०७ ।

[4] कलयुग बीता आवत है पिय का दम दौर ।
जरिहैं जीव अग्नि बिनु, मायाँ मोरि न तोरि ।
राजा परजा सब जरिहैं कानि न काहु के ।
जीव जन्तु औ सुर मुनि, सब एकई डोरि ।
चौदह पुर होरि रचौ, अमरापुर छोरि ।।, वही पद संख्या- ३१९ ।

ब्रह्म के सगुण और निर्गुण रूप

मीतादास जी ने स्पष्ट रूप से ब्रह्म का केवल निर्गुण, निर्विकार रूप ही स्वीकार किया है । सगुण रूपधारी राम, कृष्ण आदि को उन्होंने ब्रह्म का पर्याय माना है । उनके अवतारवाद को कभी प्रश्रय नहीं दिया है वे सदा ब्रह्म के इस सगुण रूप को स्वीकार करने से सावधान रहे हैं । जहां कहीं भी भ्रम या आशंका जगी तुरन्त कह दिया कि ब्रह्म "कायाधारी नाय" । जहां कहीं ईश्वर के स्वरूप का वर्णन किया है उसके दिव्य, अनूठे अदृश्यमूलक स्वरूप का ही वर्णन किया है । आपके राम दशरथ के बेटे राम नहीं अपितु परब्रह्म राम हैं । सगुण राम(अवतारी राम) की तीव्र आलोचना करते हुये वे कहते हैं कि दशरथ ने ऐसे बेटे को जन्म दिया जो संसार में नाल लपेटा हुआ आया । उसके नाक,आंख, मुहं आदि दृश्य अंग थे । जिसकी मां कौशल्या कही जाती है । कौशल्या दशरथ का यह पुत्र उनका परमब्रह्म नहीं है क्योंकि उनका ब्रह्म कायाधारी नहीं है । वह अजन्मा, अनादि, निराकार, निरालम्ब है तथा जन्म-मरण धारण करने वाले दशरथ पुत्र राम से भिन्न है । मीतादास के निर्गुण ब्रह्म का स्वरूप ही संतों के ध्यान का विषय है । वह अकथनीय है । उसके निर्गुण स्वरूप की दिव्य ज्योति सौंदर्य का वर्णन वाणी का विषय नहीं है । करोड़ों सूर्य चन्द्रों का प्रकाश उसकी समता नहीं कर सकता । वह ब्रह्म परम पुरुष है किसी का कल्पित बेटा नहीं । मानव शरीर में उसकी कल्पना ईश्वर को नश्वर रूप प्रदान करता है जो पूर्णतया भ्रम का बीजारोपण है क्योंकि वह अविनाशी है, कालातीत है । अवतारी राम-कृष्ण कालकवलित हो गये । वे जन्म-

मरण के दुसह दु:ख को भोगने वाले जीव के रूप में प्रमाणित हुये ।[1]

जीव

जीव परम ब्रह्म का अंश है । अंश में ही उसके पूर्ण रूप की ही अभिव्यक्ति होती है । अत: जीव को भी ब्रह्म की भाँति नित्य और आदि कहना, श्रेष्कर होगा । भीखा साहब के काव्य में जीव का स्थान द्वादश कमल के भीतर है, स्वीकार किया गया है ।[2] जीव की गति माया के कारण सदा ऊर्ध्व रहती है । वह अपनी

---

[1] (क) दशरथ जाया ऐसा बेटा, आयु नार लपेटा ।
नासा नैन कपोल सीस कर, कौशल्या जाकी माता ।
पेट पीठ साहब के नाहीं, ना कपोल ना नासा ।
वा तो ब्रह्म निराला सबते, लिखि सुनि जनि लागा ।
देखी कहै सो ज्ञानी कहिये, अनदेखी कहै अंधा ।
रमिता राम सकल काया मांह सो सतगुरु मिल देखा ।
बिना विवेक सकल जग भूला, बिसरा सिरजन हारा ।
कह भीखा सोई दास कहावै, जिन्हें मिले करतारा ।
-भीखादास, ह०लि०ग्रंथ, पद संख्या-३१९ ।

(ख) दसा दास सोय चित लावै कहि जानि न जाये ।
नाहिन नैन कपोल नासा नाहि न कर नहि पावै ।।
- वही, दोहा संख्या-४७० ।

(ग) कोटि सूर ससि वारिये, छबि बरन कैसे जाय ।
नाहि बेटा काहु का वो, परम पुरुष आय ।
काया धारी जो हवै सो नर प्रानी आय ।
सो प्रभु कैसे हो सकै नर, भूल ना तु जाय ।
परम पुरुष बिसारि कै, नर सुख कारुना आय ।
देह धारी बिनस जाति, ताहि ना पतियाय ।
अविनासी है नाव प्रभु का, ताहि काल ना खाय ।
कान्हा रामचन्द्र दोउ खायै, संतै साखि बताय ।
गर्भ वास ना आवई, जो आदि पुरुष आय ।
कहै भीखा सुनौं सुज्जन दूनि बूड़ी जाय ।
- वही, पद संख्या-४८१ ।

[2] द्वादस कमल जीव का बासा ।
अष्ट कमल दल ब्रह्म निवासा ।। - वही, दोहा संख्या-२७८ ।

उल्टी चाल से सुषुम्ना मार्ग से होकर जब अष्टदल कमल में स्थित ब्रह्म में लीन हो जाता है तो यह उसकी मोक्षावस्था कहलाती है । सभी प्राणियों में जीव की स्थिति सामान्य है । मानव-शरीर सभी शरीरों से श्रेष्ट है क्योंकि इसी मानव-शरीर में ही जीव का ब्रह्म से संगम संभव है । अन्य योनियाँ तो केवल कर्म-भोग के निमित्त है । मानव-योनि जीव को मोक्ष के निमित्त केवल एक ही बार प्राप्त होता है । यदि मनुष्य इस शुभ अवसर को खो देता है तो उसे पुन: चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करना पड़ता है । ममता, माया, मोह आदि जीव के परम शत्रु हैं । इनके माध्यम से जीव को नरक का भोग करना पड़ता है ।

जगत

मीतादास जी ने जगत की परमार्थिक सत्ता को स्वीकार नहीं किया है । उनकी दृष्टि में यह नश्वर एवं दिवा-स्वप्न की भांति क्षण भंगुर है । यही कारण है कि चिर-शान्ति के लिये जगत के प्रति आसक्ति की भावना को निर्मूल करने की आवश्यकता पर उन्होंने बल दिया है ।

जगत का स्वरूप:- जगत का स्वरूप बहुत व्यापक है । देश और काल की सीमाओं के अन्तर्गत ही इसका निराकरण हुआ है । माया का सम्पूर्ण व्यापार क्षेत्र जगत ही है । नाना प्रकार के दैनिक कार्यकलापों का गट्ठर ही जगत का तात्विक स्वरूप है । जगत में होने वाले भ्रम, लोक-लाज, मान-मर्यादा आदि इसके ओछेपन के गुण को प्रकट करते हैं । यही कारण है कि मीतादास जी सदा इस दृश्य जगत से पलायन कर ब्रह्म के तात्विक जगत को प्राप्त करने का उपदेश देते हैं[१] ।

---

[१] (क) साँची साँची जग कहै, अन्तर कवन काम ।
साँच दीनता जहाँ दवै, तुरत मिले तेहि राम ।।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-११२८ ।

(ख) जिनका साँची लव परै, जग लागै तेहि फीक ।
मीता मीठी भक्ति है, और नहीं अस मीठ ।।
- वही, दोहा संख्या- ६३० ।

सारे जगत तत्वों का निर्माण पंच तत्व से हुआ है । जगत में व्यवस्थित सारे पिण्डों का निर्माण इन पांचो तत्वों को माना गया है । यही कारण है कि प्रत्येक पिण्ड समय-समय पर इन पांचों तत्वों से उत्पन्न और उसी में विलीन हो जाते हैं।[1]

जगत का सृष्टा:- जगत का सृष्टा कोई साधारण पुरुष नहीं बल्कि अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक परब्रह्म है । उसी ने आदि ज्योति, त्रिदेव की रचना करने के पश्चात् दृश्य जगत के सूर्य, चन्द्र, समुद्र, पहाड़ आदि का निर्माण किया है । कालान्तर में इच्छा होने पर वही इन सबको समेट कर एक ही ब्रह्मतत्व में लीन कर देता है ।

माया

संत साहित्य में माया का विशिष्ट स्थान है । माया के प्रभाव में जीव ब्रह्म का संयोग नहीं हो पाता है । माया जीव ब्रह्म के मिलन में अवरोधक है । वह नित्य जीव के चारो ओर प्रहरी की भांति अपने नियंत्रण में रखती है ताकि दुर्व्यसनाओं से विरत होकर जीव ब्रह्ममय न हो जाय।[2] इसका

---

[1] (क) पांच तत्व और ब्रह्म ते नर नारी दोउ कीन्ह ।
संतन के दोउ एक ते जे आतम लव लीन्ह ।।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहासंख्या-२३६२।

(ख) नौ तो रकका तकका, जब सरजना तारा ।
धरती मण्डल ना हती ना समुद्र पहारा ।
आदि जोति ना हती, जिनते विस्तारा ।।
- वही, दोहा संख्या-२३६४ ।

[2] माया के पहरे रहे- को बढ़ि पारे जाय ।
-वही, दोहा संख्या-३६० ।

शासन सुर, नर, मुनि आदि सब पर है । माया का प्रभाव इतना प्रबल है कि पाप-पुण्य रूपी रस्सी से बंधे कर्म के भूले में सारा संसार भूलता रहता है । इसी कारण पाप-पुण्य कर्मों से बंधा हुआ जीव मायासम होकर भवसागर को पार नहीं कर पाता ।[1] माया का चातुर्य सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है । माया ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पर अपनी प्रबल शक्ति से आधिपत्य स्थापित कर लिया है । उसके माधुर्य से आकर्षित होकर जीव अपना अस्तित्व को खो देता है । माया के रूप माधुर्य में लिप्त जीव अन्त में विनाश के कगार पर पहुंचता है । माया का छलांग बार-बार उसे आकर्षित कर उसे महान कष्टों की ओर अग्रसर करता है । जीव की तृष्णा इतनी विचित्र है कि वह बार-बार भ्रमित होने पर भी माया के उन्माद में लिप्त होकर उसके क्षणिक माधुर्य की ओर ही दौड़ता है । माया का मधुर आकर्षण सुनहली नागिन से कम भयानक नहीं है क्योंकि नागिन का काटा हुआ जीव संभवतया उपचार से बच जाता है परन्तु माया से त्रस्त जीव नरक द्वार में जाने से कभी भी नहीं बच सकता । इसका नशा जीव को घुला-घुलाकर मारता है । इसके नयनों का क्षणिक संकेत ही जीव को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये पर्याप्त है ।[2] माया मात्र अकेली नहीं है उसके परिवार

---

[1] करम हिडोले जग परा पाप पुण्य दो डोर ।
माया बड़ भुलावई, सुफसके वा छोर ।।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या- १६११ ।

[2] जोरा जोर किया दुनिया में माया बड़ी सयानी रे ।
मोहित के नाके ले जवियें, हम येहि के गति जानी रे ।
कुछ बाते हमहूं किन्ही राखा येहि का न्यारा रे ।
संग न सोई गरे ना बांधी मोहइ ज्ञातन मारा रे ।
नागिन डसे तो मंत्र उतारे, येहु डस उतरत नाही रे ।
बड़ अभागी जहां हंसि बैठे, भुदवा रहे सुभागी रे ।
कहे मीता माया का कहरा, हरि का सुमिरो प्रानी रे ।
-वही, पद संख्या- १६४६ ।

भी है । काम और क्रोध इसके दो सगे भाई हैं । इनके यहाँ सदा यम का निमंत्रण रहता है जिसके परिणामस्वरूप जीव अधोगति प्राप्त करता है । ये काम-क्रोध जीव और ब्रह्म के संयोग में दीवार बन जाते हैं । दोनों एक दूसरे से बढ़कर जीव के लिये हानिकारक हैं । इन दोनों का अखण्ड साम्राज्य ब्रह्माण्ड पर छाया हुआ है । ब्रह्मा, विष्णु और शिव को इसने नाच नचाया है । रामचन्द्र और कृष्ण जैसे अवतारवादी भी इसके मधुर आकर्षण के जाल में फंसने से बच न सके । केवल संत पुरुष ही इसके प्रभाव क्षेत्र से बाहर है[1] । सांसारिक सुख की नश्वरता माया का क्षणिक माधुर्य है । माया का सांसारिक लिप्सा पुंजित ऐसा विष है जो मनुष्य को मारकर मुक्त करने के बजाय जीवन देकर जीव को नाना प्रकार के कष्टों से प्रताड़ित करता रहता है । इसका सुख लौकिक और क्षणिक है जो दिवास्वप्न की भांति शीघ्र ही विनाशवान है । माया ब्रह्म की दासी है । माया की ओट से ब्रह्म सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का निर्धारण करता है । माया जनित आवरण के कारण जीव स्वयं को भूल जाता है । सम्पूर्ण ब्रह्म त्रिगुणों (सत, रज, तम) से व्याप्त है[2] । माया ही सगुण धारा में

---

[1] मारू रे मारू जाने नहि पावे, काम क्रोध दोनों भइया रे ।
ई जमु माही जमु इन माही, येहि बड़े दुख दइया रे ।
येहि हरिजी सो अन्तर डारे, येई नरक ले जइया रे ।
माया मोह के येई दो भइया, सबे बराबर खइया रे ।
शिव ब्रह्मादिक इन्हहि लूटे, इन्हहि विष्णु कन्हैया रे ।
रामचन्द्र सुर नर मुनि लूटे, सन्त बचे गुरु बढ़िया रे ।
सन्त की सरि कोउ नाहिं, रामदास जिन पइया रे ।
सन्तन सेई पार भामीता, जम की जाल कटइया रे ।।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, पद संख्या- १६५० ।

[2] त्यागो गरब गुमान तजो चतुराई हो ।
छाड़ो मलिन विकार, मिले रघुराई हो ।
पांच सखिन के बीच ता दलमसि जैहों हो ।
रहिहें न ठौर ठिकान भरम बहु मरि हो हो ।
यह माया विष बारि, सपन सुख जैसा हो ।
दिवा बारि का सुख, अन्त दुख देवा हो ।
या माया पर पंचित, बहुत डोलावे हो ।
इन्हे चिन्ह जा जाई, ता मंगल गावे हो ।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, पद संख्या- १६५१

वर्णित अवतारवाद का कारण है । बाजीगर ब्रह्म माया के माध्यम से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को बन्दर की भांति विभिन्न नाट्य प्रस्तुत करने के लिये नाना प्रकार की पृष्ठभूमि तैयार करता है।[1] कहीं पर यह राम और रावण बनकर अपने गुणों को युद्ध की विभिषिका का रूप प्रदान करता है तो कहीं कंस और कृष्ण बनकर पाप-पुण्य कर्मों से फल की अभिव्यक्ति करता है । कहीं यह नरसिंह रूप धारण करके हरिणी-कश्यप और प्रह्लाद के रूपक से पुण्य का पाप पर विजय की उद्घोषणा करती है तो कभी वामन अवतार के रूप में अभिमान के रूपक बलि का गर्व विदीप्त करती है । यह सम्पूर्ण संसार ही इसके व्यापार में अपने अस्तित्व को खो बैठता है।[2]

---

[1] देख बाजीगर पेखन लाया ---------- ।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, पद संख्या- ७०१ ।

[2] (क) राम न मारा रावना, ना उन सीता ब्याही ।
राकन रामचन्द दोनों माया, पुरुष जानत नाही ।
(ख) नरसिंह रूप माया धरा, साहब अज्ञा कीन्ह ।
हिरनाकुश का उदर विदारा, प्रह्लादे रक्षा कीन्ह ।।
-वही, दोहा संख्या- ७६६ ।
(ग) परम पुरुष नहीं कैसे मारा, ना उन रूकिमनी ब्याही ।
कान्हा कंसा दोनों माया, लख भिरव गुन आहीं ।।
-वही, दोहा संख्या- ८६३ ।
(घ) बावन ह्वै के माया बांधी, अज्ञा कीन्ह गोसाई ।
गये रसातल दान दै, बली, मारी गरब बड़ाई ।।
-वही, दोहा संख्या- ८६४ ।

च तु र्थ प्र क र ण

भाव - चित्रण

भक्ति

भक्ति का स्वरूप बहुत ही व्यापक है । विभिन्न संतों ने इसकी व्याख्या विशद रूप से की है । मीता साहब की भक्ति बाह्यान्तर या मूर्तिपूजा का अंग नहीं, उनकी भक्ति मन-मन्दिर में अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक की दिव्य प्रतिमूर्ति की अन्तर्मुखी साधना का सजीव रूप है । इस आभ्यान्तर की साधना परक भक्ति में ही उन्हें अपने इष्ट की उपलब्धि होती है ।[1]

बाह्य जगत में ईश्वर के स्वरूप का अन्वेषण करना अपने आपको भ्रम में डालना है । अतएव उन्होंने अपने मन-मन्दिर में ईश्वर के तात्विक स्वरूप को लक्ष्य बनाकर जीवन के सत्य को परखने का प्रयास किया है ।[2] बाह्यान्तर की भक्ति में पाखण्ड एवं आडम्बरों की गहरी परत चढ़ी होती है, जिसमें भक्त भ्रमित होकर स्वअस्तित्व को खो बैठता है । भ्रम का आवरण इतना व्यापक होता है कि जीव वास्तविक तत्व (राम) को भूलकर व्यर्थ के आडम्बरों में ही भक्ति का आलम्बन ढूढ़ने लगता है । वास्तव में आडम्बरों में उसे निराशा के सिवा कुछ हाथ नहीं आता, जब तक अपने घट में स्थित परमतत्व के भक्ति की अनुभूति उसे नहीं होती । मीता साहब ने इसी प्रकार की बाह्य जगत की थोथी भक्ति साधना को त्यागकर आन्तरिक भक्ति भाव की प्रधानता पर बल दिया है ।[3]

---

[1] पार ब्रह्म नैनन लखै, सब देवन के देव ।
मीता पारस पइया करै न पाहन सेव ।।
-मीतादास, संतोंग्रंथ, दोहा संख्या- ५२६ ।

[2] हरि हीरा हिरदै बसै का खोजे बड़ि दूरि ।
कह मीता सतगुरु बिना, मुंह में परिहैं धूरि ।।
- वही, दोहा संख्या- ५२७ ।

[3] पाखण्डी का गुरु करै पाहन का करै देव ।
राम बिसारै संतै निंदै अंध न जानै भेव ।।
- वही, दोहा संख्या-५२७ ।

राम एवं उनकी भक्ति की प्राप्ति का साधन वाह्याडम्बर नहीं बल्कि दैन्य तथा विनम्रता है । सत्य के मार्ग पर अग्रसर होने पर जीव को ईश्वर भक्ति का स्वरूप सहज ही प्राप्त हो जाता है । मीता साहब की भक्ति वास्तव में सत्य मार्ग पर दैन्य एवं विनम्रता से परिपूर्ण जीव के ईश्वर प्राप्ति का सुगम साधन है ।[1] ईश्वर की सच्ची भक्ति की अनुभूति हो जाने पर यह संसार निस्सार लगता है । भक्ति की तुलना में सम्पूर्ण लौकिक सुख हेय बन जाता है । भक्ति के मार्ग पर चलने वाला जीव ईश्वर के उस प्रेम का रसास्वादन कर लेता है जिसकी पूर्ति इस नश्वर संसार में अन्यत्र संभव नहीं है । भक्ति के रस में डूबता उतराता जीव उस भ्रमर सा बन जाता है जो कमल क्रोड़ के मकरंद का पान करने के पश्चात् करील के कड़वे फल के रस को फूटी आंख से भी देखना पसंद नहीं करता ।[2] भक्ति के मार्ग में प्रेम का विशेष महत्व है । भक्ति प्रदर्शन की नहीं अपितु साधना की वस्तु है । ईश्वर की साधना उसके सच्चे प्रेम का द्योतक है । ईश्वर प्रेम का दूसरा रूप है । कृत्रिम प्रेम और भक्ति एक ही नदी के दो किनारे हैं, जो दूर से तो मिलते हुये प्रतीत होते हैं लेकिन उनका मिलन वास्तविकता से परे है । जब तक भक्ति और प्रेम का उचित समन्वय नहीं होता, तब तक ईश्वर की भक्ति टेढ़ी खीर है क्योंकि ईश्वर भक्ति और प्रेम के माध्यम से प्राप्य है ।[3]

---

[1] साँच दीनता जहां हुवै, तहां मिलै तेहि राम ।
साँची-साँची जग कहै, अन्तर क्वनै काम ।।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-५५१ ।

[2] जिनका साँची लव परे जग लागे तेहि फीक ।
मीता मीठी भगति है और नाहिं अस मीठ ।।
- वही, दोहा संख्या- ५५६ ।

[3] ज्यों बाजीगर पेखना यों झूठे का प्रेम ।
ना हरि मिले ना मन बंधा ताके प्रेम न नेम ।।
- वही, दोहा संख्या- ५६१ ।

जिस जीव के भीतर सच्ची भक्ति या प्रेम विद्यमान है उसे ईश्वर का साक्षात्कार स्वतः हो जाता है । साधना-भक्ति के अभाव में न तो ईश्वर की अनुभूति होती है न तो उसका पथ-प्रदर्शन करने वाले सच्चे गुरु की प्राप्ति हो पाती है । मेहर (खेचरी मुद्रा) साक्षी स्वरूप वह मुद्रा (साधना) है जिसकी पूर्ति पर ही जीव ईश्वर दर्शन की ओर उन्मुख होता है [1] ।

भीखा साहब भक्ति को मानव जीवन की श्रेष्ठतम पूंजी मानते हैं क्योंकि ईश्वर भक्ति में, इस पूंजी का ही विशेष महत्व है । ईश्वरी सत्ता में भक्ति और साधना की पूंजी से जीवन-मुक्ति का व्यापार निश्चित होता है । वहां पर दृश्य जगत की प्रमाणिक पूंजी निरर्थक है, क्योंकि वहां काया के सुख का कोई मूल्य नहीं । आत्मोत्कर्ष की कसौटी पर ही जीव के भक्ति का मापदण्ड निर्धारित होता है [2] ।

भक्ति का मार्ग बहुत ही सरल है । अभिमान, दंभ, पाखण्ड जीव को स्वमार्ग से विचलित कर देते हैं । अभिमान ही जीव के सभी कष्टों का मूल है [3] ।

---

[1] जेहि बन्दे के साँच है अल्लाह तहाँ हुजूर ।
मेहर बिना ना पावई मेहरवार वा पीर ।।
— भीखादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-६०६ ।

[2] तन का कौन गुमान है, का हीरा का लाल ।
कह भीखा हरि भगति बिनु सबै हवै कंगाल ।।
— वही, दोहा संख्या- ५८१ ।

[3] निगुर जाति हरि दास ते कुमति जा निगुरु ज्ञान ।
सीढ जाति सन्मान बिनु भगति जाति अभिमान ।।
— वही, दोहा संख्या- ५६० ।

भक्ति के प्रेरणा स्रोत:

सत्-संग भगवद्भक्ति के प्रेरणा स्रोत हैं । संत संग के अभाव में भक्ति अप्राप्य है । सत् संगति जीव को भवसागर पार होने का सरल मार्ग है । उसके अभाव में जीव नाना प्रकार की धूर्तता और चातुर्य के बंधन में बंधा रहता है । सत्संगति ही जीव को इस जाल से मुक्त कराती है । इसके अभाव में सांसारिकता उसे भवसागर में डुबा-डुबा मारती है[1] । संतों की संगति का त्याग जीव के लिये दुसह दुख का कारण बन जाता है क्योंकि इसकी अनुपस्थिति में कुसंगति जीव को अपना दास बना लेती है । कुसंगति, भ्रम, पाखण्ड आदि का प्रारूप है । इसके आश्रय से जीव को आशा के विपरीत फल की प्राप्ति होती है । जीव के ऊपर इसका प्रभाव अत्यन्त हानिकारक होता है । परिणाम स्वरूप वह संतों को अपना शत्रु और पाखण्डियों को अपना मित्र मान बैठता है । उसका यह भ्रम उसे ले डूबता है[2] । सत्संगति की तुलना में बाह्य जगत के सम्पूर्ण क्रिया कलापों की उपादेयता सारहीन है । पौराणिक भक्ति के साधन तीर्थ, व्रत, यम-नियम, वेद-पुराणों का श्रवण आदि केवल लौकिक कर्मकाण्ड के प्रारूप हैं । इनके माध्यम से जीव कभी भी अपने लक्ष्य को नहीं प्राप्त कर सकता । सत्संगति ही काल भय से मुक्त होने का सर्वोपरि साधन है अन्यथा बाह्याचार के कठोर नियम जीव को यम द्वार पर लाकर खड़ा कर देते हैं[3] । सत्संगति घट के

---

[1] किये कपट चुराइयां रहे मैल लपटाय ।
संतन का चिन्हे नाहिं भव में गोता खाय ।।
- मीतादास, हस्तलिखित ग्रंथ, दोहा संख्या- ६६१ ।

[2] हरिदासन सों वैर मानहिं पाखण्डी का भौरा ।
मुकति की आसा करते हैं नर को नाहीं ठौरा ।।
- वही, दोहा संख्या- २७५४ ।

[3] तीरथ ब्रत तरै ना कोई ना सुनि वेद पुरान ।
कह मीता इक संत संगति बिनु जमपुर होय पयान ।।
- वही, दोहा संख्या- १६२८ ।

भीतर स्थित ब्रह्म से साक्षात्कार की एक कड़ी है । इस कड़ी के टूट जाने पर आभ्यान्तर के ब्रह्म के भेद का ज्ञान असंभव है । सन्यास लेकर सतसंगति की उपेक्षा करके वन में ईश्वर तत्व की खोज करना नितान्त भ्रामक है क्योंकि ईश्वर संतों की वचन-वाणी के अनुसार घट-घट में व्याप्त है । उसकी उपलब्धि वानप्रस्थ मार्ग से संभव नहीं । वन में तो केवल वृक्षों की उपलब्धि हो सकती है ईश्वर की नहीं [1] ।

भीखा साहब भक्ति की प्रेरणा का स्रोत दैन्यता अथवा विनम्रता मानते हैं । दैन्यता (दैन्यभाव) के अभाव में ईश्वरत्व की प्राप्ति दुर्लभ है । कृत्रिम विनम्रता भी जीव के लक्ष्य को पूरा नहीं कर सकती क्योंकि इससे बाह्य और अन्तर की स्थिति स्पष्ट नहीं हो पाती । बाह्य दृष्टि में विनम्र पर अन्तर में कलुषित मन जीव को सच्चे दैन्य भावों से ओतप्रोत करने में सक्षम नहीं है । विनम्र मनुष्य के आचरण में मन तथा कर्म की एकरूपता होती है । मन में दुर्विचार एवं दृश्य जगत के लिये सद् व्यवहार का नाटक रचना सच्चे भक्त के व्यवहार का परिचायक नहीं है [2] ।

सच्ची दीनता, विनम्रता भक्ति प्राप्ति के प्रमुख अंग हैं । इनका जीव के मन में स्थान पा जाना साधारण विषय नहीं है । विनम्रता शरीर की नहीं अपितु आत्मा की वस्तु है क्योंकि इसका प्रभाव आत्मानुभूति पर निर्भर करता है । दूसरे के समक्ष सिर झुकाकर दैन्य प्रदर्शन करना केवल बाह्याचार है । पत्थर के समान हृदय लेकर मृदुभाषी होने का स्वांग रचना भी बाह्याचार ही है । सच्चा

---

[1] हीरा काया भीतरे संगति करै सो लेय ।
कह भीखा वन का फिरै वन मे विरछे होय ।।
-भीखादास, हस्तलिखित ग्रंथ, दोहा संख्या-२१६४ ।

[2] दीन के कुमति कबहुं न होई । तरवां साँच बसोई ।।
- वही, दोहा संख्या-१७०८ ।

विनयी इन वाह्याचारों के दूर रहते हुये मन को काम, क्रोध, मद, लोभ आदि का हनन करके वाह्याभ्यान्तर दोनों रूपों से अपने दैन्य भाव को प्रदर्शित करता है। उसका इस प्रकार से समरूप दैन्य भाव ही ईश्वरभक्ति का साधना पक्ष मार्ग है।[१]

मीता साहब संसार की निस्सारता को त्यागकर विनम्र मनुष्य के मन में ही भक्ति के बीजारोपण का मूल मानते हैं। क्योंकि दीनता का बीज ही कालान्तर में प्रेम-स्नेह से अभि सिंचित होकर भक्ति-भाव के रूप में पल्लवित एवं पुष्पित होता है। इस दैन्य वृक्ष को अहं की आंधी हिला नहीं सकती है। बड़े-बड़े राजा-महराजा, काजी-फकीर आदि को भक्ति की उपलब्धि दैन्य भाव प्रदर्शन से ही संभव हो सकी। भक्त का मापदण्ड उसका कुलीन होना नहीं अपितु उसके अन्दर दैन्य-भावों की प्रचुरता है।[२] भवसागर से जीवन मुक्ति का मार्ग भक्ति है और भक्ति की प्राप्ति हेतु दैन्य-भाव परमतत्व है। दैन्य-भाव प्रेम प्रदर्शन करके ईश्वरत्व की प्राप्ति करने वाले पुरुष संसार में विरले ही हैं। विनम्रता से अपरम्पार ब्रह्म का अगम रूप सुगम बन जाता है।[३]

---

[१] दीनता भाव बड़े तें होई। धना धन्य घट सोई।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-१२१३।

[२] दीन हो तबु तबु लोक बड़ाई। येहि सरिसै कुछ नाई।
जो लग मानि गुमान रे बौरे, तौ लग हरि ना पाई।
पात शाह बहु उमरा सैयूयद, राजा रंक कहुताई।
निहुर चलै सो डारे पैठे ठाढ़े कहां समाई।
कौन कुलिन धना रैदासा, जेहि लिन्हा अपनाई।
बाजपेई जम डारे लूटे, सदना लिह बनाई।
भली भई जन हाँसी कई, मीता जन पे आई।
जगत बड़ाई जियरा कांपै, बाढ़े मीर लुटाई।
-वही, दोहा संख्या- ८८७।

[३] संत मता है अगम अपारा कोटिन मा कोइ पाई।
कह मीता बिन दीन गरीबी, हाथ न कबहुं आई।।
-वही, दोहा संख्या- ८८९ ।

भक्त के लिये विनम्रता की ग्राह्यता अपरिहार्य है । दैन्यता के अभाव में इन्द्रियाँ अपने अहं स्वरूप के त्यागने में असमर्थ रहती हैं जिससे जीव सदा लौकिक जगत के व्यापार में लिप्त रहता है । नाना प्रकार के छापा-तिलक भक्ति के बाह्य साधनों को तिलांजलि देकर दैन्य भाव को अंगीकार करने से ही ईश्वरत्व की प्राप्ति हो पाती है।[१] विनम्रता से जीव को अपने परम तत्व की उपलब्धि हो जाती है । जीव में विनम्रता का गुण आ जाने पर गुरु ज्ञान के माध्यम से शरीर के पूर्व-प्रदेश का निवासी जीव पश्चिम-निवासी ब्रह्म से साक्षात्कार करने में सक्षम हो जाता है अन्यथा माया की मायावी प्रवृत्तियाँ उसको उसी पूर्व-प्रदेश में रहने को बाध्य कर देती हैं । विनम्रता के अभाव में जीव पूर्व-प्रदेश की सीमाओं का अतिक्रमण कर सकने में स्वयं को असमर्थ पाता है।[२]

भक्ति के अन्य प्रेरणा स्रोत प्रेम और विश्वास भी हैं । संशय एवं संदेह-ग्रस्त जीव को भक्ति मार्ग से विचलित कर देते हैं । सन्तों के साथ प्रेम और दृढ़ विश्वास भक्ति के रीढ़ हैं । संतों के प्रेम पर अपना सर्वस्व बलिदान करने पर ही भक्ति के दुर्ग की दीवार खड़ी होती है । साधना के विभिन्न सोपानों को पार कर चुकने के पश्चात् भी संशय और शोक भक्त को उसके पद से पदच्युत कर देते हैं । अतः इसका निवारण भक्त का परम लक्ष्य माना जाता है । बिना

---

[१] भली दीनता सुनु सम पाई । तेहि तें गुरु कीन्ह सहाई ।।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-६०१ ।

[२] भली गरीबी दीनता जो रहे दिलो बिच छाई हो ।
हरि का तुरत मिलावई, तब काल न घाले घाव हो ।
पूरब के रे पुरबिया रे और कछो ना माँगि ।
गरूभारूजो हवै रहै, तो तुरत न लागै बार हो ।
सतगुरु जिन्हे आपना हो, ताकी करै सहाय ।
काल अंश का ना छुवै, उँ बड़े विवेकी आय हो ।
सतगुरु की चरणों परे हो, बार बार बलि जाऊँ ।
कही छोरि मीत की, व तो जस गावत घर जाऊँ हो ।।
- वही, पद संख्या-५०९ ।

दृढ़ विश्वास के सन्देहास्पद स्थिति में भक्ति की कल्पना असंभव है । भक्ति के अभाव में तात्विक अनुभूति एक दिवास्वप्न है ।[1]

भक्ति स्रोतों में प्रेम-अहिंसा को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है । मीता साहब ने भक्ति साधना में हिंसा को कहीं भी स्थान नहीं दिया है । जीव को मारकर ईश्वर को संतुष्ट करने का उपक्रम वास्तव में भक्ति का सही मार्ग नहीं है । ईश्वर घट-घट वासी है । दिन को रोजा रहना एवं रात्रि में जीव को जबह करना भक्ति के अंग नहीं हैं । जीव को जबह करने वाला नरक गामी होता है ।[2]

भक्ति के साधन:

मनीषियों ने ईश्वर भक्ति के विभिन्न साधन प्रदर्शित किये हैं । महर्षि व्यास ने स्कन्द पुराण के रेवाखण्ड में व्रत-पूजा के महत्व को बहुत ही विस्तार से समझाया है । ईश्वर भक्ति हेतु वर्णित विधि से सत्यनारायण जी का व्रत करने व कथा-श्रवण मात्र से ही मनुष्य माया मोहरूपी बंधन से मुक्त हो जाता है । सम्पूर्ण मर्त्यलोक एवं स्वर्गलोक व्रत के फलस्वरूप प्राप्य पुण्य फल अन्य विधि से दुर्लभ है । भगवान सत्यनारायण जी का व्रत विधान पूर्वक करने से मनोवांछित फल की प्राप्ति होती है जिससे मनुष्य इस संसार में सब सुखों को भोगते हुये जन्म-जन्मान्तर में मोक्ष को प्राप्त होता है ।[3]

---

[1] घर ही मा हरि मिलै रे बौरे बन का जाह गंवारा रे ।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-१२१७।

[2] पंडित या विधि भगति न होई । , वही, दोहा संख्या-१२१८ ।

[3] स्कन्द पुराणे रेवा खण्डे - १५ ।

सत्यनारायण जी का व्रत दुःख शोक नाशक व धनधान्य वर्द्धक व्रत है। इस व्रत से सौभाग्य वृद्धि सन्तानोत्पत्ति तथा सर्वत्र विजय श्री प्राप्त होती है।[1]

गीता में भक्ति का प्रमुख साधन `प्रेम` बताया गया है। जो भक्त निष्काम भाव से पत्र, पुष्प, फल व जल प्रेमपूर्वक ईश्वर को अर्पित करता है उसे वे प्रेमपूर्वक ग्रहण करते हैं।[2] प्रायः सभी सगुणोपासकों ने व्रत पूजा नियम आदि को भक्ति का साधन बताया है। तुलसीदास जी ने ब्राह्मण पूजा को परम्परागत रूप से भक्ति साधन का एक अंग स्वीकार किया है।[3] भीखा साहब ने परम्परागत वाह्य पूजा व्रत तीर्थ आदि साधनों का विरोध किया है। शरीर पर गर्म शलाखों द्वारा चिह्न अंकित कराना, मूड़ मुड़ाना, तीर्थाटन करना आदि भक्ति के साधन के रूप में स्वीकार नहीं किया है क्योंकि इससे मन की वहिर्मुखी वृत्ति अन्तर्मुखी नहीं हो पाती। उसकी चंचल प्रवृत्तियों पर इन वाह्य क्रियाओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।[4] योग, जप, तप, माला, तीर्थ, व्रत, दान भी भक्ति का माध्यम नहीं है। सतसंगति ही भक्ति का परम मार्ग है। सत् संगति ही मोक्ष प्राप्ति का सरल मार्ग है।[5] भीखा साहब ने काशी, उड़ीसा (भुवनेश्वर), अयोध्या, मथुरा, द्वारिकाआदि वाह्य तीर्थ स्थानों की महत्वा को स्वीकार नहीं किया है। प्रचलित सगुण मत में प्रचलित भक्ति के साधन कहे गये हैं।

---

[1] स्कन्दपुराणे रेवा खण्डे, ४०।२४।

[2] गीता, ९।२६।

[3] पूजे विप्र सकल गुण हीना, रामचरितमानस।

[4] देह दगाह द्वारिका गोकुल पड़ गये फफुका।
मूड़ मुड़ाये भाड़ हो आये मन तैसे का तैसा ॥
-भीखादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-३३७८।

[5] कोउ करै तीरथ कोउ करै दानि, कोउ तप जोग वेद लपटाना।
कोउ करै माला फेरन लागा, लोगन राम खिलौना जाना ॥
- वही, दोहा संख्या-७६७।

बिना योग के बाह्य तीर्थों में कृत्रिम वेश धारण करना भी सच्ची भक्ति के साधन नहीं है । गृहस्थाश्रम में योग की युक्ति के माध्यम से शुभाशुभ कर्मों का परित्याग ही भक्ति मार्ग के साधन है जिससे जीव आवागमन के मार्ग से मुक्त हो जाता है[१] ।

भीखा साहब विभिन्न प्रकार के व्रत संयम नियम, उपवास आदि को भक्ति का साधन न मानकर केवल एक ही व्रत (एकादशी व्रत) को भक्ति का साधन स्वीकार किया है परन्तु वह एकादशी व्रत सगुण भक्ति की परम्परा की प्रचलित एकादशी तिथि का व्रत नहीं वरन् चंचल मन को स्थिर करके मन को जीतने का व्रत है । इस एकादशी व्रत के भेद को समझने वाला ही मोक्ष को प्राप्त होता है[२] ।

सगुण धारा की भक्ति साधना में अवतारवाद को प्रमुख स्थान दिया गया है । भीखा साहब ने सगुण मार्गी मान्यताओं को ध्वस्त करते हुये अवतारवाद को भक्ति का साधन नहीं माना है[३] । 'कब धरिया अवतारि' और 'दसरथ जाया ऐसा बेटा, माया नार लपेटा' इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं । उपरोक्त

---

[१]कासी उड़ीसा अवधि मथुरा द्वारिका के लोग रे ।
काल भोगिया सबै पाये, बिना जुगति जोग रे ।
का भये जटा रखाइयारे, किये प्रेत जस भेष रे ।
परे दिल्ली भरम भूले उगा सगरा देस रे ।
जोगु जुगता गृही माहीं धरत नाहीं भेष रे ।
निरबान पदवी हाथ तिनके अगम उनका लोक रे ।
सुभ असुभ दोऊ करम फांसी, हाथ अपने देत रे ।
दास भीखा भये सखिया मानी न कोई लेत रे ।
-भीखादास, ह०लि०ग्रंथ, पद संख्या-११०३ ।

[२]एक व्रत एकादसी रे मन चंचल कर थीर । , वही, दोहा संख्या-११०७ ।

[३]भीखादास, ह०लि०ग्रंथ, पद संख्या-१११६ ।

तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि मीता साहब के भक्ति के साधन सगुण भक्ति के साधनों से भिन्न था । फिर भी मीता साहब ने भक्ति के साधनों में संत, गुरु, वैराग्य, योग एवं मुक्ति के महत्व को स्वीकार किया है ।

संत

संतों का बहुत ही विशद वर्णन मीता साहब की वचन-वाणी में परिलक्षित होता है । संत और साधु दोनों परस्पर पर्याय हैं । संतों का उद्भव और विकास गृह में ही होता है । जीव गृहस्थाश्रमों का पालन करते हुये संत श्रेणी में गिना जा सकता है । संत लौकिक विभिन्न पाखण्डों में अपना समय व्यर्थ नहीं व्यतीत करते हैं । वे गृहस्थाश्रम के नियमों का पालन करते हुये अपना जीविकोपार्जन करते हैं।[1]

संत सामान्य जनों से उच्च स्तर के होते हैं । चिंता, राग, द्वेष आदि उन्हें उनके पद से विचलित नहीं कर सकते । गृहस्थाश्रम में रहते हुये भी उनका जीवन सांसारिक कर्मों के दुख सुख से प्रभावित नहीं होता ।[2]

संत प्रत्येक प्राणी के साथ यथायोग्य व्यवहार करते हैं । जहां एक ओर विद्वानों के साथ तर्कयुक्त वाद-विवाद में मन-मालिन्य को त्यागकर प्रत्येक

---

[1] कथो भेष पाखण्ड है इनमें सन्त न होय ।
संत भये ते गृह भये । मीता जाने लोय ।।
संत साह गृह माहि भये किसी के है साथ ।
कह मीता है वेष का सतगुरु ना पतियाय ।।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, पद संख्या- १३६३ ।

[2] संतन का ना व्यापई फिकिर राग औ द्वेष ।
मीता ते गिरही रहे पै नाहीं है भेष ।।, वही, दोहा संख्या-२२६ ।

प्रश्नों का उत्तर सरल ढंग से प्रस्तुत करते हैं । वहां दूसरी और मूर्खों की मूर्खता को शान्त भाव से सहनकर अपने मन में क्रोध को तनिक भी स्थान नहीं देते हैं ।[1]

संतों की सांसारिकता का आकर्षण उनके पथ से विचलित नहीं कर सकता । नारी की कमनीयता और नर की कठोरता में उन्हें कोई अन्तर नहीं दिखाई पड़ता । नर-नारी की उन्हें तात्त्विक अनुभूति होती है क्योंकि उनके निर्माणपरक तत्वों की विवेचना ही संतों का वर्ण्य विषय होता है । पंच तत्व और ब्रह्म के संयोग से निर्मित नर-नारी की अभिन्नता ही उनके दर्शन का एक अंग होता है । ऐसे संत सदा आभ्यान्तर की साधना में तल्लीन रहते हैं ।[2]

भक्ति साधना ही संतों का लक्ष्य होता है । मठों की स्थापना नहीं । कालान्तर में प्रसिद्ध संतों के नाम पर जीविकोपार्जन हेतु मठों की स्थापना भले ही कर ली जाय लेकिन उस मठ से संत का दार्शनिक महत्त्व कुछ भी नहीं होता है । कबीर, नानक, धर्मदास, नामदेव व दादु आदि संत इसके उदाहरण हैं । इन संतों ने कभी मठ परम्परा का उपदेश नहीं किया । परन्तु आज भी इनके नाम लाखों मठ वर्तमान हैं ।[3] किसी विशेष परिस्थिति से छुटकारा देने वाला व्यक्ति ही समाज में संत की उपाधि पा जाता है । समाज की यह अपनी

---

[1] मूरुख सों चुप रहे, सुज्जन सों हंस बोल ।
संतो यही विचार है, मीता सब्द अमोल ।।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-८५७ ।

[2] पांच तत्व और ब्रह्म है नर-नारी दोउ कीन ।
संतन के दोउ एक ते वे आतम लवलीन ।।
- वही, दोहा संख्या-२३९५ ।

[3] दास कबीरा नानिक नाम । धरमदास औ दादू ।
इन संतन नाहिं पंथ चलावा झूठे करहिं वादू ।।
- वही, दोहा संख्या- १५१३ ।

व्यक्तिगत कमजोरी है। वास्तव में संत वही है जिसकी उपलब्धि से जीव का आदि अंत सब सुधर जाय।[1]

संतभविष्य दृष्टा होता है। वह भूत भविष्य और वर्तमान उसकी दृष्टि से परे नहीं होता। उसकी वाणी कभी निष्फल नहीं होती। वह अपनी वचन-वाणी के माध्यम से बहुतों को भगवद् भक्ति की प्रेरणा से भवसागर से पार करा सकता है। वह तत्वों की मौलिक व्याख्या में सदा संलग्न रहता है।[2]

गुरु

संत मत में गुरु की महिमा अपरम्पार बतायी गयी है। कबीर दास जी ने तो गुरु को ईश्वर से भी उच्च स्थान दिया है।[3] तुलसीदास जी के गुरु का स्तर ईश्वर तुल्य है।[4] गीता में ब्रह्मचर्य और अहिंसा पूजन और पवित्रता रूपी शारीरिक तप कुछ और नहीं बल्कि देवता, ब्राह्मण और गुरु तथा ज्ञानी का रूप है।[5] गोरखनाथ जी सतगुरु को सच्चे शिष्य के कुल की

---

[1] डिठियारा अगुवा करौ जा ते चिन्हौ संत।
संत मिलै तै सब बनै, अबहुं तबहुं अंत।।
-मीतादास, ह०लि०ग्रं०, दोहा संख्या- २१०१।

[2] मीता मूढे पाइयां हरि के रहे हजूर।
बानी बूझै संत की तरना नाहीं दूर।।, वही, दोहा संख्या-२१०३।

[3] गुरु गोविन्द दोउ खड़े काके लागौं पाय।
बलिहारी गुरु आपनो गोविन्द दियो बताया।-कबीर -

[4] बन्दौ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूपहरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रविकर निकर।।- तुलसीदास

[5] गीता, १७।१४।

सुरक्षा को परम साधन मानते हैं । सतगुरु के अभाव में शिष्य का सारा योग रोग में बदल जाता है । उसकी साधना माया का शिकार बन जाती है । परिपक्व गुरु द्वारा दीक्षित योग शरीर के लिये वैसा ही है जैसे अमृत से सिंचित रेड़ी का पेड़ ।[1]

मीता साहब ने भी संत मत में चिर प्रचलित गुरु की अनन्त महिमा को स्वीकार किया है । शिष्य को साधना में दीक्षित करने का हर संभव प्रयास करते हैं उनके अथक प्रयास के बावजूद भी यदि कोई शिष्य साधना के गहन तत्वों को अंगीकार न करके वाह्याचार की विधियों में अपने को भुलाकर अपने चातुर्य एवं चोर वृत्ति को निर्मूल नहीं करता है । वह अवश्य ही नरक का भागी बनता है ।[2] गुरु कृपा के अभाव में घट-घट वासी ईश्वर का दर्शन जीव को सुलभ नहीं । गुरु ज्ञान के अभाव में ईश्वरत्व की प्राप्ति की लालसा रखने वाले को निराशा तथा अपमान को सहन करना पड़ता है ।[3]

यह संसार भवसागर है । सद्गुरु के बिना इसका पार पाना असंभव है । सद्गुरु भवसागर से पार उतारने के निमित्त जीव को केवट बन जाते हैं । क्योंकि बिना उनके संसार में और कोई नहीं है जो उसे भवसागर से पार उतार सके ।[4]

---

[1] डा० पिताम्बरदत्त बड़थ्वाल, गोरखबानी, ४।२१।२२ ।

[2] सतगुरु बिनु रामै कहै मुख में परिहै धूरि ।
कह मीता ते नरक है पै सतगुरु ते चोरि ।।
-मीतादास, ह०लि०ग्रं०, दोहा संख्या-७०६ ।

[3] हरि हीरा छिपाइे कहाँ का खोजे बड़ दूरि ।
कह मीता सतगुरु बिना मुंह मे परिहैं धूरि ।।
- वही, दोहा संख्या-2038 ।

[4] सतगुरु केवट संग ले अथाह देइ थहाय ।
कह मीता सबजै तरे या विधि पारै जाय ।।
- वही, दोहा संख्या-८२६ ।

वैराग्य

वैराग्य भक्ति के साधनों में से एक है । संसार की नश्वरता, राग-द्वेष और घृणा के संचरण से वैराग्य नामक प्रवृत्ति का अभ्युदय होता है । वैराग्य की अवस्था में सांसारिक विलासिता का परित्याग कर जीव उदासीन स्थिति को प्राप्त करना ही अपना परम लक्ष्य मानता है । उदासीनता या शून्य स्थिति मन की परम स्थिति है । यह बहुत ही परिश्रम और सौभाग्य से प्राप्त होती है । सतगुरु की कृपा के बिना भय-निराशा, ईर्ष्या, घृणा, क्रोध, राग, प्रेम, ममता आदि विकारों से मन उदासीन नहीं हो पाता । मन की उदासीन अवस्था आत्मा और परमात्मा के संबन्धों को सुदृढ़ करने का मार्ग प्रशस्त कर देती है । बिना वैराग्य के भक्ति और योग की प्राप्ति असंभव है । अतः वैराग्य भक्ति-योग का प्रमुख साधन है । वैराग्य का योग और भक्ति में महत्वपूर्ण स्थान है । योग एवं परमानन्द की प्राप्ति हेतु गौतम बुद्ध ने वैराग्य धारण किया था । राजा भर्तृहरि ने संसार की नश्वरता को ध्यान में रखकर ही भक्ति के निमित्त राज्य की विपुल ऐश्वर्य को त्यागकर वैराग्य का आलम्बन लिया था । सभी संतों ने काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि की निन्दा करते हुये जगत एवं शरीर को नश्वर एवं निस्सार बताया है । संसार के विषाद, भय, जीवन से त्रस्त होकर भक्ति की प्राप्ति होने में वैराग्य सफल भूमिका प्रस्तुत करता है ।

मीरा साहब का वैराग्य परम्परागत वैराग्य से कुछ अर्थों में भिन्न था । गृह का परित्याग करके सिर मुड़ाकर सांसारिकता में लीन कथित साधु वैरागी नहीं होता । इसके विपरीत गृहस्थ आश्रम का पालन करता हुआ इन्द्रिय निग्रही व्यक्ति ही वैरागी है । ऐसे व्यक्ति का ही वैराग्य सफल है । अन्य तो केवल बाह्य प्रदर्शक है[१] । वैराग्य के निमित्त गृहस्थाश्रम का परित्याग

---

[१] गृह ते उठी मूड़मुड़ाये नाम धरा वैरागी ।
कह मीरा वे पांचो मारे ते गिरही वैरागी ।।
-मीरादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-६३ ।

करके वन में रहना मात्र एक ढोंग है । शरीर में राख लगाना, सिर पर जटा रखना, भीख माँग कर वैरागी का स्वांग करना वास्तव में वैरागी या योगी के लक्षण नहीं है क्योंकि ऐसी योगियों का मन राम तत्व में नहीं अपितु जीविकोपार्जन के साधनों में रमता है । उक्त कथित योगी यद्यपि अपने आपको संसार से विरत मानकर अपने ढोंग का प्रसार करते हैं लेकिन उनका यह स्वांग उन्हीं के लिये नरक का द्वार प्रशस्त करता है ।[1]

कथित वैरागी बोलने से वैराग्य ले लेते हैं मुख के मौनव्रत को वे भ्रम से मन के मौन व्रत की संज्ञा देते हैं । ऐसे मौन व्रती से मुक्ति कोसों दूर भागती है । मन का मौन व्रत ही जीव को उसके लक्ष्य तक पहुंचा सकता है ।[2]

ज्ञान

ज्ञान भी भक्ति के प्रमुख साधनों में से एक है । बिना ज्ञान के भक्ति का मार्ग कंटकमय है भक्ति के निमित्त सभी यज्ञों में ज्ञान-यज्ञ सर्वश्रेष्ठ कहा गया है । सांसारिक वस्तुओं से सिद्ध होने वाले यज्ञ से ज्ञानरूपी यज्ञ श्रेष्ठ है । क्योंकि सम्पूर्ण कर्मों की ज्ञान में अभिव्यक्ति है ।[3] ज्ञान की महिमा अपरम्पार है । निकृष्ट पापी भी ज्ञानरूपी नौका द्वारा सभी पापों से विमुक्त हो

---

[1] छार लगावी देह मा जटा रखाइ सीस ।
कह मीता ई जोगिया माँग खाइ का भीख ।।
जहाँ जाइ तहं भस्म पसारा कैसे के जग छूटे ।
कह मीता पंडित रोजगारी जन्म बोहै धन लूटे ।।
-मीतादास, ह०लि०ग्रं०,पद संख्या- ८६२ ।

[2] मन का मौनी जो करै पावै पद निरबान ।
साकट मुट का मूंद बाक्त रा है जान ।।, वही, दोहा संख्या-८६३

[3] मीतादास, ह०लि०ग्रं०, ४।३३

जाता है।[1] ज्ञान रूपी अग्नि में सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं जैसे सामान्य अग्नि में ईंधन। इस संसार में ज्ञान के सदृश्य कुछ भी नहीं। ज्ञान के द्वारा अनादि काल से समत्व बुद्धि रूपी योग को योगी आत्मा में ही अनुभव करता है। इन्द्रिय निग्रह से ज्ञान की प्राप्ति होती है। ज्ञान से भगवत भक्ति और भगवत भक्ति से मनुष्य को परम शान्ति मिलती है।

मीता साहब ने भी भक्ति हेतु ज्ञान को आवश्यक माना है। इस ज्ञान की अभिव्यक्ति पांच इन्द्रियों और उनकी पचीस तिष्णाओं को जीतने से होती है। ज्ञान की प्राप्ति से मन स्वत: वश में हो जाता है। परिणाम स्वरूप अन्तर्यामी ईश्वर से साक्षात्कार का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।[2] ज्ञान मनुष्य के लिये परमावश्यक है। ज्ञान के बिना भक्ति का रहस्य मृग मरीचिका है और भक्ति के ईश्वर दुर्लभ है।[3] भक्ति के लिये तात्विक ज्ञान की आवश्यकता है। ओछा ज्ञान भी बिना ध्यान-योग के निष्फल होता है। ऐसे ओछे ज्ञान से ध्यान ही श्रेष्ठतर है।[4]

योग

भक्ति के निमित्त योग की आवश्यकता ज्ञान से कम नहीं है। भक्ति के मार्ग में बाधक दुख,सुख, काम, क्रोध आदि यथा योग्य आहार-विहार योग

---

[1] मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, ४।३९।

[2] पांच पचीसो की लहर, जो बांधे सो ज्ञानी।
मन दम्पिया तब हाथें आवे भेटे अन्तरजामी।।
- मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-३०६५।

[3] (क) ज्ञान बान नाहिं लगे अभागा।
निसि दिन सोवा कबहुं न जागा।।, वही, दोहा संख्या-८७।

(ख) जागो भाई हम गोहिरावा।
हरि की भगति बिनु नरक बसाया।।, वही, दोहा संख्या-३७

[4] ज्ञान छाड़ि कर ध्यान का पावे पद निरवान।
जो गनती लाखन गनी, बिनु धन का परमान, वही, दो०संख्या-५१

के साधारण विधियों द्वारा शान्त हो जाते हैं।[1] योग द्वारा सम्पूर्ण कामनाओं से रहित चित्त वश में होकर परमात्मा में लीन हो जाता है।[2]

मीता साहब योग को सर्वोपरि मानते हैं योगी पुरुष काल को जीतकर चौदहों भुवनों में अपनी अखण्ड सत्ता स्थापित करता है। इस प्रकार उसका तादात्म्य ईश्वर से हो जाता है। वह धीरे-धीरे योग के माध्यम से ईश्वरमय हो जाता है।[3] मीता साहब योग और भक्ति में बहुत ही घनिष्ट संबन्ध स्थापित करते हैं। योग के माध्यम से आभ्यांतर में दावाग्नि को प्रज्जवलित करके वे सुख-दुख कर्मों का जलाकर परमानन्द का दर्शन प्राप्त करना चाहते हैं।[4] वास्तव में समत्व बुद्धि युक्त पुरुष पाप-पुण्य दोनों को इस लोक में त्याग देता है। फलस्वरूप वह समत्व बुद्धि रूप योग द्वारा कर्म बन्धन से मुक्त हो जाता है। क्योंकि बुद्धि योग युक्त ज्ञानी जन कर्मों से उत्पन्न होने वाले फलों को त्यागकर जन्ममुक्त बन्धन से मुक्त निर्दोष अमृत मय परम पद को प्राप्त होता है।[5] योग की स्थिति सामान्य स्थिति से भिन्न है। मन की सभी चंचलता को समेटकर गुरु का परम आशीर्वाद प्राप्तकर योगी अपने आपको उस परम पद में स्थिर कर

---

[1] गीता, ६।२७।

[2] वही, ६।२८।

[3] काल हमारा का करै हम साहब के लोग।
जीता चौदह लोक का जागा मीता जोग।।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-८१।

[4] जन मीता वन सीचिया वन में लगी दवारि।
कर्म जरै जीव ऊबरा साधो करै विचारि।।
- वही, दोहा संख्या-८७ ।

[5] गीता, २।५०-५१।

सकता है जहां किसी अन्य मार्ग से विरले ही पहुंच पाते हैं।[१] योग की स्थिति बाह्य संसार में भटकने से नहीं प्राप्त हो सकती । पंच इन्द्रियों और उनकी लिप्साओं को वश में करने पर ही यह मार्ग दृष्टिगत होता है । पुनः सांसारिक विषय-वासना को त्यागकर तथा शरीर का शोधन करने पर परम पुरुष की उपलब्धि संभव होती है ।[२]

भक्ति के शत्रु:

मीता साहब ने भक्ति मार्ग के प्रबल शत्रुओं का स्पष्ट उल्लेख किया है । ममता, मोह जीव के परम शत्रु है इनके चंगुल में फंसकर जीव अपने परम लक्ष्य को भूल जाता है । ममता जीव को सदा सांसारिकता के आकर्षण में लुभाकर उसे परब्रह्म से साक्षात्कार में सदा अवरोधक है ।[३] चिन्ता, राग व द्वेष भक्ति मार्ग के कंटक हैं । जीव इन कंटक जालों में उलझकर अपने अस्तित्व को समाप्त कर लेता है । केवल संत ही ऐसे कंटकों का शिकार नहीं बन पाते । इन कंटकों को निर्मूल करके विजय श्री प्राप्त करने वाला जीव साधना में सफल होता है क्योंकि ये कंटक साधना मार्ग के बन्द कपाट हैं ।[४] भक्ति के मार्ग

---

[१] चितु चंचल निःचल किया सतगुरु का सिर नाय ।
मीता वहां थाना किया जहां न सुर मुनि जाय ।।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-११७ ।

[२] पांच पचीसो जब बस करई
कह मीता कुछ नजरी परई ।।
प्रथमय छाड़े जग व्यवहारा ।
फिर शोधें तन ही में सारा ।।, वही, पदसंख्या-८११ ।

[३] ममता वैरी जीव की या नाके ले जाय ।
वैरी के पहरे रहे, को पारन ले जाय ।।, वही, दोहा संख्या-२०१।

[४] संतन का न व्यापई, फिकिर राग औ द्वेष ।
मीता ते निरही रहे, ये नाहीं हैं भेष ।।
- वही, दोहा संख्या- ११५७

में अभिमान सबसे प्रबल शत्रु है । अभिमानी जीव भवसागर से कभी भी पार नहीं उतर सकता । क्योंकि अभिमान की नाव उसे मझधार में ही ले डूबती है । वह अभिमान के कारण अपने पद से पदच्युत होता हुआ नरकगामी हो जाता है । अभिमानी के हृदय में भक्ति लेशमात्र अंश भी नहीं होता । अपनी अहं प्रवृत्तियों को त्यागने के पश्चात् गुरु ज्ञान से ही ईश्वर की भक्ति संभव है ।[1]

भक्ति के मार्ग में आशा तृष्णा भी किसी लौकिक शत्रु से कम नहीं है । इनके रहते जीव की मुक्ति असंभव है । विरले ही इसे त्यागकर अपने लक्ष्य को प्राप्त करते हैं । राममें रमित जीव अपने आपको आशा-तृष्णा आदि दोषों से मुक्त कर लेता है । जो बहुत ही दुष्कर कार्य है ।[2] विषय-वासना और नाना प्रकार के विकारों में जीव डूबता उतराता रहता है जो जीव को मुक्ति मार्ग पर अग्रसर करना तो दूर उसे नरक की ओर ढकेल देता है । इन विकारों का स्थान मन के गहरे स्तर पर छाया रहता है । इनकी उपस्थिति में वैराग्य की स्थिति संभव नहीं । वैराग्य के अभाव में भक्ति का उद्भव और विकास असंभव है । वैराग्य साधना का विषय है, वाणी के कथन का नहीं । इसके लिये इन्द्रियदमनअपरिहार्य है । विषय-वासना में लिप्त इन्द्रियां भक्ति साधना के लिये सक्षम नहीं है । लोभ-मोह में फंसकर भक्ति गूलर कोफूल बन जाती है ।

---

[1] (क) तिमिर जात रवि दरस ते कुमति जात गुरु ज्ञान ।
सील जात सम्मान बिनु भगति जाति अभिमान ।।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-२२४ ।

(ख) अभिमानी सब बूड़ि हैं, नरक कुलकुल देय ।
कह मीता कोइ दीन जन, गुरु मिलि रामै लेय ।।
-वही, दोहा संख्या-२१२१ ।

(ग) पाहन की अभिमान नाव है को चाढ़ि पारै जाय ।
-वही, दोहा संख्या- ८१७ ।

[2] आसा तृश्ना कठिन है छाड़ै बिरला कोय ।
मीता हरि मन सों लौ दाग ना लागै कोय ।।
-वही, दोहा संख्या- ५४५ ।

अत: भक्ति हेतु काम,[१] क्रोध, लोभ और मोह आदि के निवारण पर विशेष ध्यान देना चाहिये ।

काम, क्रोध भी जीव के प्रबल शत्रु-श्रेणी के अंग हैं । भक्ति मार्गानुगामी सदा इन सबको विनिष्ट करने का प्रयास करता है । इनके विनिष्ट में ही जीव का कल्याण है क्योंकि इनकी उपस्थिति में भगवत् भक्ति जीव से कोसों दूर भागती है और भगवत् भक्ति की अनुपस्थिति में ईश्वरानुभूति असंभव है । बिना ईश्वरानुभूति के जीव का अमरपुर वासी होना दुर्लभ है ।[२]

माया के हाथ में भक्ति के शत्रुओं का संचालन है । इनके माध्यम से भेद डालकर जीव को भक्ति मार्ग पर पदच्युत कर देती है । भक्ति और माया एक म्यान की दो तलवार के समान है । हृदय में दोनों की स्थिति संभव नहीं है ।[३] भक्ति के मार्ग में सांसारिक मान-सम्मान बहुत विघ्न डालते हैं । मान-सम्मान के तात्कालिक आनन्द में मनुष्य परमानन्द की अलौकिक अनुभूति को भुला देता है । अत: गर्व अभिमान का लेशमात्र अवशेष भी ईश्वर के मार्ग को विरत कर देता है ।[४]

---

[१] (क) विषय विकार न छूटई कथै मूढ़ वैराग ।
आप मुसावै चोर से औरे का कहै जाग ।।
-मीतादास, ह०लि० ग्रंथ, दोहा संख्या-२३१६।

(ख) मन एकहु सौ फंस रहा कोइ नारी कोइ दाम ।
दूजा कंचन पाइये जौन मिलावै राम ।।
- वही, दोहा संख्या- २६८५।

[२] काम क्रोध बैरी बड़े तिनका करिये नास ।
तब मीता साहब मिलै होइ अमरपुर बास ।।
- वही, दोहा संख्या-२७०१।

[३] मन माया में रम रहा करै भगति की आस ।
कह मीता मदिरा पिये कहुं आवै बास सुवास ।।
- वही, दोहा संख्या- २७०४।

[४] दीन हो तजु लोक बड़ाई, यहि सम है कुछ नाहीं ।
- वही, दोहा संख्या- ४२६ ।

भक्ति का मार्ग बहुत सरल है । बाह्याडम्बर भक्ति मार्ग के साधन नहीं बल्कि बाधक हैं । छापा-तिलक आदि बाह्याचार को भक्ति मार्ग का निर्धारण रूप मानने वाले निश्चय ही लोग को धोखा दे रहे हैं ।[१]

भक्ति का स्वरूप:

भगवान कृष्ण ने भगवत गीता में ज्ञान को भक्ति एवं मुक्ति से उत्कृष्ट बताया है । वे कहते हैं कि "मुझमें नित्य एकाकी भाव से स्थित हुआ अनन्य प्रेम-भक्ति वाला ज्ञानी भक्त अति उत्तम है क्योंकि तत्व वेत्ता ज्ञानी को मैं अत्यन्त प्रिय हूं और वह ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्रिय है ।"[२] श्रद्धा एवं विश्वास के साथ मुझे मानने वाले सभी उत्तम हैं लेकिन ज्ञानी साक्षात् मेरा स्वरूप ही है । ऐसा मेरा मत है कि स्थिर बुद्धि से युक्त ज्ञानी भक्त अति उत्तम गति स्वरूप मुझमें अच्छी प्रकार स्थित है ।[३]

कतिपय भक्तों ने भगवद् भक्ति को सर्वोच्च माना है तथा मानव जीवनकी सर्वोच्च उपलब्धि को भक्ति के मूल के रूप में स्वीकार किया । उनके दृष्टि में भवसागर या आवागमन से भक्ति का स्तर दूसरा था । औपनिषाद परम्परा से प्रेरित सिद्ध-नाथ सम्प्रदाय की योग परम्परा का स्तर कायिक साधना तक ही सीमित हो गया था । इस प्रकार गीता का ज्ञान, भक्तों की

---

[१] भगति मरम न पावे ठगिया छाप तिलक झमकावे ।
झूठे के संग उठि के धावे सांच मने न भावे ।।
—भीखादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-७७८।

[२] गीता, ७।१७ ।

[३] वही, ७।१८ ।

भक्ति धारा, योगमार्ग की यौगिक एवं कायिक साधना तीनों में पार्थक्य हो गया । तीनों का लक्ष्य एक होने पर भी स्थूल रूप से तीनों में भिन्नता दिखाई देने लगी जहां एक ओर ज्ञान के माध्यम से मुक्ति का द्वार ज्ञानियों के लिये खुला रह गया वहीं दूसरी ओर भक्ति के माध्यम से भक्त को ईश्वरत्व की प्राप्ति की अनुभूति समझा जाने लगा । बौद्ध काल तक ज्ञान का प्रमुख उद्देश्य मुक्ति प्राप्त करना था । बौद्धकाल में मुक्ति का पर्यायवाची शब्द निर्वाण बुद्ध की देन थी जो कोई और नहीं अपितु मुक्ति का परिमार्जित रूप था । गोरखनाथ आदि की निर्गुण साधना यद्यपि ईश्वर भक्ति की ओर प्रेरित होने की एक निर्दिष्ट दिशा थी लेकिन वह भी मन की परिधि में केवल कायिक साधना मात्र बनकर रह गयी अन्तत: भक्ति का प्रेममय रस चतुर्दिक छा गया तथा भक्ति का सरल अनुगामी मार्ग मध्यकालीन भक्तों का परम लक्ष्य बन गया जिसमें रमकर वे साधना के मार्ग पर अग्रसरित हुये ।

ईश्वर कुछ और नहीं केवल प्रेम का स्वरूप है अत: ईश्वर प्रेम को धर्म के वातावरण में फलने-फूलने का उचित अवसर मिला । भक्त लोग भगवत-प्रेम के आनंद से आल्हादित होकर भक्तिरस में डूबने-उतराने लगे । जहां एक ओर सूफी सिद्धान्त के प्रवर्तक 'जायसी' जैसे विचारक प्रेम-रस के माध्यम से ईश्वर के निर्गुणोपासना में प्रेम के मधुर रस का स्वाद लेने लगे वहीं दूसरी ओर निर्गुण धारा के सन्त विचारक कबीरदास जैसे ज्ञानमार्गी पीछे नहीं रहे । उन्होंने भी निर्गुण ब्रह्म को प्रियतम के रूप में स्वीकार करके अलौकिक प्रेमरस का सृजन किया वह कुछ और नहीं निर्गुण भक्ति धारा का एक प्रतिबिम्बित रूप था । यह रूप स्थूल रूप से निर्गुण ब्रह्म की सगुण रूप में एक झांकी थी लेकिन यह सगुण ब्रह्म के प्रेममय रूप से सर्वथा भिन्न था ।

यद्यपि सिद्धान्त रूप से भक्ति और ज्ञान में बहुत ही भिन्नता थी लेकिन व्यवहार दोनों का लक्ष्य एक ही तत्व को प्राप्त करना था । दोनों के लक्ष्य में यह समानता कैसे आयी एक इतर विषय है । लेकिन इन दोनों में अत्यधिक

समानता लाने का प्रयास कबीरदास जी ने किया । मीतादास ने कबीर की परम्परा को पुनर्जीवित करते हुये अपने वचन-वाणी के माध्यम से इसे आगे बढ़ाया ।

मीतादास जी ने कबीर के जिस मार्ग का अनुगमन किया वह सगुण-भक्ति धारा का मार्ग नहीं अपितु निर्गुण भक्ति धारा का मार्ग था भले ही उसमें सगुण-प्रेम का दार्शनिक पुट रहा हो लेकिन सिद्धान्त रूप में वह पूर्णतया निर्गुण परब्रह्म की दिव्य झांकी का अलौकिक स्वरूप था । मीता साहब ने भी अपने उपासित ब्रह्म को बिना रूप-रंग का आकार माना है ।[१] केवल निर्गुण ब्रह्म का नाम ही नहीं वरन् उसकी सच्ची स्थापना पर भी उन्होंने प्रचुर बल दिया । निर्गुण ब्रह्म को उन्होंने सिरजन हार-निरंजन आकार खुदा आदि नामों से सम्बोधित किया है ।[२] अपनी उपासना पद्धति में मीता साहब ने तत्कालीन सामाजिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते हुये सगुणोपासना की पृष्ठभूमि पर पल्लवित निर्गुण विचारधारा को एक निर्दिष्ट दिशा देते हुये पातंजलि एवं उपनिषदों के निर्गुण ब्रह्म की महत्ता को स्वीकार किया जिसके फलस्वरूप उन्होंने यद्यपि सगुण ब्रह्म के नाम 'गोपाल' राम आदि नाम को अंगीकार किया लेकिन उन सबका एक ही तात्पर्य निर्गुण परब्रह्म से किया । अतः मीता साहब की वचन-वाणी में सगुण नामों का संबन्ध एवं अर्थ केवल एक ही 'निर्गुण परब्रह्म' से रहा है, नाना प्रकार के सगुण नामधारी भगवान या देवी-देवताओं से नहीं । वास्तव में वे जहां कहीं राम या कृष्ण को महत्व दिया है वह राम या अवतारवादी कृष्ण की भक्ति का नहीं वरन् अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक की भक्ति को दिया । जहां

---

[१] रूप अनूप महबूब का, कायाधारी नाय ।
तन सोध सो पाइया, सतगुरु देह बताय ।।
— मीतादास, हणछिंग्रंथ, दोहा संख्या- १००१ ।

[२] निरगुन कथनी का कथे, कहिये निरगुन नाम ।
सिरजन हारा मेट के, पद पावे निरबान ।।
— वही, दोहा संख्या- १०१६ ।

एक ओर प्रेमा-भक्ति के स्वरूप अखण्ड निर्गुण राम की भक्ति की शरण जाते हैं वहीं दूसरी ओर दुरन्त राम के अवतारवादी स्वरूप का खण्डन करते हुये उसे निर्गुण ब्रह्म का पर्याय बताया है।[१]

विविध भाव:

भीखा साहब ने ईश्वर के साथ अनेक भावों का तारतम्य स्थापित किया है। कहीं वे भक्त के रूप में दासों के दास हैं तो कहीं ईश्वर को अपना प्रियतम बनाकर प्रेम के रंग में विभोर हो रहे हैं कहीं उन्होंने ईश्वर को सद्गुरु कहा है तो कहीं उनकी शिष्य परम्परा की कड़ी से अपने आपको जोड़ा है।

दास्य भाव:

भीखा साहब ने सभी भक्ति भावों में दास्य भाव को प्रमुखता दी है। ईश्वर के महत्व को, उसके गूढ़ तत्वों को ईश्वर का सच्चा दास ही समझ सकता है। ईश्वर को ब्रह्मा जैसे लोग भी नहीं प्राप्त कर सकते हैं उसे तो उनका प्रिय दास ही प्राप्त कर सकता है।[२]

भवसागर से मुक्ति के लिए हरि-दासों का विशेष महत्व है जो हरि के दासों के मार्ग का विरोध करते हैं तथा पाखण्डियों के मार्ग का अनुसरण

---

[१] दसरथ जाया ऐसा बेटा। आया नार लपेटा ॥
-भीखादास, हस्तलिखित ग्रंथ, दोहा संख्या-२५४६।

[२] ब्रह्मा भेद न पाइया, जोन हरि के दास।
कही, सही तिनकी हवे, जो रहते हैं पास ॥
-वही, दोहा संख्या- ८२३ ।

करते हैं उन्हें मुक्ति तो क्या नरक में भी स्थान नहीं मिलता है[१]। हरि के सेवक तथा दासगण भिखारियों की तरह दर-दर की ठोकरें नहीं खाते वे गृह में रहते हैं[२]। ईश्वर की प्राप्ति के निमित्त दास्य भाव की अपरिहार्यता नितान्त ही आवश्यक है। दास्य भाव से अपनी दीनता को प्रदर्शित करने से भक्त ईश्वर के तुल्य हो सकता है[३]।

दास्य भाव से विनम्र बनकर ईश्वर के समक्ष अपनी लघुता अथवा दीनता प्रदर्शित करने से ईश्वरत्व की प्राप्ति होती है[४]। मीता साहब ईश्वर को दासों, भक्तों का रखवाला मानते हैं। ईश्वर ही दासों पर आये हुए नाना प्रकार के विघ्नों, कष्टों व संकटों से रक्षा करने में समर्थ है और दूसरे देवी देवता नहीं[५]।

पत्नी भाव:

मीता साहब ने ब्रह्म को अपना चिर-परिचित, प्रियतम बना लिया

---

[१] हरि दासन सो बैर मानई, पाखण्डी का भोरा।
मुक्ति की आशा करते हैं, नरकों नाहि ठौरा।।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-१८०५।

[२] भेष भरम मे जो परे, अधिकी जाय भुलाय।
कहे मीता पातीती का, हरिजन गिरही मांय।
- वही, दोहा संख्या- ६२६ ।

[३] चाहे बड़ाई जगत में ते नर बड़े न होय।
मीत दीनता जो कहे, हरि समान सो होय।।
- वही, दोहा संख्या- ६२७ ।

[४] सांच दीनता जहां हवै, तुरत मिले तेही राम।
सांची सांची जन कहे, अन्तर कवने काम।।
- वही, दोहा संख्या- ६२८ ।

[५] नाना विघुन प्रभु जन के टारे, दासन के वे हैं रखवारे।
अवरा देव ते काह सरे रे, समरथ साहब राम हमारे।।
- वही, दोहा संख्या- ६२६।

है । अपने प्रियतम के साथ वे रति-क्रीड़ा करते हैं । उनके आते ही प्रेम में निमग्न हो जाते हैं । जहां प्रियतम के संयोग से प्रेम की पराकाष्टा पर पहुंच जाते हैं । वहीं वे पति-वियोग में दग्ध कोयल की तरह पिया-पिया करते हैं[1] । अत: संयोग और वियोग के दोनों पक्षों में वे ईश्वर की प्रेमानुभूति के रस में सराबोर रहते हैं । मीरा साहब अपने प्रियतम से मिलने की एक दशा का वर्णन करते हैं कि श्वसुर रूपी गुरु की ज्ञानमय बातों को सुनकर मुझ नयी नवेली दुल्हन के आंखों पर पड़ा भ्रम का घूंघट हट गया । ऐसे अविनाशी प्रियतम की उपलब्धि आसान नहीं है । गुरु की महान अनुकम्पा[2] से ही उसकी प्राप्ति होती है तभी मेरे जैसा जीव सुहागिन हो पाता है ।

मीरा साहब स्वयं और अपने प्रियतम से मिलन न हो सकने के कारण बहुत दुखी हैं । उनकी इन्द्रिय रूपी ननद बहुत दारुण दुख देनेवाली है । दिन-रात वह कलह करती है । उनको प्रियतम से मिलने नहीं देती । एकाध दाण के लिए जब प्रियतम के साथ रमण करने का अवसर आता है तो सास बीच में बाधा डालकर उनको प्रियतम से मिलने नहीं देती तुरन्त किसी न किसी बहाने से उनको बुला लेती है । इस प्रकार मीरा साहब प्रियतम के समीप रहते हुये भी उनके साथ

---

[1] मोहि पिया-पिया धुनि लागी ।
- मीरादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-१६८५ ।

[2] सुनु ससुरे की बतियो घूघू टाठी टारिया ।
ऐसे पिउ ना पाइयों, का कथे गवांरिया ।।
- वही, दोहा संख्या- १६६६ ।

विलास करने का सुख नहीं प्राप्त कर पाते।[१] मीता साहब की मँगनी परब्रह्म से हो गयी है। अब उनका मन उनके नैहर के स्थान (घट प्रदेश) में नहीं लगता। उनको पिया-पिया को प्राप्त करने की धुनि लगी है। वे दुखवासी प्रियतम से मिलने के लिए उद्यत हो उठते हैं।[२]

अनन्य भाव:

मीता साहब को परमेश्वर के प्रति अनन्य प्रेम है। कालान्तर में उनके इस अनन्य प्रेम ने अनन्य भक्ति का रूप धारण कर लिया है। वे स्वयं में राम का एवं राम में स्वयं का अन्तिम (Eternal) निवास मानते हैं। परब्रह्म राम के प्रति उनका अनन्य प्रेम चिर-स्थायी है। अन्य देवी-देवता उनके परब्रह्म का स्थान ग्रहण नहीं कर सकते हैं। मीता साहब परब्रह्म अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक को सभी देवी-देवताओं से श्रेष्ठ मानते हैं। वह आदि पुरुष जो अलख निरंजन

---

[१] कस सखि अनमन धनमनि सबै सुख तू आरि।
कौन सूल लोहि हवै दुवारे तू खरी।
संपति साल मोहि व्यापै, नन्न बहुत दारुनि हो।
कलहु करै दिन राति, यहै दुख भारी हो।
छिन एकु जाऊं सेज पिये, तो सास बोलावै हो।
दरद न जानै मोर विरह तनु जारै हो।
सैया मोरे हवै सुजनवा तो सुनि बेकारा हो।
सबै सुख एक दुख, रही मन मारे हो।
तनु डारों दुख संग, रहोंगी न्यारा हो।
पिउ राख्यो उर लाय कार संभारा हो।
करिहों बहुत उपाय, पिया के काजे हो।
जनम अकारथ जाये, कुवारि जाने हो।
धृग तिनके सुख नारि पिया, जिन ढिग नहीं।
वासना प्यास न जाय अनारी तू भयी।
या मुंगठ परमारथ स्वारथ या नहीं।
कह मीता कोई मीत संत विवेकी लखि लई।।
- मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, पद संख्या-३३३।

[२] अब ना नैहर मन लागे, पिया पिया धुनि लागी।
मूर्ध महला आवा हो, पांच पचीसी बांधी।।
- वही, दोहा संख्या- १६८५।

है । भक्ति की अनन्यता के कारण मीता साहब को दर्शन देते हैं ।[1] सभी देवी-देवता की पूजा साक्षात् ईश्वर की पूजा के समक्ष तुच्छ है ।[2] क्योंकि ईश्वर सम्पूर्ण ज्ञान-प्रकाशन गुणों का समूह है किसी भी एक देवी-देवता चाहे वह कितना भी ज्ञान गुण सम्पन्न क्यों न हो ईश्वर की अनुपम छवि की तुलना में नगण्य है ।[3]

मीता साहब की परम पुरुष में अनन्य भक्ति है वे उसको अनादि और अनन्त मानते हैं अत: उनका परम लक्ष्य अविनाशी ब्रह्म से प्रेम कर उसमें लीन हो जाता है । दूसरे लोगों का अवतारी देवी-देवता की पूजा में संलग्न होकर अपने समय को व्यर्थ व्यतीत करना मीता साहब को पसन्द नहीं क्योंकि ईश्वर को छोड़कर सभी एक दिन काल के करालगाल में चले जाते हैं ।[4]

मीता साहब स्पष्ट रूप से अपने सृजनकर्ता ब्रह्म की अनन्य भक्ति की प्रधानता पर बल देते हैं क्योंकि उनका ब्रह्म निर्गुण निराकार, निर्विकल्प है । उसकी अनुपम लौकिक ज्योति के प्रकाश की तुलना में अगणित सूर्य-चन्द्रमा का प्रकाश नगण्य है और सभी देव मत्स्यावतारी, कच्छप-अवतारी, वाराह मिहिर,

---

[1] आदि पुरुष नैनन लखा, सब देवन्ह का देव ।
कह मीता उई अलख है, बिरला पावे भेव ।।
- मीतादास, हंसोंग्रंथ, दोहा संख्या- ७०४ ।

[2] सीस देई फिरि राम दुहाई, और देव की आस न राखो और वृक्ष की छाई ।
- वही, दोहा संख्या- ११५३ ।

[3] कोटि भानु छवि ना छुरे, ते देवन्ह के देव ।
सो मीता पहचानियां, सतगुरु केरी सेव ।।
- वही, दोहा संख्या- ७०२ ।

[4] भक्ति सरि और नहीं कुछ आही, सठ का जानि न जाई ।
भक्ति न छिजै ब्रह्म न छिजै और छिज सब जाई ।
चौबी तीन दसौ, अवतारा, छिजै औ उपजाई ।
काहु आस सबहु के ऊपर राखिये सन्त बनाई ।।
- वही, पद संख्या- ८६१ ।

नरसिंह, राम, कृष्ण, परशुराम आदि अवतारवादी ईश्वर नश्वर हैं केवल ईश्वर का अविनाशी है।[1]

निष्काम भक्ति:

'गीता' के निष्काम कर्म योग का सिद्धान्त वर्षों से तर्क का विषय बना हुआ है फलरहित भावना से कर्म की अभिव्यक्ति वास्तव में एक उच्च स्तरीय कर्म की मीमांसा है जो साधारण बुद्धि से परे है। निष्काम भक्ति का अर्थ कर्म-फल की इच्छा से रहित वह भक्ति है जो जीव को भवसागर से मुक्ति की ओर अग्रसर करती है। 'गीता' में निष्काम भक्ति को सर्वश्रेष्ट माना गया है। सब कर्मों के फल का ईश्वर की भक्ति के निमित्त त्याग ही सर्वश्रेष्ट है। क्योंकि त्याग से ही तत्काल परम शान्ति मिलती है। केवल भगवद् अर्थ कर्म करने वाले पुरुष का भगवान में प्रेम और श्रद्धा तथा भगवद् भक्ति का चिन्तन बना रहता है इसलिये ध्यान से कर्म-फल का त्याग श्रेष्ट कहा गया है।[2]

भक्ति के प्रकार:

मीता साहब की भक्ति धारा चिर-परिचित सगुण भक्ति धारा से सर्वथा भिन्न है। अत: मीता साहब की भक्ति को निर्गुण-सन्तों की भक्ति

---

[1] हम तो सिजन हारा जानै, आनि मनै नही आनै।
कोटि सूर छवि पर वारौं, सो छवि कवन बखानै।
नही है रूप नही है रेखा, वा तो ब्रह्म निराला।
— मीतादास, हस्तलिखित ग्रंथ, पद संख्या-१६।६।

[2] गीता, १२।१२।

धारा से जोड़ना सर्वथा उपयुक्त होगा । सगुण भक्ति के लिए अवतार, मूर्ति-पूजा, यज्ञ, जप-तप, तीर्थ-व्रत नाना प्रकार के वेश रखना आदि आवश्यक है । भीखा साहब ने इन सब की आलोचना करते हुये भक्ति के मार्ग में इनको निरर्थक बताया है।[१] भीखा साहब ने भक्ति के मार्ग को गीता की भक्ति-धारा से अभिसिंचित किया है ।

सगुण भक्ति धारा की नवधा भक्ति प्रसिद्ध है । भागवत-महापुराण में भक्ति के नव रूप बताए गये हैं।[२] गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में भी नव प्रकार की भक्तियों का नाम नवधा भक्ति रखा है।[३] भीखा साहब ने यद्यपि भक्ति के प्रकारों का वर्णन किया है लेकिन चिर प्रचलित सगुण-धारा का नहीं अपितु संत-मार्गी भक्ति की निर्गुण-साधना ही उनके जीवन का परम लक्ष्य था । भीखा साहब ने भी भक्ति के नव स्वरूप को स्पष्ट किया है।[४]

---

[१] कोउ करै तीरथ कोइ करै दानि, कोऊ तप जोग वेद व्यटाना ।
-भीखादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-१३२६।

[२] भागवत्, ७,५,२३ ।

[३] गोस्वामी तुलसीदास, रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, दोहा-३४-४,३५-३ ।

[४] प्रथमै संतै शीश नवाऊं दूजे रामनाम मन लाऊं ।
गौरी गनेश महेश मनाऊं, रामचरित चित छिड़के लाऊं ।
चित लाय अन्तर प्रित लागी, रैन दिन पलना परै ।
गये विषै बेकार तृष्णा, पाप जन्मनि के जरै ।
निरखि मूरति गाढ़ सूरति, तब ते आन भावई ।
मिला मेरा जीव रामै, जम की चोट ना खावई ।
मिले पुरुष सोहाग पाये, अवनि पग तब ना परौ ।
प्रेम आये नेम भागा, नींद भवै परि हरौ ।
भयी यो गति मीन की ज्यों जले बिन कल ना परौ ।
नै भरि भरि आंसु चलई, सुमति छिन ते ना टरौ ।
कहां कासी चोट भारी, लागई सोई जानिहै ।
कोई भवै भीखादास बिरला, भाग्य पूरै ठानिहै ।
-भीखादास, ह०लि०ग्रंथ, पद संख्या-१८०२ ।

(१) संतों की सेवा (२) राम नाम का मन में स्मरण (३) ईश्वर के प्रतीक स्वरूप गौरी, गणेश तथा महेश की वन्दना (४) परब्रह्म राम के चरणों में चित्त को स्थिर करना (५) मन में ब्रह्म को स्थित करके उससे निरन्तर प्रेम करना (६) ईश्वर की दिव्य मूर्ति को निरन्तर परखना (७) दिव्य ज्योति में ध्यान स्थिर करना (सुरति-निरति योग) (८) पुरुष पुरातन से संयोग (जीव का मिलन कराना (९) ईश्वर प्रेम के कारण निद्रा-तन्द्रा को बिसार देना ।

संत-सेवा:

संत की प्राप्ति बड़े परिश्रम से होती है । संतों की प्राप्ति से जीव जीवन के आदि, मध्य और अंत की सद्गति प्राप्त करता है और बुढ़ापा अपनी सद्गति को प्राप्त होगा ।[1] संतों की सेवा करने से उनकी शरण में जाने से ही जीव को अमरत्व की प्राप्ति हो सकती है ।[2] मीता साहब ने संतों की सेवा को ही भवसागर से मुक्ति का मार्ग स्वीकार किया है ।[3] सच्चे संतों के पहिचान के अभाव में मन की दुर्वासनाएं समाप्त नहीं होती । मनुष्य संसार सागर से मुक्त नहीं हो पाता ।[4] अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक परब्रह्म की दिव्य ज्योति का दर्शन संत-

---

[1] ढिठ्यारा अगुवा करी, जाते चिन्ही संत ।
संत मिले ते सब बने, अबहूं तबहूं अंत ।।
-मीतादास, हरलिग्रंथ, दोहा संख्या- १८०४।

[2] राम भजे मीता फल पाए, सोई दीन गोहराई ।
अमर लोक पट्टा लिख पाए, संतन की सरनाई ।।
- वही, दोहा संख्या- ३०६६

[3] तरना संतन की सेवकाई ।, वही, दोहा संख्या- १८०६ ।

[4] किये, कपट चतुराइया, रहे मैल लपटाय ।
संतन का चिन्हे नहीं, भय में मीता जाय ।।
- वही, दोहा संख्या- ८०३ ।

गुरु की सेवा से ही प्राप्त हो सकता है।[1] सद्गुरु अथवा संत की कृपा से ही निर्गुण निराकार निरालंब अलख जगदीश्वर की अलौकिक झांकी प्राप्त होती है। उसकी सेवा के अभाव में यह सुलभ नहीं है।[2] बिना संतों की कृपा से मनुष्य का गर्व-युक्त अहंकार नष्ट नहीं होता। विनम्रता बिना ईश्वर भक्ति दुर्लभ है।[3] मीता साहब संत, साधु और गुरु में कोई भेद नहीं मानते। संतों की सेवा, गुरु की सेवा अथवा साधु की सेवा करने का लक्ष्य एक ही है। अतः संत सेवा ही भक्ति का एक प्रमुख अंग है। संत सेवा करने पर ही जीव ईश्वरत्व को प्राप्त कर सकता है।

नाम स्मरण:

राम के नाम का स्मरण भी भक्ति का एक अंग है। मीता के 'राम' का स्मरण मन का स्मरण है। वाणी का नहीं।[4] मीता साहब राम के नाम का स्मरण करते-करते उनके नाम के रस में आत्मविभोर हो जाते हैं।[5] ईश्वर का

---

[1] आदि पुरुष नैनन लखा, सब देवन का देव।
कह मीत उई अलख है, बिरला पावै भेव ।।
-मीतादास, ज्ञानग्रंथ, दोहा संख्या- १३७९।

[2] रूप अनूप महबूब का, काया धारी नाय।
तन सोधे सो पाइया, सतगुरु देई बताय ।।
- वही, दोहा संख्या- १५४३।

[3] यो दुर्जनमाया बिना, गुरु स्वभाव न जाय।
दुर्जन घर मोती भरे, दुर्जन ना हो जाय ।।
- वही, दोहा संख्या- १०६ ।

[4] राम नाम जाके मन आवे, सो रामहि तुरते मिल जावे।
जीभ रटे रामे ना पावे, गाई बजाय जगत मारे जावे ।।
- वही, दोहा संख्या- ६६३ ।

[5] सत्य नाम झंकारे, करम कागज फारि डारा जनम तारे।
जोग जुगति बिचारि मन गहि भरम भ्रम भागारे ।।
- वही, दोहा संख्या- १२३६।

निवास घट के भीतर है । वाणी से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है अतएव वाणी से उस अन्तरगामी के निर्गुण नाम का स्मरण सम्भव नहीं है।[1] राम के स्मरण से जीव परम सुख को प्राप्त करता है । भजन-भक्ति से ही जीव काल-भय से मुक्त हो सकता है । भगवान का नाम स्मरण करने वाले के वश में निखिल ब्रह्माण्ड होता है।[2] भीखा साहब पाप-पुण्य जनित काल का परित्याग कर निर्गुण नाम के स्मरण करने एवं उपासना पर बल देते हैं । निर्गुण नाम के स्मरण से ही काल से मुक्ति एवं परम पद की प्राप्ति होती है।[3] भीखा साहब अन्तर्यामी ब्रह्म के नाम का स्मरण मन के अन्दर ही करते हैं उनके स्मरण से ही जीव अपनी निर्वाणावस्था (मोक्ष) को प्राप्त कर सकता है।[4]

ईश प्रतीकों की उपासना:

नाम स्मरण के पश्चात् शरीर के भीतर स्थित ईश्वर के प्रतीकों (गौरी, गणेश, शंकर, विष्णु आदि) का आशीर्वाद प्राप्त करना भी भीखा

---

[1] रे मनुवा भज ले अन्तरजानी, छूट जाय दुख खानी ।
-भीखादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-७६८।

[2] भज ले राम परम सुख होई, छूटि जाय जम त्रास रे ।
जेहि दुवारे तिरदेवा बाँधे ऐसा नाम अधारा रे ।
भजा कबीरा भजा रैदासा भजन जगत ते न्यारा रे ।
भजन सोई जो राम मिलावे, रटे का होई गवारा रे ।।
- वही, दोहा संख्या- ६८६ ।

[3] कहता करम भरम का त्यागो निरगुन नामे ध्यावो रे ।
जो ध्यावो ता काल न पूछे, सहज परम पद पावो रे ।।
- वही, दोहा संख्या-११२७ ।

[4] राम नाम भजु अंतर ध्यानी, छूटि जाई चौरासी खानी ।
कन फुकवे सो परे न जानी, वो तो नाम भिन्न निरबानी ।
सतगुरु कहिए परम विज्ञानी, परे नाम नित सुजन जानी ।
सो कर जपे न माला आनी, निरअध्यायी ज्ञानी ।।
- वही, दोहा संख्या-१०५४ ।

साहब ने अपनी भक्ति का एक आवश्यक अंग माना है क्योंकि इन घट के अन्तस्थित प्रतीकों की साधना बिना जीव जीवन की आत्म साधना को नहीं प्राप्त हो सकता । उन्होंने वाह्य प्रतीकों की उपासना का सर्वथा विरोध किया है ।

राम के चरणों में दृढ़ संकल्प रखना:

मीता साहब ने अखण्ड ब्रह्माण्डमय निर्गुण निराकार निरालम्ब राम के कमलवत चरणों में चित्त लगा कर अपने आपको उनकी शरण में अवलम्बित कर देना भी भक्ति का एक अभिष्ट अंग स्वीकार किया है ।

ईश्वर की दिव्य मूर्ति का निरन्तर परखना:

अष्ट कमल दल में स्थित ब्रह्म को परखना भी भक्ति का एक अंग बताया गया है ।

सुरति (ध्यान) को स्थिर करना:

अष्ट कमल दल में स्थित परब्रह्म से साक्षात्कार करके उसमें अपने ध्यान (सुरति) को स्थिर करना भी भक्ति का एक अंग माना गया है ।

ईश्वर से प्रेम:

ईश्वर को प्राप्त करके उससे निरन्तर प्रेम करना भी भक्ति का एक अंग है ।

प्रकृति:

मीता साहब सर्वथा सांसारिक सौन्दर्य से अपने को विरत रखना चाहते थे । अत: संसार के प्राकृतिक सौंदर्य की अनुभूति से वे प्रेरित न थे । प्रकृति के सौंदर्य को अपनी वाणी का विषय बनाकर उसमें आसक्ति रखने में मीता साहब की कोई अभिरुचि न थी । उन्होंने प्रकृति के सौंदर्य पर एक विहंगम दृष्टि डाली लेकिन उसमें लौकिक वाद का अंश होने के कारण उसके भौतिक वाद से परे हटते गए । लौकिक प्रकृति का आकर्षण उन्हें आकर्षित न कर सका । प्रकृति में जीव की भांति, जीवन चक्र (जन्म वृद्धि, क्षय एवं मृत्यु) उन्हें नश्वर लगा । अत:वे निस्सार एवं नश्वर प्रकृति के क्षणिक लालित्य में अपनी योग-पाक वाणी को स्थिर न कर सके ।

मीता साहब बाह्य सौन्दर्य के आस्वादन में लिप्त न होकर अन्तर्मुखी सौन्दर्य की ओर अभिमुख थे । योग के माध्यम से ईश्वर को प्राप्त करने का विषय प्रकृति के उन्मत्त वातावरण में पल्लवित एवं पुष्पित होने में सक्षम न था क्योंकि उनकी आध्यात्मिक भावना (ब्रह्मानुभूति) प्रकृति की गोद में अंकुरित नहीं हो सकती थी । बाह्य प्रकृति के स्थान पर अपनी चेतना में उन्होंने आत्मबोध को स्थान दिया । अपने दार्शनिक तत्वों में उन्होंने अनुभूति और अन्तर्मुखी प्रकृति को स्थान दिया । मीता साहब की जीवन-पर्यन्त-साधना का सीधा सम्पर्क उनकी अन्तर्मुखी अनुभूति (दर्शन) की भावानुभूति तक ही था । इसलिए वे प्रकृति से सीधा तादात्म्य न स्थापित कर सके ।

मीता साहब का ब्रह्म अलख निर्विकार परमतत्व है । माया ब्रह्म की दासी है जो सारे नश्वर जगत का कारण है । यह नाशवान और क्षणिक है । कुछ अर्थों में प्रकृति का भी इससे सामंजस्य है । अत: माया को हम प्रकृति का पर्याय मान सकते हैं । लेकिन सीधे अर्थों में प्रकृति और मीता साहब के नाम की माया में बहुत दूर का दृष्टि भेद है ।

प्रकृति का सौन्दर्य, उसका उन्मत वातावरण, उसकी नश्वरता और क्षणिक स्थिरता के समक्ष जीव घुटने टेक देता है । जिसके फलस्वरूप वह संतों, योगियों की वचन-वाणी का विषय न बन सका । भीखा साहब ने भी प्रकृति के इस वातावरण में अपने आपको आत्मसात करने के बजाय अपने आपको ब्रह्म के समक्ष उसको तुच्छ माना है । सारी प्रकृति को अपने इष्ट के समक्ष नाशवान एवं क्षणिक मानते हैं । भीखा साहब की प्रकृति सारी सृष्टि का ही रूप है एवं प्रकृति का कारण परब्रह्म है । अतः भीखा साहब ब्रह्म में वे सारे गुणों को देखते हैं । मनुष्य का शरीर, ब्रह्माण्ड, आकाश, चन्द्र, सूर्य, पर्वत और नदियां सभी सृष्टि में है । सबका रूप परिवर्तित होता रहता है। वे ब्रह्म को प्रकृति और सृष्टि से पहले का मानते हैं । उनका ब्रह्म रूपी प्रकृति से प्रेम शाश्वत एवं अस्थायी तथा क्षणिक है ।

> हो तो तब का रहका जब सूरत ना तारा ।
> धरती मण्डप ना हती ना समुद्र पसारा ।।
> -भीखादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-

प्राकृतिक तत्वों से ब्रह्म की स्थापना:

भीखा साहब ने निर्गुण रूप में ब्रह्म के गुणों का निरूपण प्रकृति के माध्यम से किया है ।वे प्रकृति के नाना रूप रस-गंध (शब्द स्पर्श रूप रस गंध) से ब्रह्म के गुणों का रसास्वादन करते हैं । अतएव प्रकृति के माध्यम से ब्रह्म की व्याख्या का उदाहरण भीखा साहब की वचन वाणी में मिलता है । भीखा साहब ने जहां कहीं प्रकृति के तत्वों का उल्लेख किया है वहां उसकी लौकिक आस्था से नहीं वरन् उसके गुणों से सम्बन्धित है । उर्ध्व मुख करके पवन आहार करने वाले का अगला जन्म अजगर रूप में होने की अभिव्यक्ति उसके भयावह रूप से है सौन्दर्य से नहीं । रेचक कुम्भक आसन में लीन व्यक्ति का जन्म बन्दर में होना, उसके ओछापन का एक उदाहरण है । इसी प्रकार शून्य मण्डल में ध्यान रमाने वाले का कुंवे में

जन्म, शून्य में ध्यान रमाने वाले का चील बनना, जलशायी होने का ठेका मछली में जन्म लेना, धोती नेत लेने वाले का रीछ के रूप में जन्म लेना, कायाकल्प करने वाले का भूत-पिशाच योनि में निरन्तर भ्रमण आदि वास्तव में प्रकृति के जीव तत्व हैं लेकिन मीता साहब का हृदय उनकी दाणिक सुन्दरता पर नहीं रमा वरन् उसके दाणिक आवेश पर एक आलोचनात्मक दृष्टि डालकर प्रकृति की दाणिकता को ही प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है।[१]

प्रकृति में कल-कल बहती हुई नदी साधारण कवियों की भाँति मीता साहब के लिए प्रसन्नता का सन्देश लेकर नहीं आयी है। प्रकृति की नदी मीता साहब के लिए बाढ़ की नदी है। उसके दोनों किनारे माया और मोह के कगार हैं। मझदार में असहाय जीव डूब रहा है। पानी की सुन्दरता को बढ़ाने वाले जीव-जन्तु, घड़ियाल काम-क्रोध के रूप में व्याप्त हैं। गुरु केवट है जो भवसागर से उनको पार उतार सकता है।[२]

१
उधमुख करै पवन अहारा, ते होइहै विषहर अवतारा।
उल्टा पवन चढ़ावे लोई, बाजीगर के बंदर होई।
पट्टी लीले आंत पखारै, ते होइहै स्वान अवातारै।
शून्य मंडिल जब तके गंवारा, ते होइहै चील्हा अवतारा।
बाजीगर के बकरा होई, चौरासी आसन जे करई।
जलशाई होय जे महुरई, ते मीन होय फिर अवतरई।
मृत्युक संग देई तनुजारी तेउ चकोरी होइहै नारी।
तेउ चकोर होइहै अवतारा पंच अगिन जे करै अहारा।
धरती मा ले दंड समाई, तेउ अजगर होय है आयी।
तेउ अजगर होइहै आयी, जेहुं डाकिन, देहु दगायी।
गया पुनि जे निकरै आयी, तेउ अजगर होइहै आयी
जटा राखि जे लावै छारा, तीर्थ बरत ते होय उबारा।
+ + + +
जब मीता खिलि हैं करतारा, तब होई भय ते निरबारा।

२
नदी एक बाढ़ी अगम अपार, माया मोह है कगार।
नाव न चले नीर नहीं भाखिया, बहति है संसार।
काम क्रोध घरियार तहां है वेद हवे रखवार।
नाधि न सके मानि ताहिकी, तीन गुनन की धार।
ब्रह्मा विष्णु महेश देव मुनि नल ताकी व्यवहार।
काल जात, लगे घाट में, कैसे उतरे पार।
नौका नाम दिया गुरु पूरे, उतरति लगी न पार।
अब मीता भय बहुरि न आवै, बांह धरि करतार।

प्रकृति के वातावरण में मस्ती से झूमने वाले वृक्ष मीता साहब के लिए सख वृक्ष नहीं है । उस वृक्ष की मूल आदि ज्योति और देव निरंजन है । तीनों देवता वृक्ष की तीन प्रारम्भिक डालें हैं और सारा संसार इस वृक्ष की अगणित पत्तियां हैं।[1] प्रकृति की गोद में सायं के समय जाती हुई बालाओं का सौन्दर्य प्रकृति की छटा में चार चांद लगा देता है लेकिन मीता साहब प्रकृति के इस सौन्दर्य पर लेशमात्र भी दृष्टिपात न करते हुए प्रकृति एवं बाला के सौंदर्य को योग के मार्ग में लीन कर लेते हैं।[2] डोरी और गगरी को लेकर कुएं से पानी भरती हुई बाला के प्राकृतिक सौन्दर्य की छटा को वे प्राकृतिक सौन्दर्य में न लेकर उसे चिर प्रचलित योग का विषय बना देते हैं । उनके प्रकृति का यह सौन्दर्य जीव के योग की पराकाष्ठा को पूर्ण कर लेने में ही दृष्टिगोचर होता है ।[3]

प्रकृति के अन्दर विचरण करने वाले गन्दे में सदा रहने वाले सुकर का इतर की सुगन्धि को परखना, मुर्गी का बड़े ऊंचे-ऊंचे मंडवों को फांद जाना जहां सामान्य जन के लिये प्रकृति का आश्चर्यजनक प्रतिबिम्ब है वहीं मीता साहब का मन के अन्दर इन तत्वों को परखना प्रकृति के वास्तविक लौकिक रूपों को मान्यता न देना है।[4] प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में विचरण करने वाले

---

[1] (क) आदि ज्योति और देव निरंजन एक आयी ।
(ख) तीर देवा शाखा भये पत्र भया संसार ।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-११३६-११४० ।

[2] लेजुरी नही चली पनिये कुअना है बड़ी दूरि ।
पनियां- हाथन अहि है अरि मुंह में परिहै धूरि ।
- वही, दोहा संख्या-१८१८ ।

[3] मिलि ले सहीन का नागरि कुअना भर ले पानी ।
लेजुरि ले औ गगरी, ससुरे की पहिचानी ।
-वही, दोहा संख्या- १८१६ ।

[4] सुकरि करै अतर की पारिख, मुर्गा मंडिले फांदै ।
कह मीता या देख तमाशा, हमका अचरज लागै ।
-वही, दोहा संख्या-१६६६ ।

बकुले का वेदोच्चारण करना एवं मोटी बुद्धि वाली भैंस का उससे ज्ञान का उपदेश सुनना घर के चारो कोनों में चूहों का नृत्य करना साधारण बुद्धि के लिये प्रकृति के तत्वों के क्रिया-कलापों का आनन्द लेना है । लेकिन मीता साहब ने इन प्राकृतिक तत्वों का उल्लेख योग परक साधना के तात्त्विक विश्लेषण में किया है।[1] प्रकृति में सदा फुदकने वाले मेढ़क का मृदंग बजाना एवं चूहे का तान सुनना, ऊंट का गाना, गधे का नृत्य करना एवं कौवों का गुरु दक्षिणा मांगना आदि परोक्ष रूप से प्रकृति के तत्वों की आकर्षक लौकिक क्रियायें हैं जिनमें जीव आकर्षित होकर प्रकृति की गोद में सो जाता है लेकिन मीता साहब ने प्रकृति के इन तत्वों के आकर्षण में अपने आपको भुलाना उचित नहीं समझा । उन्होंने इन प्राकृतिक सौन्दर्यों का उपयोग योग के कठिनतम गहन अर्थों के सरलीकरण के संदर्भ में किया है।[2] प्रकृति में आश्चर्यों का अन्त नहीं है । मीता साहब ने इन आश्चर्यों का उपयोग योग के तत्वों के रूप में किया है । बिल्ली का ऊंट को पकड़कर ले जाना, पानी में आग लगाना, खरगोश का शेर को मारना एवं भूनकर खाना, सुई छिद्र से बिना हाथ-पांव के हाथी का प्रवेश करना वास्तव में प्रकृति के उन्मुख वातावरण में निहित प्राकृतिक तत्वों का वर्णन है जिनमें उसकी आश्चर्यजनक सत्ता प्रकट होती है । उलटवासी के रूप में इनकाप्रयोग वास्तव में निर्गुण पंथ में प्राकृतिक तत्वों की एक झांकी है।[3]

---

[1] बकुला बैठे पोथी बाचै सुनै भैंसिया ज्ञानै ।
मुसे चारिउ कोने नाचे, मीता बिरले जानै ।
- मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-१९९८।

[2] मेढ़क तो मृदंग बजावै, चूहा समझै तानै ।
ऊंटवा गावै, गदहा नाचै, कौवा दच्छिना मांगै ।
- वही, दोहा संख्या- १९९७ ।

[3] बिलारि ऊंटवै धरि ले जाय, ऊटवा मगन नाचै आय ।
तब पानी मा आगी लगाय, ससा भून सिंह का खाय ।
सुई द्वार हथिया काढ़ जाय, वह हथिया के हाथ न पाय ।
- वही, दोहा संख्या- १९९७ ।

शृंगार:

शृंगार रस का स्थायी भाव `रति` है । मन में रति की स्थायी भावना से ही शृंगार रस की उत्पत्ति होती है । भीखा साहब ने शृंगार रस की अभिव्यक्ति सरल लौकिक रूप में नहीं वरन् अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक की सत्ता से संयोग-वियोग रूप में किया है । ब्रह्म से मिलकर रति क्रीड़ा में सौन्दर्य की जो अनुभूति हुई है उस रसानुभूति में अपने आपको आत्मलीन कर भीखा साहब ने सांसारिक क्षणिक सौन्दर्य की अनुभूति को तिरस्कृत कर दिया है । जीव रूपी कुंवारी बाला का परब्रह्म रूपी पति के मधुर मिलन के पश्चात् मायके (संसार) के प्रति अनाकर्षण तथा ससुराल (परब्रह्म-निवास) के आकर्षण में दिन प्रतिदिन वृद्धि होते जाना लौकिक शृंगारिक भावों की पराकाष्ठा की तात्विक अनुभूति है[1] । यही नहीं कुंवारी बाला (जीव) का शैशव के गुड़ियों-गुड्डों से खेल-खेलते समय सुहागिन सहेलियों से उनके द्विरागमन के विषयानन्द के विषय में पूछना तथा सुहागिन सखियों का रतिपूर्ण शृंगारिक भावानुभूति की लज्जापूर्ण अभिव्यक्ति के समय मुखाकृति का रक्ताभ हो जाना परमानन्द की अनुभूति की अभिव्यक्ति की असमर्थता प्रकट करना वास्तव में केवल काव्य परक लौकिक शृंगारिक रसानुभूति नहीं है वरन् जीव ब्रह्म के मिलन की आनन्दानुभूति का दूसरों से प्रकट करने में अपनी असमर्थता के व्यक्तिकरण का चित्रण है[2] ।

---

[1] मयका लगै सुहावन तो, जौ लगु ससुरे न जाय ।
ससुरे के हो आयन तो, मन औरन हो जाय ।।
-भीखादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-१८२० ।

[2] क्वांरि खेलन गुड़ियन अरि पूछै सखियन सों बात ।
गौने जाव तो जानो मैं तो कहत लजात ।।
- वही, दोहा संख्या-१८२१ ।

गुड़ियों-गुड्डों से खेलती हुई कुवांरी बाला का सुहागिन सहेलियों के गौने से मायके लौटी हुयी दो नयी-नवेली बधुओं का एक दूसरे को तिरछी नयनों से देखकर मुस्कराना एवं सुहागरात (प्रथम मिलन) के भावों को मन में ही स्मरण करना केवल साधारण लौकिक श्रृंगारिक वर्णन नहीं है वरन् उन यौगिक क्रियाओं का वर्णन है जब जीव ब्रह्म से समागम के पश्चात् उसकी तात्विक उपलब्धि की अनुभूति कर लेता है वह दूसरों से शब्दों के माध्यम से इस आनन्दानुभूति को व्यक्त करने में अपने आपको असमर्थ पाता है[1]। मीरा साहब द्वारा पति-पत्नी की संयोगावस्था का वर्णन श्रृंगारिक भावनाओं से ओत-प्रोत है। प्रियतम की अनुपम छवि को निहार कर प्रियतमा का आत्मविभोर होकर बावरे जैसा व्यवहार करना, प्रियतम के महल की सीढ़ियों पर सखियों के साथ नृत्य करना, सर्वस्व प्रियतम पर न्यौछावर करके अपना अस्तित्व समाप्त कर देना एवं पुन: कभी भी मायके न लौटने की स्मृति आदि प्रत्यक्ष रूप से श्रृंगारिक वर्णन है लेकिन यह अप्रत्यक्ष रूप से जीव का निर्गुण ब्रह्म की अनुभूति है। घट की कुण्डलिनी शक्ति को परमात्मा में लीन करा देना तत्पश्चात् इस संसार के आवागमन से विरत होकर मुक्ति को प्राप्त कर लेना है। पति-पत्नी के श्रृंगारिक भावों से अगम-तत्व की रसमय व्याख्या वास्तव में योग-विधि का सरलीकरण है[2]।

---

[1] गौने ते आयी री दोनो चितै चितै मुसकाय ।
कोऊ न कहै दोनों जानै, सेजरि केरे सुभाय ।।
— मीरादास, हस्तलिखित ग्रंथ, दोहा संख्या-१८22 ।

[2] झलक झलकै कोटि रवि शशि, सब्ज चन्दा तह नहीं ।
देखि छबि में भई बावरि, जगत हाँसी तब भई ।।
जेहि व्यापै सोई जानै, कहन की गति कुछ नई ।
अगम सीढ़ी पाँव दीन्हा सीस दै के चढ़ गई ।।
पांच सखियां संग लिन्हा निरत कै तहां मिल गई ।
कुंभ का जल नाय सागर, सुमति लै बाढ़ी भई ।।
मेटि आवन जान सखियो, काल फांसी कट गई ।
कहै मीरा बाद तजु नल, किया करनी सुख नई ।।
— वही, पद संख्या-९१६ ।

मीता साहब ने श्रृंगारिक भावना के रूप में प्रेमी-प्रेमियों की दशा का वर्णन योग-परक काव्य के क्षेत्र में किया है। महबूब (प्रियतम) के अनुपम स्वरूप का दिग्दर्शन करने के पश्चात् किसी अन्य के रूप-दर्शन की उत्कंठा सच्ची प्रियतमा के मन में नहीं होती। जो प्रति क्षण अपने प्रेमी का ध्यान लगा रखता है। प्रिय के मधुर नयनों के संयोग से सभी प्रेम प्रश्न स्वत: ही समाप्त हो जाते हैं। निगूढ़ प्रेम पंथ असिधार होती है उसपर विरले संत ही चलकर प्रिय की प्राप्ति कर पाते हैं।[1] श्रृंगार के संयोग पक्ष के साथ-साथ विप्रलंभ पक्ष भी मीता साहब की दृष्टि से अछूता न रहा। अपनी प्रियतम के वियोग की विरहाग्नि से दग्ध प्रियतमा एक सखी अपनी परमात्मा पति के विरह की मनोव्यथा का वर्णन करती हुई [illegible] से कहती है कि प्रियतम के वियोग में सम्पत्ति का सुख मुझे झूठी रहा है। मेरी ननद बहुत ही दुष्टा है। मुझे अपने प्रियतम से मिलने नहीं देती। वह रात-दिन गृह-कलह में लिप्त रहती है। इतना ही नहीं एकाध क्षण जब मुझसे प्रियतम से सेज शयन का आनन्द लेने का अवसर मिलता है। मेरी सास तुरन्त विघ्न डाल देती है। वह किसी न किसी बहाने से बुला लेती है। मुझे प्रियतम से मिलने नहीं देती। वह विरह में मेरा तन जला रही है क्योंकि प्रियतम के साथ रहते हुए भी उनके संयोग सुख से मैं वंचित हूं। प्रियतम के साथ रहते हुए भी मेरी मन-वासना की तुष्टि नहीं हो पा रही है। इस प्रकार का श्रृंगारिक वर्णन वास्तव में जीव का अपने प्रियतम परब्रह्म के संयोग का वर्णन है जिसमें नाना प्रकार की सांसारिक वासना जीव को ईश्वर से विमुख कर देती है। मीता साहब ने बहुत ही सरल रूप से पत्नी एवं पति के प्रेम के विप्रलंभ श्रृंगार के माध्यम से जीव-ब्रह्म की संयोग-वियोग की स्थिति का वर्णन किया है।[2]

---

[1] रूप अनुप महबूब कारे, देखि देखि बन्दे सुख होई।
दुनि के स्वाद की चाह हवै, चाह दीदार की हवै कोई।।
-मीतादास, हर्णि०ग्रंथ, दोहा संख्या-१२८८।

[2] कह सखि, अमन, धनमानि सबै सुख तु धरि।
-वही, दोहा संख्या-१३३३।

मीता साहब ने कोयल की पी कहं, पी कहं की धुनि को भी अपने श्रृंगार के वियोग पक्ष का प्रमुख विषय बनाया लेकिन उसे योग की दिशा में स्वीकार किया । प्रियतमा का मायके में मन न लगना, उसे अपने प्रियतम की ही धुनि लगाना प्रेमी हृदय के मधुर प्रेम की पराकाष्टा है । परब्रह्म के वियोग में सूखकर कांट जैसी बनी प्रियतमा अपने मन में विरह की अग्नि को आठो पहर प्रज्वलित रखती है । अन्त में प्रिय के साथ भंवरी रचाकर वह सदा के लिये मायका के आवागमन को भुला देती है । वास्तव में मीता साहब ने श्रृंगार की इस अभिसमय के माध्यम से नाभि की कुण्डली शक्ति को परब्रह्म से मिलन का संकेत देते हुए योग का वर्णन किया है[१]।

दार्शनिक बोध:

मीता साहब ने निर्गुण संतों के दर्शन की पद्धति को अपनाया जिसका विस्तृत वर्णन दार्शनिक निरुपण के प्रकरण में किया गया है ।

सौन्दर्य बोध:

किसी के सौन्दर्य का बोध हमें उसके सुन्दर गुणों के कारण होता है । कोई भी वस्तु किसी विशिष्ट व्यक्ति के लिए तभी सुन्दर लगती है जब वह उसकी ओर आकर्षित हो जाय । जहां एक ओर सौन्दर्य को भौतिक जगत की एक परम वस्तु माना जाता है वहीं दूसरी ओर इसे मानसिक या आध्यात्मिक वस्तु के रूप में स्वीकार किया गया है ।

---

[१] अब ना नैहर मन लागे, पिया पिया धुनि लागी ।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-१६८५ ।

विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार करने पर सौन्दर्य की विभिन्न अनुभूतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। उत्पत्ति, स्वरूप एवं आकर्षण सौन्दर्य की तीन विशिष्ट अनुभूतियां है। सौन्दर्य के द्वारा मन एक स्थान पर केन्द्रीभूत हो जाता है। यही परमानन्द की चरमावस्था है। भिन्न-भिन्न विद्वानों ने सौन्दर्य की मीमांसा अपने-अपने ढंग से की है। श्रृंगार रस के रीतिकालीन कवि बिहारी जी के अनुसार सुन्दर और असुन्दर वस्तु के बीच कोई प्रामाणिक रेखा नहीं है जिसका एक पटल सुन्दर हो तथा दूसरी असुन्दर। मन के अनुसार जो सुन्दर लगता है वह सुन्दर है जो मन को आकर्षित नहीं करता वह सुन्दर नहीं है। कवि बिहारी लाल जी उसी को सुन्दर कहते हैं जिसमें नित्य प्रति नवीनता हो, परिवर्तन हो, नवीन चेतना हो, यदि उसमें नित्य प्रति नयी चेतना न हो तो वह जड़ हो जायगी। इस प्रकार बिहारी लाल जी की परिभाषा सत्यं-शिवं सुन्दरम् से सर्वथा भिन्न जान पड़ती है। जहां सुन्दर सदा सत्य शास्वत एवं स्थायी अनाशवान है वहीं बिहारी जी का सुन्दर तत्व सदा चिरनवीन, परिवर्तनशील है।

छायावाद के देवदूत श्री जयशंकर प्रसाद जी चेतना के उज्वल वरदान को ही सौन्दर्य मानते हैं। उनके सौन्दर्य की चेतना का सम्बन्ध केवल चित से ही नहीं है वरन् सत्-आनन्द से भी सम्बन्धित है जिसके कारण सौन्दर्य का वास्तविक रूप सच्चिदानन्द में लीन हो जाना है। प्रसाद जी ने सौन्दर्य के भौतिक रूप को स्वीकार करने के साथ-साथ उसके आध्यात्मिक स्वरूप पर भी विचार किया है।[1]

प्रसिद्ध संत कवि सूरदास ने 'उस परम आकर्षण को' सौन्दर्य के रूप में स्वीकार किया है, जिसको देखकर मनुष्य किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है।[2]

---

[1] उज्वल वरदान चेतना का सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं - जयशंकर प्रसाद, कामायनी।

[2] बूझत श्याम कौन तु गोरी। - सूरदास।

भक्त गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'सौन्दर्य' को केवल दृष्टिपरक नहीं वरन् उसे आत्मा की अनुभूति से जोड़ा है जिस सौन्दर्य से मन के अंदर 'आत्म-सुख' की अनुभूति हो वही वास्तविक सौन्दर्य है । इसी सौन्दर्य की उपलब्धि के लिये जीव सदा संघर्षमय रहता है ।[1]

सौन्दर्य का शिव और सत्य से सम्बन्ध:

सौन्दर्य शिव और सत्य का ही अपर रूप है । सत्य, शिव और सुन्दर तीनों मिलकर अखण्ड सत्य के रूप को प्रदर्शित कर पाते हैं जहां अद्वैतवाद में केवल ब्रह्म को सत्य माना गया वहीं दूसरी ओर सांख्य मत में पुरुष और प्रकृति को सत्य के रूप में स्वीकार किया गया । राम-कृष्ण के भक्त-अनुयायियों ने ब्रह्म, जगत और जीव तीनों को सत्य मानकर ईश्वर की तात्विक अनुभूति का वर्णन किया गया है । इस प्रकार सत्य, शिव और सुन्दर का सम्बन्ध ही परम तत्व के स्थायीत्व का दिग्दर्शन कराता है । अत: वास्तव में जो कल्याणकारी और सत्य है, स्थायी है, वही सुन्दर है । अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक परब्रह्म सच्चिदानन्द तभी सत्यं शिवं सुन्दरम् की स्थायी स्थिति को प्राप्त होता है ।

पाश्चात्य विद्वानों ने भी सौन्दर्य की अटूट सत्ता में अपने विभिन्न विचार व्यक्त किये हैं । प्रसिद्ध ग्रीक दार्शनिक प्लेटो ने सौन्दर्य, सत्य और शिव की भावना को आवश्यक माना है । यही कारण है कि वे कविता (पोयट्री) को जो सौन्दर्य की मधुर-स्मृति का प्रतिरूप है पूरे समाज को विकृत करने की एक वस्तु मानते हैं । इसमें सत्य एवं शिव की भावना निहित नहीं है वे कविता को सत्य

---

[1] रहि विधि उपजै लच्छ जब --------। गोस्वामी तुलसीदास ।

की अनुकृति की अनुकृति के रूप में स्वीकार करते हैं । प्लेटो ने सौन्दर्य के मूल रूप ईश्वर, उसकी अनुकृति सारी सृष्टि में एवं काव्य-सौन्दर्य की सृष्टि की अनुकृति के रूप में स्वीकार किया है । इस प्रकार लौकिक सौन्दर्य अपने वास्तविक रूप से तीन स्तरों तक दूरस्थ होता गया है । प्लेटो स्पष्ट रूप से सौन्दर्य के सम्बन्ध में अपने मत को व्यक्त करते हुए [illegible] है कि "सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त सौन्दर्य का आदर्श एक है । इसी [illegible] शिवत्व का आदर्श, सत्य का आदर्श और आनन्द का आदर्श एक-एक होत[illegible] । संसार में जहां [illegible] वस्तु-सौन्दर्य व्यक्त होता है वह उस मूल अव्यक्त सौन्द[illegible] की छाया मात्र होत[illegible] है । जो व्यक्ति उस वस्तुगत सौन्दर्य की भावना के सहारे वैसी ही सृष्टि में प्रवृत्त होता है वह वस्तुत: मूल सौन्दर्य की छाया का अनुकरण करता [illegible] जो इस मानव सृष्टि को अन्य कौशल से प्रस्तुत करता है वह स्पष्टत: मू[illegible] सौन्दर्य की छाया की छाया या अनुकृति निर्मित करता है ।"[१]

प्रसिद्ध अंग्रेजी कवि विलियम वर्ड्स वर्थ ने भी सौन्दर्य की [illegible] को लौकिक रूप में नहीं अपितु अखण्ड ब्रह्माण्ड के सौन्दर्य के रूप में ही [illegible] किया है । विलियम वर्ड्स वर्थ ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया [illegible] जैसे-जैसे ईश्वरी सत्ता से दूर हटता जाता है वैसे-वैसे तात्विक सौन्दर्य के आकर्षण को भूलता जाता है तथा उसके स्थान पर लौकिक सौन[illegible] उन्मुख होता जाता है । यही कारण है कि बालक अलौकिक [illegible] लौकिक सौन्दर्य की अपेक्षा अधिक आकर्षित होता है क्यों[illegible]

मनुष्य की अपेक्षा ईश्वर से कहीं अधिक निकट है।[1]

प्रसिद्ध दार्शनिक हीगल ‘विचारों की भावनात्मक अभिव्यक्ति’ को ही सौन्दर्य का प्रारूप स्वीकार करता है।[2]

सौन्दर्य के महान उपासक ग्रीक कवि कीट्स ‘सत्य’ और ‘सुन्दरता’ दोनों को एक दूसरे का समरूप मानता है।[3] वह ‘सदा समान रूप से स्थायी रहने वाली सुन्दरता’ को ही सुन्दर मानता है। अपनी कविता Ode on a

---

[1] Our birth is but a sleep and a forgetting;
The Soul that rises with us, our life's Star,
Hath had elsewhere its setting,
And cometh from afar:
Not in entire forgetfulness,
And not in utter nakedness,
But trailing clouds of glory do we come
From God, who is our home:
Heaven lies about us in our infancy?
Shades of the prison-house begin to close
Upon the growing Boy,
But He beholds the light, and whence it flows,
He sees it in his joy;
The Youth, who daily farther from the east
Must travel, still is Nature's Priest,
And by the vision splendid
Is on his way attended;
At length the Man perceives it die away,
And fade into the light of common day.

William Wordsworth, Ode: Intimations of Immortality From Recollections of Early Childhood, 'William Wordsworth An Evaluation of His poetry (Ramji Lal), Chapter 19, p. 173.

[2] डा० सरनाम सिंह शर्मा, कबीर व्यक्तित्व एवं सिद्धान्त, पृ०-५३३ ।

[3] O Attic shape ? Fair attitude? with bred
Of marble men and maidens overwrought,
With forest branches and the trodden weed;
Thou, silent form, dost tease us out of thought
As doth eternity: Cold Pastoral ?
When old age shall this generation waste,
Thou shalt remain, in midst of other woe
Than ours, a friend to man, to whom thou say'st,
'Beauty is truth, truth beauty; - that is all
Ye know on earth, and all ye need to know.

John Keats, Selection from Keats, 'Ode on a Grecian Urn', Ed.by Frank D'Souza & V.H.Kulkarni, Chapter 6, p. 127.

Gracious Urn में कीट्स अलौकिक सुन्दरता एवं अकथनीय सौन्दर्य को लौकिक सुन्दर से श्रेष्ठ एवं उसे बाह्य इन्द्रियों का विषय नहीं मानता है।[१] वह उसी को सुन्दर एवं आनन्ददायक स्वीकार करता है जो सदा शास्वत एवं चिर अस्थायी है। परिवर्तनशील वस्तु उसकी दृष्टि में सुन्दर नहीं है।[२] वह सुन्दर ही सत्य है और सत्य ही सुन्दर है कि भावना को ही स्वीकार करता है। वह कहता है कि `संसार में जो कुछ समझा जाता है यदि वह सत्य है तभी सुन्दर है और वह तभी सुन्दर है जब सत्य है।` वह इस लौकिक सांसारिक सुन्दरता का परित्याग कर उसे भुलाकर उस असीम सत्ता की सुन्दरता में अपने आपको डुबा देना चाहता है।[३]

१

Heard melodies are sweet, bur those unheard
   Are sweeter; therefore, ye soft pipes, play on;
Not to the sensual ear, but; more endear'd,
   Pipe to the spirit ditties of no tone:
Fair youth, beneath the trees, thou canst not leave
   Thy song, nor ever can those trees by bare;
   Bold Lover, never, never canst thou kiss,
Though winning near the goal-yet, do not grieve;
   She cannot fade, though thou hast not thy bliss,
For ever wilt thou love, and she be fair.
-John Keats-

Selections from Keats,'Ode on a grecian urn',Ed.by Frank D'Souza & V.H.Kulkarni, Chapter 6, p. 127.

2

Ah, happy, happy boughs? that cannot shed
   Your leaves, nor ever bid the Spring adieu;
And, happy melodist, unwearied,
   For ever piping songs for ever new;
More happy love 1 more happy, happy love
   For ever warm and still to be enjoy'd,
     For ever panting, and for ever young;
All breathing human passion far above,
   That leaves a heart hish-sorrowful and cloy'd,
     A burning forehead, and a parching tongue.
-John Keats-

Selection from Keats, 'Ode on a grecian urn', Ed. by Frank D'Souza & V.H.Kulkarni, Chapter 6, p. 126-27.

3

O Attic shape Fair attitude with brede
   Of marble men and maidens overwrought,
With forest branches and the trodden weed;
   Thou, silent form, dost tease us out of thought
As doth eternity: Cold Pastoral

सौन्दर्य की भूमिकाएं:

सौन्दर्य का कथानक बहुत विशद नहीं है । उसके दो रूप स्वीकार किये जा सकते हैं (१) प्रत्यक्ष (२) अप्रत्यक्ष ।

(१) प्रत्यक्ष धरातल:- प्रत्यक्ष रूपों में प्रकृति का सौन्दर्य जैसे रात्रि में तारों का टिमटिमाना, चांद की दुधिया चांदनी, उषा की लाली आदि प्रमुख है । जीव जन्तुओं का चहचहाना, बालक, युवा, युवतियों का नाना प्रकार से क्रीड़ा करना एवं उनके नाना प्रकार के शिल्प, नाट्य, संगीत, चित्र, काव्य आदि सौन्दर्य के प्रत्यक्ष धरातल है ।

(२) अप्रत्यक्ष धरातल:- सौन्दर्य का अप्रत्यक्ष धरातल भावसौन्दर्य की पृष्ठभूमि में पल्लवित होता है । इसका चर्मोत्कर्ष विकास मनुष्य के भाव-वितान पर निर्भर करता है ।

मीरा का सौन्दर्य बोध साधारण स्तर का नहीं है । वह इन्द्रियों से परे की अनुभूति है । जिस अनुपम महबूब के प्रेम के मद में उन्मत्त होकर मीरा साहब आत्मविभोर हो जाते हैं । वह भाव सौन्दर्य है जो अलौकिक ब्रह्म के प्रेम-धरातल पर अंकुरित होता है । इस अलौकिक भाव-सौन्दर्य की अनुभूति इन्द्रिय जनित नहीं है । वाह्य क्रियाओं से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है । उस अलौकिक

(Continued from previous page)

When old age shall this generation waste,
Thou shalt remain, in midst of other woe
Than ours, a friend to man, to whom thou say'st,
'Beauty is truth, truth beauty,'-that is all
Ye know on earth, and all ye need to know.

-John Keats-

Selections from Keats,'Ode on a Grecian Urn', Ed. by Frank D'Souza & V.H.Kulkarni, Chapter 6, p. 127.

सत्ता के परम सौन्दर्य का बोध करना इन्द्रियों के व्यापार से परे है । उसका सौन्दर्य अनुपम है।[१] उस अखण्ड जगदीश्वर का सौन्दर्य-माधुर्य आसानी से नहीं प्राप्त हो सकता । पांचों इन्द्रियों को वश में करके उससे प्रेम करने से ही उसके अलौकिक रूप का दर्शन सदाम हो सकता है ।[२]

अनूप ब्रह्म का रूप लौकिक नहीं है । वह निराकार निरालंब है । उसका रूप-माधुर्य अलौकिक अपरम्पार है । उसके सौन्दर्य सत्ता को समझ लेने पर जीव का संसार से आवागमन अवरुद्ध हो जाता है । मीता साहब का परब्रह्म असाधारण है । वह देवों का परमदेव हैं । सौन्दर्य के साथ-साथ वह सारे ब्रह्माण्ड का शासक भी है । उसके सत्य नाम का एकबार भी स्मरण हो जाने पर जीव आवागमन के झूले में झूला झूलने से बच जाता है । उसकी दिव्य जगमगाती ज्योति को देखकर जीव का मन उसमें रम जाता है । वह भी उसमें रमकर ब्रह्ममय हो जाता है ।[३] मीता साहब का परब्रह्म केवल सुन्दर ही नहीं अपितु उसमें लौकिक पुरुष की भांति पौरुष भी है । जीवरूपी दुल्हन से भंवरी रचाकर वह अपनी प्रियतमा के साथ दाम्पत्य प्रेम के परमानन्द का स्वाद लेता है ।[४]

---

[१] रूप अनूप महबूब का काया धरी नाय ।
तन साधे सो पाइया मीता देखै बजाय ।।
-मीतादास, हस्तलि०ग्रंथ, दोहा संख्या- १५६३।

[२] रूपरेख जीव के नहीं, है छवि अगम अपार ।
कहै मीता जो लखियो, बहुरि न आवै पार ।
- वही, दोहा संख्या- २३११ ।

[३] झूला झूलते बाचा, जपा जब नाम नित साचा ।
झलका झलकि ब्रह्म सों लाया, झलका छवि देखि मन भाया ।
- वही, दोहा संख्या- 2322 ।

[४] आनंद मंगल गाइया पार पै बात
ज्ञान निरंजन सोधिया, मूठे लिखि पाति ।
- वही, दोहा संख्या- २३२६।

मीता साहब के ब्रह्म की मूर्ति बहुत ही विशाल है । उनके रूप की सुन्दरता के आगे करोड़ों कामदेव की सुन्दरता नगण्य है उनके इस अनूप लावण्य के तेज के समक्ष करोड़ों सूर्य और चन्द्र का तेज फीका पड़ जाता है[1] । ब्रह्म के निवास स्थान पर घनघोर गगन-गर्जन, सूर्य का अलौकिक प्रकाश, तारागण आदि का जगमग प्रकाश उसके अलौकिक सत्ता के सौन्दर्य के केन्द्र विन्दु हैं । उस अलौकिक सत्ता के परम सौन्दर्य को शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता । वह अकथ्य है, अनुभूतिमय है, स्वरातीत है[2] ।

मीता साहब ईश्वर के अनुपम सौन्दर्य को सुधारस के नाम से सम्बोधित करते हैं । मूल में हठाकर्षण विधि से अपने घट में रासायनिक क्रिया के फलस्वरूप कुण्डलिनी के नाद स्वरूप इस सुधारस की उत्पत्ति होती है[3] । मीता साहब का सौन्दर्य-दर्शन प्रसिद्ध दर्शनशास्त्री बेसाके (   ) के सौन्दर्य दर्शन की परिभाषा के समतुल्य है । बोसांके के अनुसार सौन्दर्य को दर्शन का एक प्रमुख विषय मान सकते हैं क्योंकि सौन्दर्य की सत्ता ज्ञान के निमित्त होती है । उससे व्यवहारिक पथ-प्रदर्शन की आशा नहीं रखनी चाहिए । मीता साहब ने भी अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक के सौन्दर्य की अनुभूति ज्ञान के चक्षुओं से किया है ।

---

[1] (क) राम रूप विशाल मूरत, केहि बिधि देखन पाइये ।
-मीतादास, ह०लि०ग्रं, दोहा संख्या-२४०१ ।

(ख) रूप सांचा अगम बादा कोटिन काम लजाइयो ।
कोटिन शशि और सूर बारी, कोटिन मां कोई पाइयो ।।
- वही, दोहा संख्या- ४८७ ।

[2] (क) सहज शून्य समान मनुवा उन मुनि लागी रहे ।
- वही, दोहा संख्या- ४८६ ।

(ख) तहां उठे अनहद ज्ञान अनशन ज्योति जगमग हवे रहे ।
-वही, दोहा संख्या- ४८३ ।

(ग) गूंगा मिसरी खाय मीता, स्वाद के कैसे कहे ।
-वही, दोहासंख्या- ४८१ ।

[3] हरिनाम सुधारस पीजै रे, ताजे जुग-जुग जीजै रे ।
-वही, दोहा संख्या-२६६ ।

क्योंकि ब्रह्म के अनुपम सौन्दर्य की अनुभूति ऐन्द्रिय चक्षुओं से सम्भव नहीं है । अत: सौन्दर्य का वास्तविक आधार किसी तत्व की प्राचीनता या नवीनता में निहित नहीं है अपितु ऐसे तत्वों में निहित है जो सौन्दर्य के शास्वत प्रतीक हैं ।

चरित्र चित्रण:

मीता साहब के पदों, दोहों में आये हुए चरित्र रूपों का चरित्र चित्रण करने के पहले हमें उनकी कृतियों को, काव्य का रूप देना होगा । काव्य में आये हुए नायक, नायिका, खलनायक, सहनायक आदि पात्रों का चरित्र-चित्रण काव्य के परम तत्व हैं ।

मीता साहब के पदों, दोहों आदि के तत्वों पर यदि हम विचार करें तो वे एक महत्वपूर्ण काव्य के विषय बन सकते हैं । मीता साहब के काव्य में नायक ही प्रत्येक काव्य का महत्वपूर्ण अंग होता है । वही काव्य की आत्मा है, बिना नायक के किसी भी काव्य का सृजन सम्भव नहीं है ।

मीता साहब ने काव्य की परम्परा के अनुसार नायक में उदात्त गुणों का समावेश किया है । उनका नायक परम साधारण, राजा-महाराजा, देवी-देवता नहीं बल्कि साक्षात ब्रह्माण्ड का स्वामी अखण्ड नायक परमब्रह्म है जो सर्वगुण सम्पन्न है । उस अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक के गुणों की चर्चा करना वाणी से परे है । फिर भी सामान्य लौकिक नायक के गुणों की कसौटी पर ब्रह्म के कुछ गुणों का दिग्दर्शन मीता साहब ने कराया है ।

अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक वास्तव में सर्वश्रेष्ट एवं अग्रगण्य है । वह सामान्य वर्ग की तरह सामान्य रूप से अप्राप्य है[१] । वह अखण्ड नायक कुरुप नहीं, बल्कि

---

[१] आदि पुरुष नैनन लखा, सब देवन का देव ।
कह मीता उस अलख है विरला पावै भेव ।।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-१३७८।

सुन्दरता में करोड़ों कामदेव एवं सूर्य तथा चन्द्र की अलौकिक आभा से भी अधिक प्रकाशवान है ।[1]

उसका रूप इतना सुन्दर है कि जिसका वर्णन शब्दों में सम्भव नहीं है । `राम रूप विशाल मूरत, केहिं विधि देखन पाव्यो ।`[2] वह नायक ब्रह्म का स्वरूप दिव्य और निराकार है । उसे हाड़-मांस के बने हुए इस शरीर में कल्पित नहीं किया जा सकता । वह कायाधारी नहीं है ।[3] यह अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक आदि एवं अखण्ड है । यह अविनाशी है । यह पौराणिक नाशवान महापुरुषों से श्रेष्ठ है ।

मीता साहब के अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक का निवास भौतिक तत्वों से निर्मित महल में नहीं है वरन् वह अन्दर अष्ट कमल दल में सदा वास करता है ।[4] नायक ब्रह्म केवल अपनी प्रजा - जीव को अपने घर पर कष्टों का निवारण करने हेतु आने पर साधारण राजा की तरह केवल कुछ दाणों के लिए ही उनके कष्टों को दूर नहीं करता बल्कि सदा के लिये जीव को उसके आवागमन से मुक्त कर देता है ।[5] अपने प्रजा पर आये हुए कष्ट को नायक ब्रह्म इच्छा मात्र से ही दूर कर

---

[1] कोटि भानु छबि ना जुरे, ते देवन के देव ।
सो मीता पहचानिया, सद्गुरु केरि सेव ।।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-१७५६।

[2] रूप सांचा अगम वाढ़ा, कोटि काम लजावनी ।
कोटिन शशि और सूर वारी, कोटिन मां कोई पाव्यो ।।
-वही, दोहासंख्या-५८७।

[3] रूप अनूप महबूब का कायाधारी नाय ।
-वही, दोहासंख्या-१५५३।

[4] द्वादश कंवल जीव का वासा ।
अष्ट कंवल दल ब्रह्म निवासा ।।
- वही, दोहा संख्या-७६८ ।

[5] जीव ब्रह्म को स्वयं करई ।
कह मीता ते प्राणी तरई ।।, वही, दोहा संख्या-७६९ ।

कर देता है । वह सर्व शक्तिमान है । अपनी इच्छा शक्ति के बल पर वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का सृजन, पालन व संहार करता है।[1]

मीता साहब को नायक ब्रह्म, दयावान, शरणागत-वत्सल भी है । वह भवसागर में डूबते हुए जीव को काम,क्रोध, रूपी घड़ियाल से रक्षाकर उन्हें सद्मार्ग की ओर प्रेरित करता है।[2] नायक परब्रह्म का विवाह उस जीव रूपी दुल्हन के साथ होता है जो मूलाधार की कुण्डलिनी शक्ति को ब्रह्म से मिलाने को उद्यत रहती है । मूलाधार चक्र में पांचों इन्द्रियों को केन्द्रित करके एवं उसकी पांचों प्रकृतियों को बांधकर जब जीव का परिणय ब्रह्म से होता है तो ब्रह्म नायक का मधुर स्नेह, अपनी प्रियतमा जीव से अटूट हो जाता है । वह घट से निकली हुई कुण्डलिनी शक्ति को अपने में समाहित करके जीव के आवागमन को समाप्त कर देता है । उसका प्रेम ही जीव के प्रति असीम है । जीव सदा उसके विरह के वियोग में पिया-पिया की धुनि लगाता है । प्रियतम ब्रह्म के साथ जीव का एक बार का साक्षात्कार ब्रह्म की असीम प्रेम का परिचय देता है । उसके असीम प्रेम के कारण जीव का मन उसके पितृ-प्रदेश नैहर में नहीं लगता।[3] इस प्रकार हम देखते हैं कि मीता साहब ने नायक के सभी गुणों का समायोजन कर परब्रह्म को एक वास्तविक नायक के रूप में चित्रित किया है ।

---

[1] राम न काहू के दादा, ना उन बेटा रे ।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-७५१ ।

[2] नदी एक बाढ़ी अगम अपार ।, वही, दोहा संख्या- १६२८ ।

[3] अब ना नैहर मन लागे ।
मुहि पिया-पिया धुनि लागी ।।
- वही, दोहा संख्या- १६८५ ।

नायिका:

नायक की भांति नायिका भी काव्य के लिये अनिवार्य अंग है । मीता साहब ने जीव को नायिका के रूप में स्वीकार किया है । नायिका में सौन्दर्य के प्रति आकर्षण की जो अनुभूति होनी चाहिए उसका सफल प्रयोग मीता साहब ने किया है । उनकी नायिका अपने प्रियतम के अनुपरूप को बार-बार देखकर उसके सुख-चैन में विभोर रहती है । उसे केवल अपने प्रियतम के दर्शन की चाह है । उसका ध्यान,ज्ञान, भक्ति, तीर्थ-व्रत आदि सब उसके प्रियतम में केन्द्रित है । वह अपनी प्रियतम के नैत्रों से नैत्र मिलाकर सांसारिकता को भूल जाती है ।[१]

मीता साहब की नायिका जीव का विवाह परब्रह्म से रचा जाता है । विवाह के लग्न, मुहूर्त की स्थिति का विवेचन करते हुए मीता साहब कहते हैं कि अगणित बाजों की मधुर ध्वनि सुनाई दे रही है । हल्दी-उपटन के द्वारा नायिका का शरीर पीले वर्ण का हो गया है । नायिका को अपने नैहर का माया-मोह छोड़कर प्रियतम परब्रह्म के घर अपनी ससुराल में जाना है । इस चिन्ता व दु:ख के कारण उसका शरीर सूखकर कांटा बन गया है । उसके मन में प्रेम की विरहाग्नि रात-दिन जल रही है । लगता है वह अपने प्रियतम के वियोग में जलकर अपने अस्तित्व को समाप्त कर देगी । क्योंकि उसका परिणय बहुत दूर अष्ट कंवल दल के निवासी परब्रह्म से हुआ है । जहां से लौटकर आना सम्भव नहीं है ।

मीता साहब की नायिका (जीव) बहुत सुलज्जवती लज्जावान है । सांसारिकता का घूंघट उसके मुहं पर सदा बना रहता है । वह अपने गुरु

---

[१] रूप अनूप, महबूब का रे ।
देखि देखि, बन्दे-सुख चैन होई ।।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-१२८८।

(धार्मिक अभिनेता) के समझाने-बुझाने पर अपने घूंघट को हटाकर अपने प्रियतम ब्रह्म का दर्शन करती है तथा अपने आपको सुहागिन मानती है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नायिका - जीव का वर्णन भीखा साहब ने लौकिक परम्पराओं के अनुरूप किया है ।

खलनायक:

'संघर्ष ही जीवन है ।' नायक को अपने मार्ग में खलनायक के कार्य-कलापों द्वारा जब तक कठिन संघर्ष झेलना नहीं पड़ता । उसकी सुवर्ण परख नहीं हो पाती । अतः खलनायक के चरित्र का काव्य में उतना ही महत्व है जितना कि नायक के चरित्र का ।

भीखा साहब ने माया को ही सबसे प्रमुख खलनायक के रूप में चित्रित किया है । माया के विभिन्न रूप हैं जो जीव को ब्रह्म से मिलने नहीं देते । हरि से विमुख व्यक्ति भी खलनायक का काम करते हैं । ये जीव को ब्रह्म से मिलने नहीं देते, भगवत् भजन में बाधा पहुंचाते हैं ।[१] पांचों इन्द्रियां व उनकी पचीस प्रकृतियां भी खलनायक का काम करती हैं । इनको वश में करने पर ही ईश्वर से साक्षात्कार सम्भव है ।[२]

---

[१] सुज्जन बादी सो का बोले, ताले भले आके ठे ।
-भीखादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या- १७५५ ।

[२] (क) पांचो मारि पचीसो लूटे, तब वा धर का चोड़ रे ।
-वही, दोहा संख्या- ११०८ ।

(ख) मन चंचल निश्चय करि राखै, तब मरना ना होई ।
-वही, दोहा संख्या- १५६७ ।

मीता साहब ने ब्रह्मा, विष्णु और शिव को भी खलनायक के रूप में चित्रित किया है क्योंकि ये लोग `जीव` को भ्रम जाल में फंसा-फंसा कर मार डालते हैं। पाप-पुण्य से युक्त कर्मों का नाश करने से ही ब्रह्म की उपलब्धि हो सकती है। लेकिन ये त्रिदेव पाप-पुण्य के क्रिया-कलापों में जीव को फंसाकर उसे आवागमन के कार्य से मुक्त नहीं कर पाते।[1]

मीता साहब संसार के सुख, ऐश्वर्य को भी खलनायक के रूप में चित्रित करते हैं। `सम्पत्ति का सुख ईश्वर से मिलने में दुःख का कारण बन जाता है। जीवरूपी दुल्हन अपनी ननद (पचीस प्रवृत्तियां) के कलह के कारण अपने प्रियतम से नहीं मिल पाती। एक क्षण के लिये भी जब वह अपने प्रियतम से संयोग करने सेज पर जाती है तो उसकी सास उसे बुलाकर उसकी प्रणय लीला में बाधा पहुंचाती है क्योंकि दुल्हन के विरह के दर्द को वह खलनायिका- सास क्या जाने, लेकिन प्रेम की पराकाष्ठा विरह तत्वों पर ही निर्भर है। इन खलनायक व खलनायिकाओं के किये गये कष्टों को सहते हुए अपने प्रियतम के सच्चे प्रेम का स्मरण कर नायिका सदा उनसे मिलने को लालायित रहती है।[2]

संसार में खलनायकों की कमी नहीं है। इन खलनायकों ने अपने दुर्गुणों का बाजार लगा रखा है और सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि इनमें कोई सच्चा दिखाई नहीं देता, ये इतने पाखण्डी हैं कि इनसे तरने की आशा करना व्यर्थ है। ये संतों की निन्दा पाखण्डियों की पूजा करते हैं। इनके सारे कार्य मनुष्य को नरकगामी बनाते हैं।

---

[1] एक नउवा दुय बाभ्या, जगु में आप फसे जग फांधा रे।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-३०५३।

[2] वह सखी अनमन धनमानि सबै सुख तु अरी।
- वही, दोहा संख्या- ३२३।

मीता साहब ने खलनायक की श्रेणी में काम, क्रोध, मद, लोभ आदि को भी माना है । इस संसार सागर में काम, क्रोध रूपी घड़ियाल जीव को अपने ब्रह्म से मिलने में बहुत ही बाधक है । इस बढ़ी हुई नदी में माया मोह के दो किनारे हैं । इनमें रहने वाले काम-क्रोध रूपी घड़ियाल इनसे मिलकर जीव को संसार सागर में डूब मरने के लिये बाध्य कर देते हैं[1] ।

सहनायक या चरित्र नायक:

मीता साहब ने सहनायक के रूप में गुरु तत्व को स्वीकार किया है । बिना गुरु के जीव को ईश्वर के निवास स्थान अष्ट कंवल दल का पता नहीं चल सकता[2] । बिना सहनायक - `सतगुरु` के परब्रह्म की उपलब्धि सम्भव नहीं है । जो बिना गुरु के ऐसा करने का प्रयास करता है उस वीर पुरुष की अन्त में बड़ी दुर्गति होती है[3] ।

---

[1] नदी एक बाढ़ी, अगम अपार, माया मोह है कगार ।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-१६२८ ।

[2] मुल्ला पढ़े कुरान का, पंडित भाखे वेद ।
पीरगुरु बिना मिले वा घर [illegible] भेद ।,वही, दोहा सं०-१३११ ।

[3] सतगुरु बिनु रामै वहे मुख में पारिखैं झारि ।
कह मीता ते नरक है जे सतगुरु ते न्यारि ।।
-वही, दोहा संख्या- १७१६ ।

पंचम प्रकरण

रस परिपाक

रस परिपाक

संत मीता के काव्य में रसराज:

विद्वानों से श्रृंगार रस को रसों का राजा माना है । मीता साहब ने श्रृंगार का प्रयोग लौकिक भावों में नहीं वरन् अखण्ड ब्रह्म से संयोग-वियोग के अलौकिक तत्वों के रूप में किया है जिसका विशेष वर्णन प्रकरण -४ में किया जा चुका है ।

संत मीता साहित्य में विभिन्न रसों की योजना:

मीता साहब ने अपने वाणी साहित्य में लगभग सभी प्रकार के रसों का समावेश किया है ।

(१) करुण रस:- प्रिय वस्तु अथवा व्यक्ति के विनष्ट हो जाने पर जो विषाद का भाव उत्पन्न होता है वही करुण रस की अभिव्यंजना है । मीता साहब पति के मृत्योपरान्त पत्नी को परम्परागत रूप से चिता में व्यथित दृश्य का एक कारुणिक दृश्य प्रस्तुत किया है -

मृत्युक संग जो तनु नारी, ते बकोरानि होवहे नारी ।

उपर्युक्त पद में पति के मृत्योपरान्त पत्नी विलाप करती हुई शोक सागर में निमग्न है जिससे करुण रस की व्यंजना होती है । यहां पर स्थायी भाव शोक है । शोक स्थायी भाव को आश्रय पत्नी एवं आलम्बन पति है । पतिका पार्थिव शरीर और दु:खमय संसार उद्दीपन है । पत्नी का विलाप करना अनुभाव है । विषाद, चिंता, दैन्य आदि संचारी भाव हैं । इस प्रकार के करुण रस का विवेचन मीता साहब ने अपने काव्य में अनेक स्थलों पर किया है ।

(२) <u>वीर रस</u>:- वास्तव में शत्रु की ललकार पर आनन्द भावना संयुक्त होकर कर्म क्षेत्र में प्रवृत्त होने का नाम वीर रस है। मीता साहब ने वीर रस का प्रयोग सांसारिक शत्रुओं के नाश के निमित्त नहीं किया है। वे वीर रस में उन्मत्त होकर काम, क्रोध, मद, लोभ जैसे शत्रुओं के नाश में उत्साहित करते हैं। उनके वीर रस कुण्डलिनी से निकली हुई प्राण को अंक प्रदेश में अहं प्रवृत्तियों से युद्ध कर अखण्ड ब्रह्म से मिलन में सहायक होता है।[१] मीता साहब वीर रस में जीव को डुबो देना चाहते हैं। शत्रुओं को पराजित करने के निमित्त वे युद्ध में जाने की तैयारी करते हैं। स्वस्थ घोड़े पर जीन कसकर चाबुक से घोड़े को कसकर कठिन लगाम लगाकर एड़ मारकर, तलवार और ढाल से लैस होकर धनुष-बाण से क्रोधरूपी दुश्मन को वे मारते हैं। वे युद्ध में काल से युद्ध करते हैं एवं उसका विनाश कर अपने परम लक्ष्य को प्राप्त करते हैं। दुश्मन के साथ घमासान युद्ध करने पर तब उन्हें अपने प्रियतम की उपलब्धि होती है।[२] वीर रस में उन्मत्त होकर दुश्मनों को ललकारना एवं उन्हें समूल नष्ट करने का उद्देश्य वीर रस का

---शेष--------

[१] जोहर ते या जोग कठिन है जाने जानन हारे।
ज्ञान खरग ले धसै महल का, सीस देहि बहि डारे।।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या- ।

[२] धरनि को बांधि, मूल मां माड़िके, मदन को ओरि जब रैन जागा।
नींद और भूख तहां छिन्न खण्डित भई।
पांच पचीस का सख्ज बांधा। हरा घोड़ा लिया, जीन मुक्त किया, चित्त चाबुक किया, प्रेम लगाम दै ऐड़ लाये। तत्व खरग किया सील का सेला किया निरति कमान लै, सुरति के बान सो क्रोध मारा कालु लरता हुआ जक्क पूरा किया काल को जारि घर अमर पाये। सोलि खिरकी दई, बूर भागत हुये, सन्त सूर कोई मने आये। सुख पूरा भया, दुख दूरी भये। ब्रह्म को भेट जग नाहीं आये। पहुंच मीता कहे, सुनि झूठ कहे जीत मैदान मता गरु पाये।

परिपूर्णावस्था निरूपण किया है । मीता साहब काम, क्रोध दोनों शत्रुओं को पकड़कर उनका अन्त कर देना चाहते हैं[1] ।

(3) रौद्र रस:- शत्रुओं की चेष्टाओं, ललकार, अपमान, गुरुजनों की निन्दा आदि के फलस्वरूप जाग्रत क्रोध ही रौद्र रस है । मीता साहब दुष्टों की मिथ्या एवं पापमय कृतियों को देखकर रौद्र रस का प्रयोग करते हुये क्रोध से थरथराती हुई वाणी में दुष्टों को सम्बोधित करते हैं[2] ।

(4) भयानक रस:- भयप्रद दृश्य को देखने, सुनने, स्मरण करने अथवा उसकी प्रतीति से उत्पन्न भय का स्थायी भाव भयानक रस की अनुभूति कराता है इसका स्थायी भाव भय है । मीता साहब ने माया-मोह जैसे शक्तिशाली शत्रुओं के अनेक भयानक चित्र प्रस्तुत किये हैं । संसार एक अथाह दुसह बढ़ी हुई भयंकर नदी के सदृश्य है । माया और मोह इसके भयंकर कगार हैं । सारा संसार इस नदी में डूब रहा है । इस भयंकर नदी में काम-क्रोध दो घड़ियाल हैं जो सदैव जीव को ग्रस लेने हेतु लालायित हैं । सतोगुण, तमोगुण, रजोगुण की ये अति तीव्र प्रवाहवाली धारायें हैं जिसमें सारा संसार अभिलिप्त है । इस भयवाह नदी से जीव भयभीत है, वास्तव में यह भयंकर चित्र मन के अन्दर असीम भय का वातावरण उत्पन्न कर देता है[3] । मीता साहब मृत्यु के भयंकरता के चित्रण द्वारा जीव को

---

[1] मारु रे मारु जाने नहीं पावे काम क्रोध दोनो दगया रे ।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-१६५० ।

[2] सठ बाधे खोटे दाम भोलावे लालका ।
पाजी पापी मसखरा, तू होहहै हाल बेहाल का ।।
-वही, दोहा संख्या -१३६६ ।

[3] नदी एक बाढ़ी अगम अपार, माया मोह है कगार ।
नाव न चले नीर नहीं भरिया बूड़ति है संसार ।
काम क्रोध घरियार तहाँ है, वेद हवै रखवार ।
- वही, दोहा संख्या- १६२८ ।

सचेत करते हैं कि मनुष्य अभी तुम ध्यान नहीं दे रहे हो अंत समय में तुम्हारी सारी धूर्तता, छल कपट को मृत्यु नष्ट कर देगी[१]।

(५) वीभत्स रस:- घृणित वस्तुएं जैसे मांस का लोथड़ा, कटी हुई लाश, रुधिर-वमन आदि के देखने या सुनने पर जहां घृणा, जुगुप्सा का भाव उत्पन्न होता है वहां वीभत्स रस निष्पत्ति होती है । इसका स्थायी भाव घृणा या जुगुप्सा है । मीता साहब ने अनेक स्थानों पर वीभत्स रस का प्रयोग किया है । बकरी भैंसा को मांस के निमित्त कटवाना एवं कुत्ते की तरह मांस खाकर डकार लेना वास्तव में घृणास्पद कार्य है[२]। गाय को मारकर खाना, वीर्य-रस से उत्पन्न जीव को मारकर खाना, कीड़े-मकोड़े व गंदी वस्तुयें खाने वाली मुर्गी को मारकर खाना वास्तव में वीभत्स रस के वास्तविक उदाहरण मीता साहब ने प्रस्तुत किया है[३]। मीता साहब ने वस्त्र-पट्टियों द्वारा दुर्गन्धयुक्त मतों के प्रदालन एवं फकीर (संत) नामधारी ठग को विष्टा के कीड़े के रूप में चित्रित किया है[४]।

---

[१] अंत काल जम आई पहुंचा, चोरी सबै निकसी ।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या- ६२७ ।

[२] बकरी भैंसा खड़े कटावऊ, कबै वेद फुरमावै रे ।
मास खाय ज्यों स्वान अघाना, देखो कुलीन आ वैरे ।
मुरदा खुरे रसोई भीतर, भव तुम्हार मन माना ।
- वही, पद संख्या- १५२३ ।

[३] गइया दूधि खान की मारे, दोजख होइहैं खासा ।
मुर्गी मल कीड़ा चुग पाये, ताको कहियो पाका ।।
- वही, दोहा संख्या- १५२८।

[४] (क) पट्टी लीडै आत पवारै, ते होइहैं स्वान अवतारै ।
(ख) नाव फकीर ना भए फकीरा, ते होइहैं, विष्टा के कीरा ।
-वही, दोहा संख्या- ६९८ ।

(६) <u>अद्भुत रस</u>:- अलौकिक चमत्कारिक प्रसंग की अनुभूति से उत्पन्न भाव अद्भुत रस की सृष्टि करता है । इसका स्थायी भाव विस्मय अथवा आश्चर्य है । मीता साहब ने अद्भुत रस का प्रयोग अनेक स्थलों पर किया है । बिना बादलों की उमड़ घुमड़ से विद्युत का कौंधना, बिना वर्षा के सर सलिल में स्तर की वृद्धि, जलती हुई अग्नि पर छाती का बढ़ना, बिना जड़ वृक्ष में फल का लगना, धरती की वृष्टि से आकाश सराबोर होना, मछली का आकाश में चढ़ना । खरगोश का सिंह को मारना, चूहे द्वारा बिल्ली को त्रास देना आदि वर्णन साधारण मस्तिष्क लिए आश्चर्य के विषय हैं[1]। इनकी उलटवासियों की संख्या मीता साहब के साहित्य में अद्भुत रसे भरी पड़ी हैं[2]।

(७) <u>हास्य रस</u>:- मीता साहब ने सीधे रूप से हास्य रस को अपने काव्य में स्थान नहीं दिया है लेकिन व्यंजना से कहीं-कहीं हास्य रस की अभिव्यक्ति होती है । बगुले का बैठकर पोथी बांचना, भैंस का ज्ञानोपदेश सुनना, घंट के चारो कोने में चूहे का नाचना, मेढ़क का मृदंग बजाना एवं चूहे का उसकी तान को समझना, ऊंट का गाना, गधे का नाचना आदि तथा कौवे का गुरु दक्षिणा मांगना वास्तव में एक व्यंग्य है जिससे हास्य रस की उत्पत्ति होती है[3]।

---

[1] साधि एक देखा अजब तमाशा, अगम पंथ जब जाय ।

-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या- ▬ ।१६२५

[2] अगम पंथ का जे कोई जाय सो या अचरित देखै ।
बिआरि उठवै धारि ले जाय, उलटा मछली नाचै आय ।

- वही, दोहा संख्या- ▬ ११५८

[3] बकुला बैठे पोथी बाँचै, सुनै भइसिया ज्ञानै ।

- वही, दोहा संख्या- ▬ ।१६६०

शान्त रस:

संसार की असारता के फलस्वरूप उत्पन्न निर्वेद अथवा तत्वज्ञान से उत्पन्न निर्वेद शान्त रस की व्यंजना करता है । शान्त रस के अभिव्यक्ति हो जाने पर मनुष्य को निस्सार जगत से घृणा हो जाती है । मीता साहब का काव्य इस रस से भरा पड़ा है । मीता साहब संसार की नश्वरता के कारण उससे विरत रहने का उपदेश देते हुए कहते हैं ।[1] इनके पद में मीता साहब ने संसार की निस्सारता पर एक विहंगम दृष्टि डालते हुए कहा है कि सारे संसार के क्षणिक वस्तुओं का परित्याग कर जीव को ईश्वर की प्राप्ति का मार्ग ढूंढना चाहिए क्योंकि सारे सद्मार्गों का वही मूल है ।

मधुर भक्ति रस:

भक्ति रस को भक्ति के अनुपम माधुर्य के कारण मधुर रस भी कहते हैं । जहां इष्टदेव विषयक प्रेम-विभावादि से परिपुष्ट हो जाता है वहां भक्ति रस की व्यंजना होती है ।[2]

---

[1] मनु समुझि देखि विचार बौरे, झूठि पेहु संसार रे ।
झाड़ झाड़ साकट बुराई, बूढ़ि जाति तोहि जानि न जाई ।।
-मीतादास, ह०लि०ग्रंथ, दोहा संख्या-१३४३।

मनुवा काहे ते तू भूला, राम बिना है सूला ।
मारग खोज, मिले पथ पातिका, जे सबही के मूला ।।
- वही, दोहा संख्या-१२८६ ।

[2] भयो आनंद सकल मंगल, रामरूप ही भाख्यो ।
कहहुं कैसे देखि, अचरिज, मनै मन समुझाव्यो ।
-वही, दोहा संख्या-१७६२ ।

संख्य रस:

मीता साहब ने ईश्वर को कहीं पति के रूप में स्वीकार किया है तो कहीं अपने स्वामी के रूप में । कहीं भी उन्होंने उसके समकक्ष अपने आपको रखकर संख्य भावना से स्वीकार नहीं किया है । अत: मीता साहब के काव्य में संख्य रस का सर्वथा अभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है ।

वत्सल भक्ति रस:

सूरदास की भांति ईश्वर को बालक के रूप मे स्वीकार करके वत्सल भक्ति रस में डूब जाना मीता साहब की वाणी का विषय नहीं था वे तो योग और ज्ञान के माध्यम से ईश्वर की अनुभूति करते थे अत: वत्सल भक्ति रस को मीता साहब ने कहीं भी स्थान नहीं दिया ।

ष ष्ट प्र क र ण

शिल्प विधान

भीखा साहब की भाषा

भीखा साहब की भाषा पर पूर्ण रूप से विचार करने के पहले हमें तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों पर ध्यान देना आवश्यक होगा । भीखा साहब का समय सं० १७७७ से १८२० तक आंका जाता है । यह वह समय था जब मुस्लिम शासकों का अखण्ड साम्राज्य छाया हुआ था । यहां के खान-पान, रहन-सहन आदि पर स्पष्ट रूप से विदेशी मुस्लिम सभ्यता की छाप अंकित थी । उर्दू और फारसी के शब्दों का साहित्य का हिन्दी भाषा पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता जा रहा था । बोलचाल की भाषा में भी संस्कृत के तत्सम शब्दों का स्थान उर्दू और फारसी के शब्द ले लिये थे ।

कबीरदास जी ने जिस सधुक्कड़ी भाषा में दोहों और पदों की रचना करके भाषा विज्ञान के अनिवार्य नियम को शिथिल बना दिया था वह परम्परा उनके बाद कायम न रह सकी । संत तुलसीदास एवं सूरदास तथा केशव एवं बिहारी जैसे महान संतों ने अवधी, ब्रज और खड़ी बोली में महत्वपूर्ण काव्यों का सृजन करके प्रचलित जन बोली को भाषा का रूप प्रदान कर दिया था । अवधी, ब्रज और खड़ी बोली वास्तव में एक क्षेत्र-विशेष की बोली थी लेकिन महत्वपूर्ण ग्रंथों के सृजन हो जाने के कारण ये साहित्यिक भाषा के रूप से विभूषित होने लगी थी । लेकिन भीखादास जी ने कबीर के बाद की सभी भाषाओं को एक ओर रखकर कबीर की भांति जन-सामान्य की भाषा में अपने वचन वाणी का सृजन किया । अतः भीखा साहब की भाषा को किसी क्षेत्र-विशेष की भाषा में बांधना उनके साथ अन्याय करना होगा । भीखा साहब के कुछ पद ऐसे हैं कि यदि हम उसे गया, छपरा और मगहर के लोगों को सुनावे तो वे यही कहेंगे कि ये तो हमारी भाषा (बोली) में लिखे गए हैं और बनारसी बोली के बारे में तो पूछना ही क्या ? अधिकांश पद ऐसे हैं कि लगता है कि भीखा साहब बनारस में ही पैदा होकर वहीं की बनारसी बोली में सारे पदों का

सृजन किया है । इतना ही नहीं यदि आप बांदा और झांसी जिले में प्रचलित विशेष मुहावरे एवं लोकोक्तियों तथा शब्दों पर विचार करें तो मीता साहब के पदों में इसका भी बाहुल्य पाएंगे । ऊपर कहा जा चुका है कि उर्दू और फारसी का प्रचलन हिन्दी साहित्य और हिन्दू समाज में स्पष्ट रूप से हो चुका था । अतः मीता साहब की भाषा में उसका स्पष्ट रूप परिलक्षित होता है । कुछ पद और दोहे तो ऐसे हैं जैसे वे उर्दू या फारसी के धर्मोपदेश हों ।

इसके अतिरिक्त योग और तंत्र साधना के प्रसिद्ध साधक गोरखनाथ और अनेक शैव-योगियों के अनेक भाषा विषयक तत्व मीता साहब की बचन वाणी में मिलते हैं । कहीं-कहीं तो गोरखनाथ जी के द्वारा प्रयोग किये गये शब्द ज्यों के त्यों उसी रूप में भी मीता साहब के काव्य में पाये जाते हैं ।

तुर्कों ने भारत पर विजय करके इसे अपना शासन-प्रदेश बना लिया एवं धीरे-धीरे यहां की स्त्रियों को अपनी पत्नी बनाकर अपनी फारसी भाषा एवं बोली को यहां की भाषा एवं बोली में आत्मसात् कर दिया । उनके सम्मिश्रण से फारसी और क्षेत्रीय बोली की एक नयी भाषा बनी जो एक उर्दू-जनित भाषा का रूप धारण किया । इसका सफल प्रयोग हमें मीता साहब के काव्य में देखने को मिलता है । साधु-संत, बौद्ध, सिद्ध, जैनों आदि का अपभ्रंश साहित्य का शब्द कोष भी मीता साहब की भाषा का एक प्रमुख तत्व बना । उनकी भाषा में इसकी प्रचुर मात्रा है ।

मीता साहब ने अपने पूर्ववर्ती जिन संतों एवं साहित्यकारों का उल्लेख किया है उनके काव्य की भाषा के तत्व भी मीता साहब की भाषा को एक विशेष रूप प्रदान करने में सहायक सिद्ध हुये । नाथों एवं सिद्धों की परम्परा-गत नाथ-वानी की भाषा के तत्व स्पष्ट रूप से मीता साहब के काव्य में निहित हैं । कबीरदास और मलिक मुहम्मद जायसी जैसे संत कवियों की लोक-भाषा एवं उर्दू भाषा के तत्वों का बाहुल्य आपकी भाषा में है । इतना ही

नहीं सदन कसाई, नामदेव और रैदास तथा मीराबाई जैसे संतों की सधुक्कड़ी भाषा की अमिट छाप द्रष्टव्य है । अतः यह कहना अत्युक्ति न होगी कि मीता साहब ने अपने परिभ्रमण से अथवा संत संगत से पूर्व और भारत से दक्षिण भारत तक की भाषाओं का विचार विनिमय कर उसके न्यूनाधिक रूप को अपनी भाषा में स्थान दिया । यह बात और है कि क्षेत्र-परिवर्तन के कारण उनकी भाषा का रूप और स्वर परिवर्तन होता गया । हम यदि पर्यटन करके भाषा और बोली पर एक गम्भीर चिन्तन करने का प्रयास करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक जिला परिवर्तन के साथ-साथ बोली का भी परिवर्तन हो जाता है । यही घटना मीता साहब की भाषा के साथ भी चरितार्थ हुई । आज उनका जो काव्य संकलन हमारे पास उपलब्ध है उसके आधार पर उन्हें किसी भाषा-विशेष क्षेत्र में बांधना हमारी सबसे बड़ी भूल होगी । हां हम उन्हें भाषा-विषयक तत्वों के आधार पर किसी विशेष क्षेत्र की भाषा का विशेष-प्रभाव जनित भाषा के सृजनकर्ता मान सकते हैं ।

मीता साहब की केवल भाषा को देखकर स्पष्ट रूप से यह नहीं कहा जा सकता है कि यह कैसी और किस समय की भाषा है । उनकी भाषा का स्वरूप निर्धारण करने के पहले हम उनके पूर्ववर्ती साधकों की भाषाओं के शब्दों पर एक विहंगम दृष्टि डालेंगे । मीता साहब के कुछ पदों में नाथों की भाषा के बहुत से शब्द मिलते हैं लेकिन पूर्णतया उसे नाथों की भाषा मात्र कहना श्रेयस्कर न होगा । यद्यपि नाथों की भाषा में गोरखनाथ जी की ही भाषा का स्वरूप उत्कृष्ट था लेकिन सभी नाथों की भाषा एक जैसी न थी । यही कारण है कि मीता साहब के काव्य में जहां नाथ सिद्धान्त साधनाओं का स्पष्ट छाप है वहीं उनकी भाषा का भी स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है । मीता साहब की भाषा में गोरखनाथ जी की तरह अनेक प्रान्तीय भाषाओं के शब्द बिखरे मिलते हैं । उसके भी कई कारण हैं प्रथम तो मीता साहब का दृष्टिकोण सुधारवादी था । सुदूर क्षेत्रों में जाकर अपनी वचन-वाणी को जन-समुदाय के

समता रखने के लिये उन्हें विभिन्न प्रान्तीय विशेष प्रचलित शब्दों को अपनाना पड़ा । नाथों का निरवान, निरंजन,उनमनी, सुरति, विनावी, कथणी, गगन मण्डल, शून्य, तीन, कमान नाथ, विन्द, तत आसन, गुफा, भुवंगम, निरति, त्रिकुटी, संधि, पश्चिम, केवारा, अंजन, धरती, अम्बर, हंसा, सिव, विष्णु, साकत, अजपाजाप, तीर्थकर, आदि शब्द मीता साहब के काव्य में अधिकाधिक मिलते हैं ।

भाषा के विभिन्न स्वरूप

सन्धि प्रक्रिया:

(क) मीता साहब के काव्य में आये हुए सन्धि-विधाओं पर व्याकरण के नियमों की दृष्टि से एक विहंगम दृष्टि डालते हुए उसका विभिन्न रूप प्रतिपादित करने का प्रयास करेंगे । मीता साहब के पदों एवं दोहों की पदग्रामिक संरचना में कबीरदास जी की भांति पूर्व प्रत्यय तथा पर-प्रत्यय (उपसर्गों) का योग प्राप्त होता है ।

व्युत्पादक पूर्व प्रत्यय और मुक्त पदग्राम या संयोजक पूर्व प्रत्यय तथा पदग्राम के संयोग के फलस्वरूप अन्तिम `आ` स्वर का दीर्घ रूप ह्रस्व हो गया है ।

अ + जाप अजप + आ = अजपा
कु + मति + आ = कुमति + आ = कुमिता
सु + मति + आ = सुमति + आ = सुमिता
सु + भाग सुहाग + इति = सुहागिनी
(`भ` का `ह` में ध्वनि परिवर्तन)

कहीं कहीं पूर्व प्रत्यय और व्यंजन के संयोग से व्यंजन का द्वित्व रूप प्राप्त होता है ।

		दोहा।पद	संख्या
कु सु + जन	= सुज्जन	सुज्जन ना हो जाय	१०१
कु + जन	= कुज्जन	कुज्जन घर मोती भरे	५७

परन्तु प्रत्यय के पश्चात् तुकारान्त के संयोग से सम्भव नहीं प्राप्त होता ।

कु + मति	= कुमति	कुमति छाड़ नछ वाप रे	३५८
सु + मति	= सुमति	सुमति बिना न पावई	१००८

(ख) पर-प्रत्यय तथा मुक्त पदग्राम के संयोग से प्रतिबंधित असीम स्वर का लोप हो जाता है यथा -

		दोहा । पद	संख्या
आय + आ	= आया	आया मेटै जग तई	२६०
चतुर + आई	= चतुराई	करु चतुराई द्यानो आन	१३७
अधिक + ई	= अधिकी	अधिकी जाप भुलाय	४३६
गरीब + ई	= गरीबी	भली गरीबी दीनता	३२१
बनना + आई	= बनाई	बजर पड़े तोरी बनाई	४६७
बड़ा + आई	= बड़ाई	बड़ा बड़ाई ना तजे	३६५
कुलिन + आई	= कुलिनाई	कहां हती कुलनाई	९८
घन + एरा	= घनेरा	दुख घनेरा दीन्ह	७४२
समुझा + आई	= समुझाई	बहु मीता हनको समुझाई	४८
परमोद + इया	= परमोदिया	पीपा का परमोदिया	४७८
ठग + इया	= ठगिया	ठगिया छाप तिलक ना कावे	११६
सरन + आई	= सरनाई	तहना संतन की सरनाई	२७५
दुख + इया	= दुखिया	दुखिया सब संसार	४२६

(ग) प्रतिपाद के साथ 'इया' ई, आई, वा' आदि पर-प्रत्यय जुटने पर उनके प्रथम अक्षर में निम्नलिखित परिवर्तन होते हैं -

	दोहा । पद	संख्या
पशु + वा = पशुवा	पशुवा मुरुख नदान	६५१
पंडित+आ = पंडिता	बड़े बड़ाई पंडिता	३७६
रोजगार+ ई = रोजगारी	कह मीता पंडित रोजगारी	३१८
पाव + आ = पवुआ	बोझन पवुआ ले चले	३८३
कारा +इया = करिया	तिनते करिया सांप भला	८२४
एक + उई = एकुई	मन एकुई मे रमि रहा	२४६
भोग + वा = भोगवा	पर नारि का भोगवा	४२८
नदि + इया = नदिया	नदिया बीच भयानक	१११
तहां + वा = तहंवा	तहंवा न सुर मुनि जाय	३२
उहां + वा = उहंवा	उहंवा सिर अनहारा रे	४३०
सन्तु + ई = सन्तुई	संत की महीमा सन्तुई जाने	६७
कन + फुकवा = कनफुकवा	कनफुकवा उद्दिम करे	३२०
मन + वा = मनुवा	मनुवा काहे रे तु भुला	२६७
साधु + वा = सधुवा	सधुवा संगत काले ताकी	८५५
ठाकुर+ आई = ठकुराई	जग दिखी बहुत ठकुराई	५३६
गुहार+ आई = गुहराई	कह मीता हम जग गोहराई	८८
माझी+ आ = मझुवा	गंग जमुन बीच मझुवा हो	२०६
देश + आ = देशवा	चली मवाशी देशवा	१०४
नाई + वा = नउवा	एक नउवा दुई बरिया	६८
बारि+ आ = बरिया	एक नउवा दुई बरिया	७४६
गंवार+ आ = गंवारा	का कथे गंवारा	५३७
धार + इया = धारिया	कब सात्वधरिया अवतारे	३४०

नम +	आवा	=	नवावा	तब हम उनका सीस नवावा	७८३
सेवक +	आई	=	सेवकी, सेवकायी	सेवकाई ऐसी लहै	३०६
होशियार +	आ	=	हुशियारा	दोनों दल हुशियारा हो	२१
अग्नि +	अ	=	अगिन	जरिहै जीव अगिन बिनु	७२१
बमन +	ई	=	बमनी	तु बमनी कहं पायी	८१६
उजरा +	आई	=	उजराई	ये देखो उजराई	५७१
बेल +	वा	=	बेलवा	ब्रह्मन होब हंसी नहीं बेलवा	७३६
पानी +	इया	=	पनिया	पनिया हाथ न अइहे	३२३

मुक्त पदग्राम विभक्ति मूलक प्रत्यय-

संज्ञा प्रातिपादिक बहु वचन `अन` प्रत्यय के पूर्व व्यंजनान्त हो जाता है-

गुड़िया	+	अन	=	गुड़ियन	क्वारी खेलै गुड़ियन	६३१
ग्वाला	+	अन	=	ग्वालन	ग्वालन के सब नाहि	४१३
आंखी	+	अन	=	अंखियन	अंखियन देखे नाहि	६२४
विमुख	+	अन	=	विमुखन	विमुखन संग ना बैठि	१६३
संत	+	अन	=	संतन	संतन के तोउ एक ते	३४६
हरिजन	+	अन	=	हरिजनन	हरिजनन सो प्रिती	६३
ठगिया	+	अन	=	ठगियन	जग ठगियन के लोई	४७१
चोर	+	अन	=	चोरन	चोरन मा साह	७२७
साह	+	अन	=	साहन	साहन मा चोर	८२६
विषय	+	अन	=	विषयन	तेरा मन विषयन को धावे	४६७
सब	+	अन	=	सबन	कह मीताह सबन ते	७२३
बिला	+	अन	=	बिलन	बिलन मां कोई पाई	३६६
लात	+	अन	=	लातन	सुभाई लातन मारा हो	६८१

					दोहा।पद	संख्या
सखिया	+	अन	=	सखियन	पूछे सखियन सो बात	२६६७
कोटि	+	अन	=	कोटिन	कोटिन ब्रह्मा औ त्रिपुरारी हो	६९७

इकारान्त संज्ञा प्रातिपादित में बहुवचन बोधक `आँ` लगने वाले अन्तिम दीर्घ ई, ह्रस्व और `आँ` के स्थान में `याँ` का प्रादुर्भाव होता है यथा-

चतुराई	+	आँ	=	चतुराइया	किये कपट चतुराइया	१००७
आँखी	+	आँ	=	अँखिया	इन अँखिया मा बसत है	५०६
बात	+	आँ	=	बतियाँ	सुन ससुरे की बतिया	४०६८

मुक्त पदग्राम + लिंग विभक्ति

आकारान्त के पश्चात् स्त्रीलिंग बनाने के लिये उसकोप्रतिस्थापित करके ईकारान्त बना देते हैं ।

भंवरा	+	ई	=	भंवरी	परम ब्रह्म सो भंवरी करई	३२८७
भला	+	ई	=	भली	भली गरीबी दीनता	२६४३
अंधियारा	+	ई	=	अंधियारी	अंधियारी बीच बसि रहै	१७४०

क्रिया पदग्राम + विभक्तिमूलक प्रत्यय

क्रिया पद में इआ प्रत्यय का संयोग निम्नानुसार होता है -

गाय	+	इया	=	गइया	गइया बान दूधि की मारे	३८७१
ला	+	इया	=	लाइया	मूल डोर मन लाइया	२७४५
मिल	+	इया	=	मिलिया	तब सुज्जन सो मिलिया	१८४४

	दोहा । पद	संख्या
कर + ह्या = करिया	तिनते करिया सांप भला	१३०२
धर + ह्या = धरिया	कब साहब धरिया अवतारे	६४८
पा + ह्या = पाह्या	मीता भूले पाह्या	१६२०
मन + ह्या = मनिया	तब सौ मन मानिया	२७४५
पर + ह्या = परिया	तै नर नाके धरिया	२४६१
तर + ह्या = तरिया	जे तरिया ते जियते तरिया	२३२२
जर + ह्या = जरिया	रे साधु कहू कैसे घर जरिया	२७५६
लग + ह्या = लगिया	सुरति निरति जब लगिया	४७१
उजियार+ ह्या = उजियारिया	निकस होई उजियारिया	११७४

ध्वनि परिवर्तन:

मीता साहब ने अपने पदों तथा दोहों आदि में छंदयुक्त भाषा का प्रयोग किया है लेकिन गेयात्मकता और सरलता के दृष्टिकोण से छंदों के तुकबन्दी को पूर्णतया नहीं अपनाया है । बहुत से शब्दों की ध्वनियों तुकबन्दी के कारण परिवर्तन हो गया है । यथा - ह ई । अ आ ।

		दोहा । पद	संख्या
जाहिं	जाहीं	जहां न सुर मुनि जाहीं	३३६
संसार	संसारा	ठगने का संसारा रे	२७४६
हार	हारा	हम तो सिरजन हारा जाने	१७३०
त्रास	त्रासा	मूस बिलारी त्रासा	२६०३
बेवहार	बेवहारा	बिरले जन व्यवहारा रे	३१७३
आकास	अकासा	मछरी चढ़ी अकासा	१६२
रतिवार	रतिवारा	मानो रतिवारा	१७०८

गवार	गंवारा	बुझै नही गंवारा	२८५०
भयपार	भयपारा	ते होइहै भयपारा	३६३
निवार	निवारा	जेहि आवा गमन निवारा	१८६०
बिस्तार	बिस्तारा	जिनते विस्तारा	४८५
द्वार	द्वारा	ते होइहै नारक दुबारा	१२६४
अहार	अहारा	उरध मुख करै पवन अहारा	३०६१
अक्तार	अक्तारा	ते होईहै विषहर अक्तारा	२५६५
लबार	लबारा	का कथै लबारा	१६२३
निबार	निबारा	ते होइहै आपते निबारा	१२४१
करतार	करतारा	ते होइहैं करतारा रे	२३२
जाननहार	जाननहारा	कोई जानेगा जाननहारा	८४०
पसार	पसारा	तेहि भरम पसारा	३३२६
पुरान	पुराना	का पढ़ि वेद पुराना रे	११६८
निदान	निदाना	समझै न मुलुक नदाना रे	४७७
कुलीन	कुलीना	देखो कुलीना आवै रे	५४३

यथा-

ऊ अ

अ आ

तुल	तुला	तु नहीं संतन तुला	३४८४
मुल	मूला	इस वही के मूला	२११५
विपुल	विपुला	वा सुख परम विपुला	२६४
बेकार	बेकारा	यह तन ह्वै बेकारा हो	३३४७
पियार	पियारा	मुक्ति परम पियारा हो	१८४६
स्वान	स्वाना	कबहु का खर स्वाना हो	६६७
ग्यान	ग्याना	का करो ले ग्याना हो ।	१०२०
पहचान	पहचाना	तब संतन का पहचाना रे	७५५

(ख) बनारसी बोली के वाय में ` अ ` का ` वा ` में ध्वनि परिवर्तन हो जाता है और ` आ ` का ह्रस्व स्वरूप प्राप्त होता है ।

तहां	तहवां	तहवां न धुमुनि जाय	३१७४
इहां	इहवां	इहवां जग व्यवहार	६५०
उहां	उहवां	उहवां सिरजन हारा रे	५४७
कहां	कहवां	कहवां नर मुनि पाइये	१९६२
जहां	जहजां	जहवां जहवां लखि परै	८४७

(ग) ह्रस्व के अन्त में ` वा ` जुटकर उस शब्द की महत्वा को भाव वाचक संज्ञा के रूप में ध्वनित करता है ।

पशु	पशुवा	पशुवा पुरुष नदान	३६३
मूस	मुसवा	मुसवा बाणिउ कौने नाचे	८८५
वेश्या	वेश्वा	ते वेश्वा होइहे नारी	३६६
पाब	पउवा	बोफन पवुआ ले चले	२७३५
ऊंट	ऊंटवा	बिछरी ऊंटवा धारिले जाय	२८४६
बेड़	बेड़ुवा	मीत न बेड़ुवा होय	३४३३
भोग	भोगवा	पर नारी का भोगवा	११९५
दुख	दुखवा	दुखवा में का हेतु भूला	१५३३
सुख	सुखवा	सुखवा में भजले राम	१७४५
माढ़ी	मढ़ुवा	गंग जमुन बीच मढ़ुवा हो	११२३

<u>अर्ध स्वर परिवर्तन:</u>

	य्	ज	
युग	जुग	कलजुग बीता आवत है	१३३४
यमुना	जमुना	गंग-जमुन बीच अंतरा	१५५४

मृत्युक	तिरतुक			मिरतुक हो रहे जैसे	४४४
वृथा	विथा			बिथा जलम अकारथ जाय	७५०

स्वरों का ध्वनि परिवर्तन:

आदि स्वर:				दोहा । पद	संख्या
अ	अ	अदार	अक्षर	अक्षर ब्रह्म तो अलख है	२२२२
अक्षि	अंखि	या	अंखियां	अखियां मां राम बसत है	३६४
आ	अ	आश्चर्य	अचरज	सोया अचरिज देखे जाय	४४७
ए	ई	एक	इक	इक कवल मां ब्रह्म है	६६६

मध्यम स्वर:

अ	आ	मनुष्य	मानुष	ते मानुष का बेटा	७७७
अ	अ	पिण	पीऊ	जैसे मोर पीउ दे बोलै	६७८
औ	ओ	यौवन	जोबन	ते जोबन मतवारी	८८६

मध्य व्यंजन परिवर्तन:

व	य	भव	भय	भय जल अगम अपार	५५५
		भवसागर	भयसागर	चौदहपुर भयसागर	७६७
न	ल	जनम	जलम	जलम अकारथ जाय	१६६
अग्नि	अगिन			जरे अग्नि अभियंतरा	२०६
र	ल	नर	नल	मूरख नल को समुझावे	१०६६
र	ह	निश्चय	निहचय	मन निहचय थाना किया	१२२७
		संशय	संसय	जहं संसय तहं मुक्ता नाही	१३३३
		गर्भ	गरभ	गरभ वास कबहुं ना आवे	४४२
		विष्णु	विस्नु	हस्नु विस्नु गोहरावे रे	५५६

		दोहा / पद	संख्या
यमपुर	जमपुर	जमपुर होय पयान	४४३
योजन	जोजन	सत जोजन तेहि भाम पसारा	६४५
धैर्य	धीरज	धीरज खंभ सुरति ले गाड़े	८८८
	य इ		
शुन्य	शुन्नि	सुन्न मंडिल तके गंवारा	७८३
प्रियतम	प्रीतम	प्रीतम संग मन न डोलाये हो	४२२
अभ्यन्तरा	अभियन्तरा	जरे अग्नि अभियंतरा	४४६
नारायण	नरायन	नैनन लखि नरायन मूरति	१२२२

आदि व्यंजन परिवर्तन:

वृ बृ	वृदो बिरछो	वन में विरछै होय	१३३२
यु ज	युग जुग	गंग-जमुन बीच अंतरा	१५५४
शु सा	शाखा साखा	जरत अग्नि पर साखा बाढ़ी	१५४४
दा छि	दाग छिन	छिन में सास बोलावे हो	१६८७
ज्ञ ग्य	ज्ञान गियान	लखां नही तत गियान	२७४
दाग्गिक	छिनक	छिनक सुख ना परे	१७७५

ऋ : मीरा साहब के काव्य में `ऋ` का ध्वनि परिवर्तन `रि` के रूप में पूर्णतया हो गया है । यथा-

हृदय	हिरदै	हरि हीरा हिरदे बैस	२७७६
गृही	गिरही	ते गिरही बैरागी	२६८७
कृपा	किरपा	तब हरी किरपा करी	७५५
तृष्णा	त्रिसना	आशा त्रिसना कठिन है	३३४४
गृह	ग्रिह	ग्रिह ते जारे मूड़ मुड़ाये	२६०३
कृषि	किरषी	किरषी के निस्तारा रे	२८८६
वृदो	विरछै	वन में विरछै होय	२२६

अन्य व्यंजन परिवर्तन:

				दोहा।पद	संख्या
क्	ग्	थिक्	थिग्	थिग् क्रिग् रामानन्द है	३३६
ण्	न्	निर्वाण	निरबान	पद पाया निरबान	१५४६
		गुणन	गुनन	ना भूला गुनन ते	२७५६
		वरण	बरन	हरिबरन सो प्रिति	१०६६
दा	ब	अलदा	अलब	कह मीता उर्ं अलब है	४७८
ट	र	कपाट	किवार	खोले बज्र कीवार	५०६
		अलदा	अलब	कह मीता उर्ं अलब है	७४७
म्	व्	नाम	नाव	थाती भरी नाव ले लागी	४७५
ड़	र	लकड़ी	लकरी	लकरी हरी नहीं तौर मुहम्मद	७६६

विदेशी ध्वनियों का परिवर्तन:

मीता साहब के समय तक भारत में मुस्लिम राज्य का एक छत्र साम्राज्य स्थापित हो चुका था । काल और वातावरण के अनुसार उर्दू-फारसी के शब्दों के रूप में परिवर्तन हो गया । तत्कालीन समय और स्थान के प्रभाव से उर्दू-फारसी के शब्दों की मूल ध्वनियां अछूती न रह सकी ।

फारसी के क़ ख़ ग़ फ़ ध्वनियां मीता साहब के काव्य में क्रमश: क्, ख्, ग्, फ् में परिवर्तित हो गयी हैं -

				दोहा। पद	संख्या
क़	क्	फ़िक्र	फिकिर	फिकिर न व्यापै जुर नहीं आवै	१८४६
नफ़ा	नफा			हानि नफ़ा उजाना रे ।	५०६

मुल्क़	मुलुक			समझे न मुलुक नादाना रे	३६८
राज़ी	राजी			जो वा राजी नही है	१६८६
फ़	फ्	काफ़िर	काफिर	काफिर ते कहावई	१८७६
क़	क्	कुर्बानी	कुर्बानी	गाय जबह नही है कुर्बानी	११११
ख़	ख्	ख़ुदाय	खुदाय	सहजे मिलै खुदाय	३३०
ग़	ग्	मुग़ल	मुगल	... चौधुकी मुगल है	८७८
ख़	ख	ख़बर	खबर	तहाँ की खबर न पाई	८७५
		ख़ुदा	खुदा	अल्लाह तहाँ खुदा	६०६
		मेह	मेहर	मेहर बिना ना पावई	२२८
		ग़ाफ़िल	गाफिल	गाफिल हो न बुरा है	३४४५
		मेहवान	मेहरवान	मेहरबान का पीर	३१०६
		इन्साफ	निसाध	आज करो निसाफ सवेरे	४८६
		क़िताब	कितेब	वेद कितेब नहीं या लिखी	२६६
		ख़ुशहाल	खुशाल	क्योंकर होई खुशाल	१६२६
		बहिश्त	भीश्त	नेकी भीश्त बड़ी है	२४६६
		तहकीक़	तेहकीक	तेहकीक करो रे भाई	१८६६
		मौलवी	मुल्ला	मुल्ला पाण्डे दोउ भुलाये	२८७७
		गुनहगार	गुनागार	गुनागार सरकार का	६६१
		दरगाह	दरगाह	कह मीता दरगाह में	२५४४
		तफ़ह्हुश	तफराउस	भला तफराउस होई	१८६१
		दरवेश	दरवेस	नामधरी दरवेस	१६३०६
		हक़	हक्क	कह मीता साहब है हक्क	४६७
		पेश	पेस	तहाँ न होवये पेस	५६२
		ज़िबह	जबह	जे जीव जबह करावे	३११८
		मज़हब	मजहब	मजहब देखे भाई	१८६०
		ऐतबार	एतबार	माने ऐतबार	४४१

मुरशिद	मुरशिद	मुरशिद तिनक नाम है	८६१
खुमार	खुमार	पिय की लगी खुमार	१५८३
फ़िराक	फिरका	फिरका देई बताय	१७८७
आफत	वेत	का भये वैत करे है	३८६
नमाज	नेवाज	रोजा रहे नेवाज गुदारे	२५५८
गुज़ार	गुदारे	रोज रहे नेवाज गुदारे	२५५८
कलाम	कलमा	कलमा तवै सही है	२२७
कुफ़्रान	कुफरान	काफिर ते कहावई	४३४
राज़ी	राजी	जी वा राजी नहीं है	१८५४
जवाब	जुवाब	आखीय होई जुवाब देयका	४७६
होशियार	हसियार	ताते होय होशियार रे भाई	१२६६
खुदा	खुदा	आखिर वह खुदा नहीं है	३८५

प्रत्यय:

प्रत्यय वे पदग्राम है जो किसी पदग्राम पर निर्भर रहता है । स्वतंत्र रूप से इसका कोई अर्थ नहीं होता, लेकिन इसके कारण सम्बद्ध पदग्राम का अर्थ बदल जाता है ।

व्याकरण के नियमानुसार प्रत्यय दो प्रकार के होते हैं -

(१) व्युत्पादक प्रत्यय (Derivational Affix)

(२) विभक्ति प्रत्यय (Inflectional Affix)

(१) व्युत्पादक प्रत्यय:- वह प्रत्यय है जो किसी धातु अथवा प्रातिपादिक के पूर्व या पश्चात् सम्बद्ध होकर दूसरी धातु या प्रातिपदिक प्रत्यय का निर्माण करते हैं ।

(२) विभक्ति प्रत्यय:- वे प्रत्यय जो प्रातिपादिक के अन्त में जुड़कर उसके अर्थ को बदल देते हैं ।

व्युत्पादक प्रत्यय (पूर्व प्रत्यय या उपसर्ग):

(क) निषेध सूचक:

	दोहा।पद	संख्या
अ + लख = अलख	कह मीता उर्ई अलख है	३२८६
अ + जपा = अजपा	भजले तु अजपा जाप	१२७४
अ + नग = अनग	अनग विधुन कीवे है टारे	५६४
अ + पार = अपार	भय जल अगम अपार	७४०
अ + ज्ञानी = अज्ञानी	अज्ञानी निंदा करै	६८४
अ + थहा = अथहा	अथहा देई थहाव	८५७
अ + विनाशी = अविनाशी	तै पाया अविनाशिया	१३८३
अ + गमपुर = अगमपुर	मीता पहुंचा अगमपुर	७४६
अ + मोल = अमोल	मीता सबद अमोल	३८७
अ + गम = अगम	भय जल अगम अपार	३४८६
अ + जर = अजर	अजर अमर है साहब मेरा	३१७७
अ + मर = अमर	अजर अमर है साहब मेरा	३१७७
अ + दल = अदल	दूरी अदल चलाउँ	२८६६
अ + काथ = अकाथ	जलम अकाथ जाय	७६६
अन + हद = अनहद	तहां होय अनहद नाय	१६७८
अन + भय = अनभय	अनभय नाहीं पाय	१४८८
अन + गन = अनगन	अनगन जोति बिराजाई	१२२२
अन + रीति = अनरीति	दुनिकी यह अनरीति	२२३४
अन + देखी = अनदेखी	अनदेखी कहै सो अंधा	२४७६५

निर

निर + गुन = निरगुन	निरगुन के हम ग्राहक हो	३१८७
निर + बान = निरबान	पद पाया निरबान	६४५
निर + वारि = निरवारि	संत गये निरवारि	१५७६

	दोहा । पद	संख्या
निर् + बल = निरबल	निरबल तोहि न कहाब्यै	५४२
निर् + मल = निरमल	तहां जो निरमल जोति	१४२०

निस:

निस + दिन = निसदिन	निसदिन दृष्टि	८५५

निह:

निह + काम = निहकाम	गीता है निहकाम	६४६
निह + चय = निहचय	निहचय राम जोय	१३७७

सु:

सु + मति = सुमति	सुमति तै भरपूरी	१२६५
सु + मिता = सुमिता	सुमिता धरी संभारि	४७६
सु + जन् = सुजन	सुजन ना हो जाय	२२२६
सु + लच्छनि = सुलच्छनि	मिली सुलच्छनि	२२८७
सु + वास = सुवास	कहु आवै वास सुवास	११२३
सु + पंथ = सुपंथ	सुपंथ हमका दीशी तब	२२२२

कु:

कु + मति = कुमति	कुमति लियै चलै राम	६६५
कु + मिता = कुमिता	कुमिता देखी कनौ	१८६६
कु + जन = कुजन	कुजन घर मौती भरे	६६५

दुर:

दुर् + मति = दुरमति	दुरमति डारी खोय	१७७१
दुर् + चारी = दुराचारी	दुराचारी ढिग ना बैठि	१३८६

प्र :

	दोहा । पद	संख्या
प्र + मान = परमान	बिनु धन का परमान	३३६
प्र + पंच = परपंच	यह माया परपंचिनिया	२०४६

दर:

दर + वेश = दरवेश	नाम धरा दरवेश	६२१

पर:

पर + देश = परदेश	परदेश मे जाय के	६५७
पर + लय = परलय	परलय पल में होय	२९०६

वि:

वि + मल = विमल	विमल पुरूष वै ह्वे	१३७५
वि + वाद = विवाद	वाद विवाद से साहब न्याय	५४४
वि + नाश = विनाश	विनाशन कहुँ गाई	७८१

अव:

अव + गुन = अवगुन	अवगुन तिनका तवि परै	६४२

निस्:

निस् + तारा = निस्तारा	किसी के निस्तारा रै	१३७५

विभक्ति प्रत्यय(पर प्रत्यय या परसर्ग):

मीता साहब के वाणी वचनों में परसर्ग बहुतायत से मिलते हैं -

					दोहा।पद	संख्या
आप	+	आ	=	आपा	आपा मेटै जग तरै	७५६
गरीब	+	ई	=	गरीबी	भली गरीबी दीनता	१४०७
करना	+	ई	=	करनी	करनी ते ब्रालमन भये	३८७
चतुर	+	आई	=	चतुराई	जग में दीखि बहुत चतुराई	२०८५
दुनिया	+	आई	=	दुनियाई	एकई दुई दुनियाई	४०२
कविता	+	आई	=	कविताई	के कविताई कान्ह की	५६८
बड़ा	+	आई	=	बड़ाई	बड़ा बड़ाई ना तजे	१३३८
पाखण्डी	+	इन	=	पाखण्डीन	पाखण्डीन का जानि	१७५६
बैड़	+	वा	=	बैड़वा	बैड़वा मीत न होय	१३७५
पा	+	इया	=	पाइया	मीता मूठै पाइया	१२८५
चलाव	+	ई	=	चलावई	संत न पंथ चलावई	१६८७
दीन	+	ता	=	दीनता	भली दीनता जै रहे	२८४५
गवार	+	इयां	=	गवारियां	का कथो गवारिया	२०४७
डोंग	+	वां	=	डोंगवां	तब डोंगवां ना जाने	३६६
भाग	+	उई	=	भंगोई	भीतर भरी भगोई	३१२८
छिपा	+	उई	=	छपोई	हरि ते काट छपोई	२१२
अपना	+	आई	=	अपनाई	जे इनका ना अपनाई	६८
कुलीन	+	आई	=	कुलीनाई	कहां रही कुलीनाई	१७६
सेवक	+	आई	=	सेवकाई	सेवकाई ऐसी करो	१०६६
पतिया	+	आई	=	पतियाई	नापतियायी गीता बाई	२१०६
छोड़	+	आई	=	छोड़ाई	भय ते लीन्हि छोड़ाई	३२
कुशल	+	आई	=	कुशलाई	होई सकल कुशलाई	३२४७

पशु + वा = पशुवा — पशुवा पुरुष नदान — ४५९
कढ़न + इया = कढ़निया — तीन गुनन की कीई कढ़निया — १४३३
मटकी + इया = मटकिया — येहि तन की कीन्ह मटकिया — १५७५
मनु + वा = मनुवा — मनुवा काहे रे तु भूला — ३९८८
साधु + वा = सधुवा — रे सधुवा कहु कैसे घर जयिया — १३९५
रचा + इया = रचिया — रचिया सब संसार — १९८९
झमके + आवे = झमकावे — ठगिया छाप तिलक समझावे — ९४६
पा + आवे = पावे — जो ध्यावे सो पावे — १०५९
डर + आवे = डरावे — तिनको नहीं डरावे — ८५९
बात + आवे = बतावे — सुकदेव साख बतावे — ४९६
ठाकुर + आई = ठकुराई — हरि पाई, पाई ठकुराई — ८१२
वह + ई = उई — कुछ मीता उई अलख है — ५१२
मंगता + आई = मंगताई — मंगताई ऐसी करौ — ७०७
कील + वा = किलवा — किलवा रक्त पिये पर कीड़े — १९४७
देश + वा = देशवा — चलो मवासी देशवा — ३४९६
सब + न = सबन — ई अंग सबही नलन में — ७७३
महल + न = महलन — साहब सब महलन को — ५४४
संत + न = संतन — संतन का ना व्यापई — १५५७
दुखीय + न = दुखियन — दुखियन दुख बहाइके — १३३८
दु + इया = दइया — काम क्रोध दोनों दइया रे — ३२२
कान्ह + इया = कन्हैया — नन्द कन्हैया मरम न जाने — ४९८
वाह + इया = बहिया — वारि बहियां ते दूर नाहि — १८७७
नाई + वा = नउवा — एक नउवा दो बरिया — ३११९
वारि + इया = बरिया — एक नउवा दो बरिया — ३११९

संज्ञा:

मीरा साहब के काव्य में संज्ञा के दो रूप मिलते हैं ।

(१) मूल संज्ञा (Fundamental or Original Nown)

(२) व्युत्पन्न संज्ञा (Deniod Nown)

(१) मूल संज्ञा:- इन पदों में संज्ञा वाचक व्युत्पन्न प्रत्यय नहीं जुटता । ये अपने मूल रूप में प्रयुक्त होते हैं । जैसे -

	दोहा । पद	संख्या
राम	भजले राम सजीवन भूरि	४६३
धन	जेहि तन, धन वारे	१४७६
केशव	केशव कवि भाभुत	३७०
पवन	तहां पवन ना पानी	३४२
गगन	बसे गगन दीप कौतुहल	३२७५

(२) व्युत्पन्न संज्ञा:- व्युत्पन्न संज्ञा विभिन्न शब्दों में प्रत्यय जोड़कर बनायी जाती है । जैसे -

दुख + इया	=	दुखिया दुखिया इह संसार	६४६
बड़ा + आई	=	बड़ाई बड़े बड़ाई पंडिता	१५८७
अधिक + आई	=	अधिकाई अधिकी, अधिकाईजाय अधिक भुलाय	१४४

ध्वनिग्राम के नियमों के अनुसार संज्ञा के शब्दों की अन्तिम ध्वनि के अनुसार हम संज्ञा को अकारान्त, आकारान्त, इकारान्त, ईकारान्त, उकारान्त, ऊकारान्त आदि में विभक्त कर सकते हैं ।

	दोहा । पद	संख्या
ज्ञान	ग्यान छाड़ के ध्यान का	५६६
अंधकार	अंधकार मां दीख जब	२३८६
मन	मन दर्पण कामाजि	२८६८
भव(भय)	भय जल अगम अपार	२८७
दास	रहिहै मीता दास सब	१८७
ब्रह्म	ब्रह्म मिले ते ब्राह्मना	७८३
नैनन	आदि देव नैनन लखै	४८७
देव	सब देवन्ह को देव	६८८
पाहन	करै न पाहन सेव	३६६
पारस	मीता पारस पाइया	३५००
सागर	तीन लोक भयसागर	३१८८
नर (नल)	नल भुला गुनन का	२८७८
तत्व	मीता तत्व विचारिया	७८३
कान	कान फुकाये का भया	७६४
मुंह	मुंह में परिहै छारि	६३६
धार	धार न लागै राखे केस	३८७
धूर	धूर उड़ाये ना छिपै	८७३
मूड़	मूड़ मुड़ाई पंडिता	६८६
भेख	भेख भरम भेजे परै	८६८
गृह	गृह ते उतरै मुड़ मुड़ाये	१५८०
लोक	तीन लोक के उपर	१८६४
साहब	साहब केरौ दीदार	६३२
केवट	सतगुरु केवट संगठे	५४८
इन्द्रिय	पांचो इन्द्रिय बस के राखै	२२
गरभ	गरभ बास कवहु ना आवै	८७८
पण्डित	पण्डित मुरुख नादान	१००८
सिरजन	सब में सिरजनहार	३१८६

	दोहा । पद	संख्या
पाप	पाप पुण्य दोउ होय	२७३६
पुण्य	पाप पुन्य की खेती करते	२७५८
करम	करम जरे जीव उबरे	४८०
हरिदास	मीरा हरि के दास	२४०६
सुर	सुर-नर भुले गुनन ते	४८७
जग	जग में ब्राह्मण एक ही	६६६
संत	संत मिले ते सब मिले	२१७७
संसार	ठगवा का संसारा रे	२८६१
साह	संत साह गृह मा भये	१८७७
धन	जिन तन-धनवारा	२२६
तीरथ	तीरथ बरत तरै ना कोई	१६४
ब्रत	तीरथ बरत तरै ना कोई	१६४
पुरान	का पढ़ि वेद पुरान	६८८
जमपुर	जमपुर होय पयान	८५३
मारग	मीरा के मारग चलै	३७५
नारक	नारक पंथ मां भीड़ बड़ी है	३२६०
पंथ	संत न पंथ चलावई	४६६
पद	पद पाया निरवान	१४४४
जान	चाहत है हो जान	२१०६
खर	खर को कारन नावई	२७६४
अंग	स्वान चंदन अंग	१६४
जंजीर	तोड़ी लाज जंजीर	६५४
उजियार	रवि शशि के उजियार	१५७२
पद्म	पद्म पत्र पर आप विराजे	५८३

	दोहा । पद	संख्या
द्वार	हरि त्रिभुवन के द्वार	३७५
जगत	ह्वै जगत की रीति	२३८७
बाजीगर	तै बाजीगर पेखना	१२६४
मरकट	ज्यौ मरकट की दौर	११७५
सीस	सीस देई हरि मिलै	२०५४
गज	कह मीता गज भार का	२३७४
वन	वन मैं विरछे होय	३०५७

(२) आकारान्त संज्ञा:

मूल संज्ञायें			व्युत्पन्न संज्ञाये		
शब्द	दोहा।पद	संख्या	शब्द	दोहा । पद	संख्या
क्रिया	क्रिया सबै अक्रिया	३३८	कनफुकवा	कनफुकवा उद्यम करै	३८६
गदहा	गदहा कैसे छेय	१२८८	अटरिया	ऊँचे अटरिया चढ़त	१७५६
काया	काया सुन्दर बहुली	३६४	पेखना	ज्यों बाजीगर पेखना	७८७
पुतरा	मानो कुठी पुतरा	३२६६	साधुवा	करले सधुवा संत ताकी	२६१
माला	माला छापा भरम है	२७५१	दुखिया	को ते दुखिया लोग	१५८३
छापा	माला छापा भरम है	२७५१	पुतरा	मानो कुठी पुतरा	३२६६
हीरा	हरि हीरा छिदे की	५२७	दीनता	भली दीनता जहा ह्वै	२२७
बासना	बासना ढिग रहै	२६५७	पंडिता	बड़े बड़ाई पंडिता	१२२६
द्वारिका	काशी मथुरा द्वारिका के लोग रे	१७८७	सुमिता	सुमिता देखी भागै	३१७५
ऊलीला	किना ऊलीलाचाकरी	३२७८	ज्ञानिया	बिना भेद का ग्यानिया	२५८
थाना	मीता तहां थाना किया	२३	पउवा	बोझ न पउवा ले चले	१३२३
आशा	आशा तिष्ना कठिन है	५४५	फलुका	गोड़न पड़ जाये फलुका	३३७८
तिष्णा	-तदेव-	५४५	अथहा	अथहा होवैं थहाय	३२२६

शब्द	दोहा।पद	संख्या	शब्द	दोहा।पद	संख्या
माया	माया के रे परमपंचिनिया	५३०	ममता	ममता बैरिन जीव की	१२७५
सतुआ	खिचड़ी सतुआ देई के	५२१	द्वारा	नहि तो जस्यौ नरक दुवारा	३२४
ब्रह्म	ब्रह्मा तिन्हे न पाइया	१२६६	दात्रिया	मुंह ब्रह्म कर दात्रिया	२३८६
सुआ	सुआ पढ़ाये हरि मिलै	३२७	अंधा	भूला जगअंधा हवे	३४३७
मदिरा	कह मीरा मदिरा पिये	३७	डिठियारा	डिठियारा अगुआ करे	५४३
कर्ता	जे इनका कर्ता के जानी	६७६	अगुवा	डिठियारा अगुआ करे	५४३
कोइला	भेखिन के मुख कोइला लावै	३२	मुल्ला	मुल्ला पढ़े कुरान का	३२११
जुलाहा	जो काशी कह गया जुलाहा	२५८५	जोगिया	कह मीराई जोगिया	४६८
बना	बना बाब हरि मिलै ना बाबर	३१७६	मुलना	मुलना पाण्डे दोउ भुलाने	१७५८
कपड़ा	कपड़ा न रंगे किसी के ले	४२	भोगवा	पर नारी का भोगवा	७६८
चित्ता	चित्ता बीर कमान नवतु है	४६३	मछरिया	मांछ मछरिया खाय	२७४६
हैला	हैला मारिचलो वहि देसवा	२५४७	सदना	सदना दिया गनाय	३२७६
पीपा	पीपा को परमोधिया	१२६८	नाभा	नाभा और रैदास कबीरा	८४७
मीरा	मीरा हरि के दास	४८६	कबीरा	नाभा और रैदास कबीरा	८४७

(३) इकारान्त:

मूल संज्ञायें — व्युत्पन्न संज्ञायें

शब्द	दोहा।पद	संख्या	शब्द	दोहा।पद	संख्या
हरि	घर ही मा हरि मिलै रे बारे	८७६	कुमति	कुमति छाड़ न बावेर	७४७
मूरति	कवि मूरति गढ़ी सूरति	२५४	सुमति	सुमति विचारी पांप पर ठाटे	१२५४

शब्द	दोहा।पद	संख्या	शब्द	दोहा।पद	संख्या
कथनि	कथनि कथे न पाव्यो	२३५	सुरति	सुरति निरति मोरी भई पदमिनी	२७८
दंवारि	वन में लगी दंवारि	१२४३	निरति	-तदेव-	२७८
मुक्ति	मुक्ति विचारी पाप पर लौटे	३२५४	झारि	झारि लगाई देह मा	२३६७
ळदानि	मिलि झुळदानि नारि	१६७५	घटहिं	घटहिं मां झारि पाव्यी	७६५
सभारि	बिना भगति सभारि	३२५०	जुगति	जोग जुगति का संगम किन्हा	२१३३
दृष्टि	दृष्टि न पावै कोय	६६८	नन्दुलि	नन्दुलि लिन्हे बाट	२३१२
रवि	रवि शशि का उजियार	३०६७			
शशि	रवि शशि दोनो समके राखे	६६५			
कमानि	सुरति के बानवे निरति के कमानि से	२१४६			
जोति	करै जोति विशाल सुन्दर	१७६८			
आदि	आदि पुरुष नैनन लखै	६५५			
मुनि	तहाँ न सुर मुनि जाय	२३४३			
विधि	नरक परे की विधि करै	५७५			
कानि	तजौन कुल की कानि	१८६५			
मति	मति राखा है गोय	३३७५			
सखि	सखि एक देखा अजब तमासा	१२७			
अग्नि	बरै अग्नि अभियंतकारा	२४२			
रघुपति	भज ले रघुपति का	४६२			

(४) ईकारान्त:

मूल संज्ञायें — व्युत्पन्न संज्ञायें

शब्द	दोहा।पद	संख्या	शब्द	दोहा।पद	संख्या
प्रानी	ते नल तन प्रानी	१२४३	निगोड़ी	ननद निगोड़ी जागे	१५८१

शब्द	दोहा।पद	संख्या	शब्द	दोहा।पद	संख्या
खिरकी	खोल खिड़की गगन पहुचा	२१२	कविताई	कविताई मन लाय	२३६०
ज्ञानी	जो बाँधै सो ग्यानी	१२६५	बड़ाई	बड़े बड़ाई पंडिता	३८६
अज्ञानी	अज्ञानी निंदा करै	३४६५	अंतरजानी	भेटै अंतरजानी	५६७
टट्टी	जैसे टट्टी हरिदेय के	१६८०४	वैरागी	ते गिरही वैरागी	३१०५
भूंसी	भूंसी मा बुशी भये	४०८	पाखण्डी	पाखण्डी जगलोय	१३७
लकरी	लकरी हरी नहीं तोर मुहम्मद	१३८६	गिरही	ते गिरही वैरागी	३१०५
अविनासी	परम पुरुष तो मूल अविनाशी	६२६	रोजगारी	कह मीता पंडित रोजगारी	३४०६६
फांसी	काल फांसी जग परै	३२७७	मौनी	मनका मौनी जे करै	३८८
खिचड़ी	खिचड़ी सतुवा देई कै	६७७	धनी	धनी मिला परिचय भई	२५४
पूंजी	पूंजी राखै सब चले	१६७३	कथनी	कथनी कथेन पाक्यो	५५
हुंडी	हुंडी अदन चलाक्या	६५६	बदनी	कथनी बदनी जे करै	३६५१
हस्ती	मन हस्ती मा चढ़त है	१२८८	अभिमानी	अभिमानी सब बुड़िहैं	५६६
त्रिकुटी	त्रिकुटी तरवर भेटिया	२३३	कलहिनी	कलहिनी वारी कुल ली	८७७
कसाई	सदन कसाई कहन का	१६५७	बैरी	बैरी के पहरे रहे	७४८
पानी	काया पानी धोक्या	३४६६	नेकी	नेकी भीश्त वदी है	८८
तिरबेनी	घाट हवै तिरबेनी	४६३	भगोई	भीतर भरी भंगोई	७५६
करनी	करनी ते ब्राह्मन भये	१२३६	लोई	जग ठगियन के लोई	३२६०
तिली	तिलि मूल एकई भई	३३३	कुलनाई	कहां रही कुलनाई	६४४
तारी	परिचम तारी खोव आपसा तोहि करै	३१६३	दुनयाई	एकई ही दुनियाई	८७८
बकरी	बकरी भैसा बड़े कटावहु	७६६	सुल्तानी	मुल्तानी धरी परना	४६७
नाई	का पंडित का नाई	१५६२	पदवी	तेय रूपदवी पाई	८२०
किरबी	किरबी कै निस्तारा रे	२६४	बीलारी	मूस बिलारी त्रासा	७८६
साखी	साखी मीतादास की	२१७६	अजाती	बहुत अजाती पार उतर गये	६५

(५) उकारान्त:

मूल संज्ञायें			व्युत्पन्न संज्ञायें		
शब्द	दोहा।पद	संख्या	शब्द	दोहा।पद	संख्या
भानु	कोटि भानु छवि ना जुरै	३२	कालु	कालु हमारा का करै	१२५४
बारु	बारु जारै पांव	३२१	चितु	चितु चंचल निश्चल किया	५४
विष्णु	इन्नु विष्णु गोहरावै हो	३१३१	सांचु	जहां बंदे के सांचु है	६२६
रघु	तजु रघु लीन्ह हन कोई	८६६	सठु	सठु का समझ न जाई	२७६
जगु	मीता जगु अंधा ह्वै	५४६	नाखु	नाखु भये का अगुवा मै है	१४३८

लिंग:

मीता साहब के काव्य में संज्ञा और सर्वनाम स्त्रिलिंग तथा पुलिंग के रूप में आये हैं। नपुंसक लिंग भी इनमें ही लुप्त हो गया है। वाक्य के अनुसार नपुंसक लिंग स्त्रिलिंग या पुल्लिंग बन गया है।

पुल्लिंग

शब्द	दोहा। पद	संख्या
गुरु	सतगुरु केवट संग ले	१२७५
अभिमान	पाहन की अभिमान नाव है	३८८
साधवा	ऐस धुकाले संगत ताकी	२५७
भानु	भानु तपै तिहुंलोक मां	८६४
वारु	वारु जारै पाव	६६६
निरंजन	लगन निरंजन सोधिया	६७७
पिया	मोहि पिया पिया धुनि लागी	१६८५

शब्द	दोहा । पद	संख्या
देवाला	सब कोई हंसा देवाला निकला	१७२३
गनेश	गौरी गनेश महेश मनाऊं	३५८१
महेश	गौरी गनेश महेश मनाऊं	३५८१
जीव	जीव-जन्तु पर मेहर नजर है	१३६०
नल	झूठे नल का को समुझावे	१६८६
ठगिया	ठगिया छाप तिलक झमकावे	२६७
नरक	नरक पंथ मां भीड़ बड़ी है	८५६
बादशाह	बादशाह बहु उमरा सैय्यद	१५६२
सिंह	तोहिं सिंह रूप देखाव्या	१७३७
सुज्जन	सुज्जनवादी सो बोले	१५७५
भाव	भाव भरम मे वे परे	५४८
ज्ञान	ग्यान छाड़ करु ध्यान का	६७
सूर	सूर लरै मैदान मां	१५८४
शशि	शशि रवि दोनों सम के राखे	२६८२
ब्रह्म	ब्रह्म मिले ते ब्रालना	३७५

स्त्रीलिंग:

कुमति	कुमति छाड़ नल बावरे	१६६४
भगति	करे भगति की आशा	६३८
कविताई	करि कविताई कान्ह की	१७३६
पूंजी	राम नाम पूंजी करे	८६७
गौरी	गौरी गनेश महेश मनावउ	१९७
अवनि	तब पग अवनि परना परे	१८५०
मीरा	मीरा के गगमाहि डारे	५३६

शब्द	दोहा । पद	संख्या
मूरत	लखि मूरत गढ़ी सुरति	५३७
सुरति	सुरति निरति मोरी भयी पदमिनी	२७८
निरति	-तदैव-	२७८
साखि	साखि एक देखा अजब तमासा	१३६४
तृष्णा	आसा तिष्णा कठिन है	२५६२
फांसी	मारे फांसी डारि	२८६४
कानी	कानी बिना न पाइयो	३१७८
स्तुति	करै स्तुति औ गीता	२४६५
दुरभति	दुरभति डारि खोय	१८६६
हांसी	तब उन हांसी करी	८५२
गति	राम की गति समुझ लौ के	२३६३
रानी	राजा हो या रानी रे	२३०६
किहानी	यह सबबकथ किहानी रे	१८६६

बहुवचन:

मीता साहब के काव्य में बहु वचन दो रूपों में प्रयुक्त हुआ है -

(१) मूल रूप बहुवचन प्रत्यय:- पुल्लिंग व्यंजन के एक वचन में शून्य प्रत्यय लगाकर बहुवचन बनाया गया है । साधारण रूप से इसका बोध तब तक नहीं हो सकता जब तक क्रिया अथवा विशेषण आदि को न समझा जाय ।

				दोहा । पद	संख्या
०+	दल +	०=	दल	दोनों दल हुसियारा हो	३२५७
०+	पंडित+	०=	पंडित	कह मीता पंडित रोजगारी	३४०६
०+	कमल+	०=	कमल	अष्ट कवल दल ब्रह्म निवासा	७६८

							दोहा। पद	संख्या
०	+	कमल्	+	०	=	कमल	द्वादस कमल जीव का वासा	४८६
०	+	सूर	+	०	=	सूर	सूरत्नौ मैदान मां	१९६४
०	+	साखा	+	०	=	साखा	तीन देवा साखा भये	२७५६
०	+	संत	+	०	=	संत	संत मिले ते सब बने	३२७६
०	+	मरकट्	+	०	=	मरकट्	ज्यौं मरकट की दौर	५५७
०	+	दीन्	+	०	=	दीन	दीन के दुरगति कबहुं न होई	२७६८
०	+	साकठ	+	०	=	साकठ	हे साकट की रीति	७६५
०	+	सैय्यद	+	०	=	सैय्यद	बहुत भये ते उमरा सैय्यद	२७६७
०	+	सुद्र	+	०	=	सुद्र	पेट वैश्य पग शुद्र	३२२४
०	+	ब्राह्मन	+	०	=	ब्राह्मन	मुंह ब्रह्म कर क्षात्रिया	२७६४
०	+	मुग़ल	+	०	=	मुग़ल	ह साधु की मुग़ल है	४२७
०	+	ज्ञान	+	०	=	ज्ञान	ग्यान छाड़ करु ध्यान का	२३२६
०	+	ठग	+	०	=	ठग	जग ठग-ठग खावे	५६०

(२) विकृत रूप बहुवचन प्रत्यय:- मीता साहब के वाणी वचन में मूल रूप एक वचन में प्रत्यय जोड़कर बहुवचन बनाए गये हैं ।

				दोहा । पद	संख्या
गुड़िया	+	अन् =	गुड़ियन	ख्याति खेले गुड़ियन	३१७८
नैन्	+	अन् =	नैनन	पार ब्रह्म नैनन लखे	३२१
चतुराई	+	ख्यां =	चतुराख्यां	किये कपट चतुराख्यां	१९८७
दाम्	+	अन =	दामन	खोटा दामन देय	४६६
पोथी	+	अन =	पोथिन	पोथिन पढ़ का होय	१२५५
संत्	+	अन =	संतन	संतन का ना ब्यापई	२३७६
विमुख	+	अन =	विमुखन	विमुखन संग ना बैठि	३२६८

वृदा	+	ऐ	=	विरखै	वन में विरखै होय	९५३
और	+	अन	=	औरन	औरन के संग जाय	२३७६
देव्	+	अन्	=	देवन	सब देवन के देव	१७८७
महल	+	अन्	=	महलन	साहब सब महलन बसै	७८८
बात	+	इयां	=	बतियां	सुन ससुरे की बतियां	३०९६
कोटि	+	अन	=	कोटिन	कोटिन मां कोइ पाइये	५०४
भेषि	+	न	=	भेषिन	भेषिन संग योगा किन्ही	१९०५
गुन्	+	अन	=	गुनन	नर फांसा पढ़ि गुनन का	५३६
सब्	+	अन	=	सबन	और सबन पर होई हो	२३०२
बांह	+	इया	=	बहिया	सततरे सतगुरु की बहिया	३५४५
संस	+	औ	=	संसौ		
सखि	+	अन	=	सखिन	मिलि ले सखिन का नागरी	४०८
परपंचि	+	अन	=	सखियन परपंचिन	यह माया परपंचिन	२२३
दास्	+	अन	=	दासन	हरिदासन सों बैर मानई	२७९०
दीन्	+	अन	=	दीनन	दीनन को जे लखि परै	३४६७
झूठ	+	न	=	झूठन	तै झूठन ना होई	४६७

<u>कारक रचना:</u>

वाक्य में अन्य पदों के साथ सम्बन्ध बताने वाले रूप को कारक कहा जाता है । कारक निम्नलिखित दो रूपों में प्रयुक्त होता है -

(१) <u>मूल रूप या शुन्य प्रत्यय रूप:-</u> कारक इस रूप में बिना किसी प्रत्यय के वाक्य में प्रयुक्त है अत: हम इसे शुन्य प्रत्ययुक्त रूप भी मान सकते हैं ।

(२) <u>विकृत रूप:-</u> इस रूप में कारक किसी प्रत्यय विभक्ति के रूप में प्रयुक्त हुआ है ।

कारक (विभक्ति):

निर्विभक्ति या संयोगी विभक्ति:

कर्ता: - मीता साहब के काव्य में कर्ता की प्रमुख विभक्ति ` ने ` के स्थान पर शून्य (०) विभक्ति या संयोगात्मक विभक्तियां जोड़कर उसके अर्थ को प्रकट किया गया है ।

विभक्ति प्रत्यय	संदर्भ	उदाहरण	संख्या
शून्य (०) तिमूर + ०	= तिमूर	तिमूर जाति रवि दास ते	५५५
कुमति + ०	= कुमति	कुमति जाति गुरु ज्ञान	६४५
भानु + ०	= भानु	भानु तपे तिहुंलोक मां	१२३६
बारु + ०	= बारु	बारु जारे पांय	२७६३
मन + ०	= मन	मन दरिया तब हाथै आवै	३०४५
अज्ञानी + ०	= अज्ञानी	अज्ञानी निंदा करे	७७७
हरिजन + ०	= हरिजन	हरिजन कातै नाहिं	३६६
बधिक + ०	= बधिक	बधिक लते जीव मारि	१६८०
निंदक + ०	= निंदक	निंदक नरके जाई	७८
मीता + ०	= मीता	जन मीता साँची कहे	३७८
ब्रह्मा + ०	= ब्रह्मा	ब्रह्मा तिन्हें न पावई	२५८३
पंडित + ०	= पंडित	पंडित जानत नाहि	६४७
माया + ०	= माया	माया बड़े भुलावई	१२५५
सुर + ०	= सुर	सुर न सकेया छोर	२३३८
गुरु + ०	= गुरु	सतगुरु ना पतियाय	३००२
हरिजन + ०	= हरिजन	हरिजन गिरही मांय	३३४४
मुल्ला + ०	= मुल्ला	मुल्ला पढ़े कुरान का	६६
संत + ०	= संत	संत न पंथ चलावई	१२१२

निरगुन	+	0	=	निरगुन	निरगुन कथनी का अर्थ	७७५
सुज्जन	+	0	=	सुज्जन	सुज्जन हरि का पावई	३०६४
गनिका	+	0	=	गनिका	गनिका पापी ना कती	५८८
काल	+	0	=	काल	काल करे तेहिं कौर	४४४
जीव	+	0	=	जीव	जीव ब्रह्म का जब मिले	३३५५
अंधा	+	0	=	अंधा	जग अंधा का जागई	११७७
देव	+	0	=	देव	तिनु देव जहाँ नहीं पहुचै	७७६
जुलाहा	+	0	=	जुलाहा	जो काशी कह गया जुलाहा	४६७
हिन्दू	+	0	=	हिन्दू	जोजम नरक बतावई, हिन्दू मुसलमान	३००८
मुसलमान	+	0	=	मुसलमान	-तदेव-	३००८
मकरी	+	0	=	मकरी	मकरी चढ़ी अकासा	१००४

प्रत्यय						दोहा । पद	संख्या
आ	कबीर	+	आ	=	कबीरा	कबीरा खोजा शरीर का	४४६
इया	गवार	+	इया	=	गवाँरिया	का अर्थ गंवारिया	१८५६
वां	डोगा	+	वा	=	डोगवां	डोगवां ना जाये	३२५८
उई	भंग	+	उई	=	भंगोई	भीतर भरी भंगोई	१२६४
आई	कुली	+	आई	=	कुलनाई	बूढ़ गई कुलनाई	२८६०
वा	पशु	+	वा	=	पशुवा	ताते पशुवा भ्रम आवे	२४३४
आई	दुनिया	+	आई	=	दुनियाई	बूढ़ि जाति दुनियाई	६५७
इया	ठग	+	इया	=	ठगिया	ठगिया छाप तिलक फ्रमकावे	३५६

कर्म कारक: - भीखा साहब के काव्य में कर्म कारक के रूप में शून्य विभक्ति एवं प्रत्यय से युक्त निम्नलिखित उदाहरण मिलते हैं । करण कारक का चिह्न `को` होता है लेकिन `को` यहां विभिन्न पदों में प्राप्त होता है । `को` विभक्ति कहीं-कहीं `का` के रूप में प्रयुक्त हुई है ।

	दोहा। पद	संख्या
० + हीर + ० = हीर	हीर लेऊ भुस डारि	३७६
० + भरम + ० = भरम	मीता भरम न राखई	१३६५
० + गुरु + ० = गुरु	गनिका संत गुरु काकिली	१६७८
० + वेद + ० = वेद	ना सुनि वेद पुरान	१३७६
० + पुरान + ० = पुरान	-तदेव-	१३७६
० + तीरथ + ० = तीरथ	तीरथ वरत तरै ना कोई	२७५६
० + बरत + ० = बरत	-तदेव-	२७५६
ऐ + राम + रामै	तौ तु रामै जानई	३६८२
ऐ + भूख = भूखै	नीद भूखे परि हरो	२७६१
ऐ + जल = जलै	ज्यों जलै बिन कबना परै	२६६४
ऐ + तिलकै = तिलकै	मुक्ति माला तत्व तिलकै	३००८
ऐ + मीरा = मीरै	जहर दीन्हा घोरि मीरै	५७२
ऐ + नाम = नामै	राम नामै ध्याइयो	२०१
हूं + तिन = तिनहूं	कुफ किया जम आइ कै तिहूं का मारा	५३

वे पद जिनके आगे कर्म कारक के लिए `को` के स्थान पर `का` विभक्ति का प्रयोग हुआ है -

दोहा । पद	संख्या
मुल्ला पढ़े कुरान का	१३७३
सीख मनन का छेय	४७६
कह मीता गज भार का	१२७५
औरन का करै सिख	३८३
औरे का कहै जाग	३८८
जो तु चाहो राम का	१६००
मन मक्का का खोजकर	६६८

दोहा । पद	संख्या
दीन के दुरमति कबहुं न होई	१७६६
साचे सुज्जन का गुरु मिलिया	४७५
साकठ का कुछ समुझ न जाई	७६६
ऐसे मठ का को समुझावै	२२५४
जीयत बकरिया का गहि मारा	३२७०
जग का दीन जनाई	३२०
बुझी न तुमका जाई	२५३
केहि का कुल्न कसाई	४७४
तिनका नाक दुवारे	१३६६
काल की जारि पर अमर पाए	६५६
ब्रह्म को भेंट जग नाहीं आए	१७६६
तिन अल्लाह का नहीं जाना	१६५६
उमड़ा ससा सिंह का मारा	२४७५

करण कारक:- करण कारक का चिह्न `से` है। जब किसी के साथ या द्वारा काम करने का बोध हो वहां करण कारक होता है। `से` के स्थान पर `तै` आदि विभक्ति का भी प्रयोग भीखा साहब के काव्य में मिलता है।

दोहा । पद	संख्या
तिमिर जाति रवि दरस तै	२२४
साचे तै तै हरि मिले	१६४८
भीखा हरिमन सो लगै	५७८
आप भुलावै सो से	१६४६
मनु स्वुई सो फंस रहा	१२५५
क्षमा दीनता सील तै, छमा तै भरपूरे	३०३

मुरुख सो चुप रहे	८५७
सुज्जन सो बोल	१५६३
पाँच तत्व और ब्रह्म ते	१७५६
पाँच तत्व से सब बना	१३४३
काशी ते ब्राह्मन भये	४६६
दुजन सो टेक बांधी	७७३
भिन्न भाव संतन सो नाही	६६४
कपट ज्ञान ते ना मिलै	३०११
तां सो काह छपाई	२६५७
परम हंस सो होइ कंवरी	१५७३
तब मन सो मन मनिया	६४७
बौरि पिय सो नेह	३४८७
सत्य नाम ते फांसी कटिहै	२६३८
हरिदासन सो बैर बानाई	१६४६
हरिचरनन से प्रिति	१८५६
लातन मारा रे	३४६८
किसी कै निस्तारा रे	२७५६

अपादान कारक चिह्न `से`:

दोहा । पद	संख्या
हरि ते काह छपाय	२०३४
जे सतगुरु ते न्यारि	६६३
मुल्ला पण्डित दोई ते हरिजन का मत न्यारा	१४६६
अब मैं तत्व मते बैठाना	१६७३

दोहा । पद	संख्या
जोहर तै या जोग कठिन है	१५७
जब संतन सो हारै	३९८३
मुरुख सौ ऐसे डरै	१६३२
वाद विवाद से साहब न्यारा	१७४६
चला जगत ते जीति	१३७४
पाहन कहिदे गंग ते दिन्हा	३७५
जगत मां सब कहहि भक्त	२६४८
पाहन वागा मिच दिया	३४२८
नैनन सुरति समानी रे	२७५६
काल माल में आई रे	२०६६
गिरहि मां है कूड़ा रे	३१०६
ह जुगु माहि जगु हन माहिं	३३६
जगु मां आय फसे जग फांसा रे	८३६
जग मां बाकी जीति	१३६२
मीरा के गर मांहि डारै	२८४६
नगरी में गाड वे रमितार	४६६
साहन में वै चोरकहावै	१६६४

अधिकरण कारक:- अधिकरण कारक का चिह्न `में`, `पे`, पर है । संस्कृत भाषा की तरह अकारान्त के रामे, मोहने, ग्रामें आदि की तरह मीता साहब ने भी इनका प्रयोग किया । यथा-

	दोहा।पद	संख्या
ऐ +नाक =नाके	निंदक नाके जाई	३२७०
में	मुख में पारिहै क्षारि	४४८

<u>सम्बन्ध कारक:-</u> सम्बन्ध कारक का चिह्न `का`, `की`, `के`, `ना`, `नी`, `नै` है । भीखा साहब के काव्य में इसकी प्रचुर मात्रा प्राप्त होती है ।

दोहा । पद	संख्या
मरम न पाया पीव का	६४८
पांच पचीसी की लहर	१२७९
जिनका अंकुरा पूर	३०६८
लोक लाज तजि जगत की	७९
सब देवन के देव	१३७९
साचे के हरि निकट है	३८९
भली गुरु जीव नारक के	४६८
कालु हमारा का करे	९८३
हम साहब के लोग	१९५४
घर के भेदि संत है	२८५८
जानै हरि के दास	५७
लिये मोट सिर पाप की	३०२
तीन लोक के जो हैं भीतर	१५८५
कहै भीखा संतन के मारग	२७४५३
वा धर केरा भेद	७५६
माया मोह की फांसी काही	२७४३
रवि शशि का उजियार	३५९
अध-उध के बीच	३३७२
हरि विमुखन के द्वार	६७
साहब के दरबार	२७४६
सतगुरु का सिर नाय	४७५
अब है पंथ हमार	१२२०

सम्बोधन कारक:- मीता साहब ने जहां तहां मन को, साधु को, लोगों को सम्बोधित करते हुए बहुत ही प्रचुर मात्रा में सम्बोधन कारक का प्रयोग किया है ।

दोहा । पद	संख्या
लगा राम सो नेहा रे बाबा, बिसरा तन धन गेहा	१२६०
रे मनुवा भज ले अन्तजानी, छूट जाय जनबानी	७६८
मिया मनु हाथ नहीं है, का भये वेत कहे हैं	३०५६
मनु रे काम बिना पछितइहैं, औसर कबहु न पइहैं	१६४५
सखि, एक देखा अजब तमाशा, अगम पंथ जब ताका	२३२
मनु समुझि देखि विचार बौरे, छुटि येहु संसार रे	२०४४
मनुवा काहे ते तु भूला, राम बिना है सूला	४४६
सधुवा करो संगत ताकी, जाके संग मिले अविनाशी	१३३६
रे सधुवा कहु कैसे घर जथिया	३०६२
रे साथी जानेगा जाननहारा	६८
सुनि रे गुझिया मता हमरा अते नहीं उबारा रे	१६३३
बाबा धोखे या जग मारा गुरु शब्द न जाय विचारा	३३२
रे भाई हरि बिसराये बूड़ा का माये में भूला	१७७६
मन रे बिनु सतगुरु को तारे और नहीं उपकारे	५५३
बहि जाति जग साधो कासो कहिव संदेश	१४३६
सुज्जन सुना संदेश हमारा, जग दारुन जग जार पासारा	७६६
छाड़ छाड़ साकठ चतुराई बुड़ि जाति तेहि जानि न जाई	३४५८
घर मां हरि मिले बकारे, बन का जाय गंवारा रे	१०४
औ मियां दरद बन्द दरवेशा, जिन हनक साकित के देख	२३०४
रे बकर पड़े तोरी बनाई बकरी मकरी जब खाई	१४३६
नलिनी ले मनका समुझाई, सोई सकल कुसलाई	१०४४

भजन बिनु कौन तरारे भाई, सो भजन संत सो पाई ६०४
भाई रे राम कहै जग सारा, सब पूछि जात मझधारा १५५३

सर्वनाम:

मीता साहब ने अपने काव्य में आठो प्रकार के सर्वनामों का प्रयोग किया है । हम संक्षेप में उनका अध्ययन करेंगे ।

(१) पुरुष वाचक सर्वनाम:- यह तीन प्रकार का होता है ।

(अ) उत्तम पुरुष: उत्तम पुरुष के सर्वनाम मूल रूप में एवं विकृत रूप में मीता साहब के काव्य में मिलते हैं -

	दोहा । पद	संख्या
हमार	अस है पंथ हमार	४४३
हमारे	जो हमरे मारग चले	२३२४
हमरे	सो सब हमरे आय	३३२
मै	जाति-पाति का मै नही चाहो	३०४६
हमारि	बानी अगम हमारि है	१५७६
हमका	सोई हमका मिलि है आई	३०५
हम	तब हम हतो तबै कोऊ नाता	१७८६
हमारा	भूल हमारा सब जाहिर भए	१०४
हमरी	समझो हमरी बोली रे	१३७४

(ब) मध्यम पुरुष:

तुम	तुम सुनो मडुका ज्ञान हो	३१०८
तुमका	तुमका कौन छुड़ावन आई	८४७

तेरा	तब सौदा है तेरा	३८८
तु	तु तो वोही का भाई	२४८६
तु	तु लोड़है हाठ केहाठ का	६७
तब	मियाजी तब किताब को बाचे	३०६
तोही	कुफ्र न पर तैही है	१३०५
तुमही	सो मारा तुमही	२८४६
तुम्हार	कहां रहनि तुम्हार	३१५६
तोरी	रे बजर पड़े तोरी कमनाई	२३८१

(ब) अन्य पुरुष:

	दोहा । पद	संख्या
तेही	कह मीता तेही न लौन गनिये	११६६
तिन्हे	तिन्हे मिले अविनाशी	२४८३
ताके	ताके प्रेम न नेम	४४७
ते	ते माथे की और	१२६५
उहि	कह मीता उहि दिहि छूटते	१४८६
तिनके	तिनके ढिग ते	५६३
सो	सो तो पीपा आय	२०५५
ताते	ताते पदवी होय	१०४४
आप	आप सा तोहिं कहै	३०६२
उई	कह मीता उर्ड अलख है	४३६
तिनते	तिनते करिया सांप भला	५६
तिनका	तिनका करिए नाश	११३३
इनका	इनका ना पतियाय	३३५३
वो	वो पहुंचा दरबारी	३७६

	दोहा । पद	संख्या
सो	सो तो पीपा आय	६५५
ताते	ताते पदवी होय	१२७४
आप	आप सा तोहिं करें	३६
उई	कह मीता उइ अलख है	२६६२
तिनते	तिनते कपिया सांप भला	३०३२
तिनका	तिनका करिए नाश	३२८६
इनका	इनका ना पतियाय	३२३२
वो	वो पहुंचा दरबारी	८६६
सोई	पीर सोई जो आन मिलावे	४३६
ई	दोजख में ते ह परै	२६५६
तेई	तेई खुद्र जे मांस खाते	१८५८
वे	साहब मे वे चोर कहावै	१४४३
तिनहु	तिनहु का गति जानी रे	६६७
ताहि	ताहि ते गुरु किन्ह सहाई	४७
तिन्हे	तिन्हे भिन्न को काना	४४३
ताकी	ताकी करें सहाय	१६४०
वाही	तु तो वाही का भाई	२७८६

संकेतवाचक सर्वनाम:

शब्द	दोहा । पद	संख्या
इनमें	इनमें संत न होय	६५८
या	या विधि पारें पाय	३२६४
तैसा	मन तैसे का तैसा	१७३६
वा	वा घर केरा भेद	७७२

शब्द	दोहा । पद	संख्या
इनते	इनते बड़ा न कोय	८३०
ई	कह मीरा ई जोगिया	१३७४
अस	जो अस संगी होय	२६६४
तिनते	तिनते कसिया सांप भला	३०३२
एहि	एहि जग आइयो	१५४७

प्रश्नवाचक सर्वनाम:

शब्द	दोहा । पद	संख्या
काह	हरि ते काह कुपाय	१९५६
का	काये बदे का होय	३३८
कहां	कहां तन जइयो पार	१६३६
कवनै	अन्तर कवनै काम	४५
कौथी	कौथी ब्राह्मन आय	१५६३
काह	हरि ते काह कुपाय	१९५६
केहि	कंठी माला काम केहि आवै	५५४
को	ऐसे बालका को समझावे	१५६२
कैसे	नींद कैसे आवो रे	२७७६
कासो	कासो कहिल सन्देश	३४२२

अनिश्चय वाचक सर्वनाम:

शब्द	दोहा । पद	संख्या
कोई	दूसर बरतन कोई	४०३
कोनी	कोनी कुछा होय	२००४

काहु	जो काहु दुख देइ	६५६
कोय	करनी बिरला कोय	२२७०

निजवाचक सर्वनाम:

शब्द	दोहा । पद	संख्या
अपने	अपने लोकै जाई	१३६५
निज	तब कहिए निज ग्यानी	८४४
आप	आप सा तोहि करै	१८५

सम्बन्ध वाचक सर्वनाम:

शब्द	दोहा । पद	संख्या
जो	जो बांधै सो ज्ञानी	१६६८
जिन्हे	जिन्हे मिले नहीं राम	२२५
जहां	जहां तीनों के गम नहीं	६६३
जेहिं	जेहिं लिन्हा अपनाई	२४३५
जिन	जिन या सृष्टि बनाई	२०३२
जे	सीता का जे आई	५५
जिनका	मिले रामे ता राम जिनका	१६६

अन्य:

शब्द	दोहा । पद	संख्या
सबही	व अंग सबही भवन में	८४६
सबमें	सबमें ब्रह्म समान	२०१

शब्द	दोहा । पद	संख्या
बिरला	बिरला पावै भेव	२०२०
कुछ	जाति-पाति कुछ हरि के नाहीं	२१
सबै	राम भक्ति बिनु सबै शूद्र है	११३८
और	और न समरथ कोई रे	५०१
जो कोई	अगम पंथ का जो कोई जाय	१२४२

विशेषण:

भीखा साहब के काव्य में विशेषण के सभी प्रकार उपलब्ध होते हैं ।

गुण वाचक विशेषण:

विशेषण	विशेष्य	दोहा । पद	संख्या
पार	ब्रह्म	पारब्रह्म नैनन लखे	१२१२
अगम	पुर	भीखा पहुँचा अगमपुर	४२७
सत	गुरु	सतगुरु की संग ले	२०५३
हरी	टट्टी	जैसे टट्टी हरी देख के	३७४
हीरा	काया	हीरा काया भीतर	१७३
बद	अजामिल	अजामिल बद ना हता	३१२
सुन्दर	काया	काया सुन्दर बहु बनी	३९७२
सुलच्छनि	नारि	मिलि सुलच्छनि नारि	१४
भेद	भाव	भेद भाव में जे परे	२०६७
मूल	डोर	मूल डोर मन लाग्या	१६०४
आदि	पुरुष	आदि पुरुष नैनन लखा	७६७
बाँका	नाम	नाम बाँका देख	२०७८

विशेषण	विशेष्य	दोहा । पद	संख्या
करिया	सांप	तिनते करिया सांप भला	३०३२
अगम	(छवि	है छवि अगम अपार	३१
अपार	छवि	-तदेव-	३१
अनूप	रूप	रूप अनूप महबूब का	१६७६
अमर	पुर	अमरपुर का डेरा किन्हा	२०६६
सु	वास	कछु आवे वास सुवास	११८८
बुरा	सुभाय	जिनका बुरा सुभाय	१७४७
विसाल	(जोति	राम रूप विसाल मूरत	३४४२
सुन्दर	(	काया सुन्दर बहु बनी	४४४
निगोड़ी	ननद	ननद निगोड़ी जागै	१७८६
चतुर	नारिन	वैकी संग चतुर नारिन के	१६४०
अदव	दुण्डी	दुण्डी अदल चलाहहे	७७४
सकल	मंगल	सकल मंगल होय	१५४८
चहुं	दिसि	चहु दिसि भरा ताग भंडार	२६०३
निगुन	ब्योहारा	ये निगुन ब्योहारा रे	६६६
अंधा	जग	जग अन्धा का जानई	१०६६
उत्तम	पुरुष		४४६
नदाना	मुलुक	समझै न मुलुक नदाना रे	८५५

परिमाण वाचक:

विशेषण	विशेष्य	दोहा । पद	संख्या
पउवा	बोझ	बोझ न पउआ ले चले	२६०६
मनन	सीस	सीस मनन का देय	२०८

संकेतवाचक विशेषण:

विशेषण	विशेष्य	दोहा । पद	संख्या
सो	निंदक	सो निंदक ठहराय	२४९६
इन	संतन	इन संतन नहीं पंथ चलावा	४९५
वा	घर	वा घर केरा भेद	५०९
या	सृष्टि	जिन या सृष्टि बनाई	२३६३
सो	मन	सीता सो मन माना	४०१
आनि	देव	आनि देव को ध्यावे	२०६
जो	पद	जो पद परम दुहेली	१७८०

संख्यावाचक विशेषण:

विशेषण	विशेष्य	दोहा । पद	संख्या
चौदह	पुर	चौदहपुर भव सागर	१२०३
लाखन	पोथी	लाखन पोथी बाखिया	३९९
पांच	तत्व	पांच तत्व और ब्रह्म ते	२३९५
पांचौ	इन्द्रिय	पांचौ इन्द्रिय बस कै राखे	१९८
पचीसो	तन्मात्राएं	पांच पचीसो जे बस करै	२०९९
प्रथमै	जग	प्रथमै छाड़े जग व्यवहारा	३१७७
तीन	लोक	तीन लोक के उपर	२१२
तिर	बेनी	घाट ह्वै तिर बेनी	१७३०
दसवां	द्वारा	दसवा द्वारा सो लिया	१०२८
बहु	(काया)	काया सुन्दर बहु बनी	४७
त्रि	कुटी	त्रिकुटी तावर भेदिया	९५८

विशेषण	विशेष्य	दोहा । पद	संख्या
तीन	घर	तीन घर चौरी भयी	३१९९
धारि	बान	धारि बान सब सुद्र है	१९३
चौ	मुख	चौ मुख कोयला भरा	२०८७
कोटि	भानु	कोटि भानु छबि ना जुरै	१७४६
दस	पद	का भया पद दस गाई	१०७७
चौबीस तीन दसौ	अवतारा	चौबीस दस तीन अवतारा	५५
चौरासी	दुख	चौरासी दुख ज्ञानी	३३६
एक	नउवा	एक नउवा द्वि बनिया	३०५३
दुई	बनिया	-तदेव-	३०५३
दोनों	दल	दोनों दल हुसियारा	६२६

क्रिया:

वर्तमान अनिश्चयार्थ:

शब्द	क्रिया	दोहा । पद	संख्या
जाति	जाता है	सील जाति सन्मान बिन	१९९८
तजे	तजता है	बड़ा बड़ाई ना तजे	५८६
होई	हो जाता है	बाझा होई हतराय	१०७६
तपै	तपता है	भानु तपै तिहु लोक जाय	३७७
जारै	जलाता है	वारु जारै पांय	८०२
बाधै	बांधता है	जो बाधै सो ज्ञानी	२६२
आवै	आता है	मन दखिया तब हाथे आवै	३००७
हैं	हैं	साचे के हरि निकट हैं ।	१८७०

शब्द	क्रिया	दोहा । पद	संख्या
करै	करते हैं	अज्ञानी निंदा करै	३०७६
मिले	मिलते हैं	साचे ते हरि मिले	१८६
कहै	कहता हूं	जब मीता सांची कहै	२०८७
आई	(है)	धोखा कुछो न आई	८०४
चाहै	चाहते हैं	हीरा चाहै चोय	५०७
बसै	बसता है, रहता है	हरि हीरा छिटे बसै	२०३४
खोजै	खोजते हैं	का खोजै कहीं दूर	२०७६
मुड़ाए	कराए	गृह ते उतरै मुड़ मुड़ाए	६३
उतरै	उतरे		
धरा	रखा	नाम धरा वैरागी	१२७४
लगै	लगाता है	मीता हरिमन सो लगै	१८६८
जानत	जानते हैं	पण्डित जानत नाहि	२६५६
बना	बना है	पांच तत्व मेल बना	७०७
रहते हैं	रहते हैं	जो रहते हैं पास	३८५
मानई	मानते हैं	हरिदासन सो बैर मानई	१४०५
मिलावै	मिलता है	संत मिलावै सोय	६८८
पावै	प्राप्त होता है	पावै पद निरमान	२०६८
चाहत है	चाहते हैं	चाहत है सो जान	७६
पढ़ै	पढ़ता है	मुल्ला पढ़ै कुरान का	१५४६
भाखै	बोलता है	पण्डित भाखै वेद	६०६

पूर्ण वर्तमान निश्चयार्थ:

शब्द	क्रिया	दोहा । पद	संख्या
मिलै	मिलता है	पीर गुरु बिन ना मिलै	५५५

शब्द	क्रिया	दोहा । पद	संख्या
छपे	छिपता है	धूर उड़ाये ना छपे	१३३६
बैठई	बैठते हैं	मीता कबहु न बैठई	४८३
चढ़त	चढ़ता है	मन हस्ती मा चढ़त है	१०५७
कहै	कहता है	सांची सांची जग कहे	३३४८
लागे	लगता है	जग लागे तोहि फीक	२८
फिरै	फिरता है	कह मीता बन का फिरै	१०९८
गनी	गिना	ज्यो गनती लारवन गनी	३४६६

मूर्त अनिश्चयार्थ:

शब्द	क्रिया	दोहा । पद	संख्या
पाया	पाया	भरम न पाया जीव का	२३८७
पाख्या	पाया	मीता पारख पाख्या	५३६
पहुंचा	पहुंचा	मीता पहुंचा अगमपुर	१२८६
दीन्हा	दिया	सतगुरु दीन्हा जोग	३६८
करै	करता है	दाम दिर स्तुति करै	६७०
विचारिया	विचारा	मीता तत्व विचारिया	२४७६
दीन्ही	दिया	भली विन्ही डारि	१६०६
बाधिया	बाधा	लाल पोथी बाधिया	३५८
बंधे	बंधी	बंधे न पांच पचीस	१७०८
मिले	मिले	कह मीता हरि नहीं मिले	८७६
खीस	खिसक गया	मानुष तन गा खीस	३०१२
जीता	जीत लिया	जीता चौदह लोक का	३०३
मिलति	मिली	गनिका सतगुरु कामिली	२०६०
उतारा	उतारा	रीझ उतारा	४४५

शब्द	क्रिया	दोहा । पद	संख्या
भये	हुए	संत साह गृह में भए	१२३७
साय	साते थे	किसी के के सांय	३७३
पतियाय	विश्वास करना	सतगुरु गुरु ना पतियाय	३२१८
लगाई	लगा लिया	क्षारि लगाई देहमा	११७६
रखायी	रखा	जटा रखाई सीस	३२२६
काटी	काटा	माया मोह की फांसी काटी	६२२
तोरि	तोड़ा	तोरि लाज जंजीर	१०४७
लरा	लड़ा	मीता पांचो सो लरा	२८५६
पीजिया	पिया	प्रेम पियाला पिजिया	३२७८
भलका	दिखाई दिया	पदम भलका सीस	८२८
गये	गये	गये संत निरवारि	४०७
भाखिया	बोला	जो देखा सो भाखिया	१५०६
सीचिंया	सींचा	जन मीता जन सीचिंया	५३५
किया	किया	चितु चंचल निश्चल किया	३४२६
पहचानिया	पहचान	सो मीता पहचानिया	४०४
बनाना	बनाया	मीत बनाना सोय	२५६८

भविष्यत्व:

शब्द	क्रिया	दोहा । पद	संख्या
ठहरेगा	रुकेगा	ठहरेगा कोइ घूर	३२७६
जाई	जायगा	निंदक नाक जाई	४८१
परिहै	पड़ेगा	मुंह में परिहै धूर	६६४
छूटे	छूटेगा	कैसे के जग छूटे	१०५५
खोई	खोयगा	साठी कबहु न खोई	६२६

शब्द	क्रिया	दोहा । पद	संख्या
मारे जायेंगे	मारे जायेगे	नींदक मारे जायेगे	२७५६
जाइए	जायेंगे	ते सब नाके जाइए	३४६
करिहे	करेंगे	जो करिहे ठग विद्या	११५६
करे	करेगी	का करे पिया तन भान	६५६
मिलिहे	मिलेगा	आखिर या तन मिलिहे धूरि	३२०६
मरिहों	मरुंगा	हम न मरिहो, मरिहों संसार	६२

वर्तमान कालिक कृदन्त:

शब्द	क्रिया	दोहा । पद	संख्या
लाय	लाकर	कवितार्ई मन लाय	१०२२
देयकै	देकर	जैसे टट्टी हरी देयकै	४५५
ले	लेकर	सतगुरु केवट संगले	३३
कर	करके	मीता कहै विवेक कर	२०१२
कै कै	करके	कृषि कै कै साथ	७४३
खोई	खोकर	जलम खोई धन मूसे	१२१८
मूंदके	मूंदकर	सा कठ मुंह का मूद के	१२८१
सुनि सुनि	सुन सुन कर	सुनि सुनि नवे बहुत सठ लागे	३२८

भूतकालिक कृदन्त:

शब्द	क्रिया	दोहा । पद	संख्या
आव-जानी	आते हुये जाते हुये	मीटी आवाजानी	
छपोई	छिपा हुआ	हरि ते काह छपोई	२०७१

शब्द	क्रिया	दोहा । पद	संख्या
ठाढ़े	खड़े हुए	ठाढ़े कहां समाई	३४
बाढ़े	बाढ़े	बाढ़े मीर कुटाई	३६४
खोज	खोजा	खोज मिलि रघुराई	५३६
दगा	धोखा खाना	दगा कबहु न सहिलो	१७३६
बैठे	बैठा हुआ	बैठे परे न इनके मेले	४०६
पैर	पड़ा हुआ	-तदैव-	४०६
कानफुकाए	कानफुकाये	का भए कानफुकाए बावरे	१८४६
मरदन करत	मरदन करते हुये	मरदन करत राजा सुख पाए	५६३

क्रियार्थक कृदंत:

शब्द	क्रिया	दोहा । पद	संख्या
बोरन वारे		बोरन वारे खारी पावै	३७२
तारन वारे		तारन वारे उल्दा	१२६७
सिरजन हारे		हम तो सिरजन हारा जानै	२६७०

कर्म वाच्य क्रिया का प्रयोग:

शब्द	क्रिया	दोहा । पद	संख्या
लखै	दिखाई देता है	पार ब्रह्म नैनन लखै	२५६३
न्हवानई	स्नान कराया जाय	बार का का न्हवावई	६४७
उपदेशिए	शिक्षा दी जाय	साकठ का उपदेशिए	२३०४
मारे जायेंगे	मारे जायेंगे	निंदक मारे जायेंगे	१६७३
देय	दिया जाता है	सीस मनन का देय	३२८१

शब्द	क्रिया	दोहा । पद	संख्या
लखि	दिखाई देता है	शनि तब लखि परे	३००५
दिख	दिखाई देती है	जग मा दीख बहुत चतुराई	५५६
कहावै	कहलाता है	कह मीता कोई दासकहावै	१२७६

आज्ञा:

शब्द	क्रिया	दोहा । पद	संख्या
गनिये	समझिये	कह मीता तोहि न लोग गनिये	१७४३
मानो	समझो	मानो कुन्ती पुतरा	४४२
छाड़	छोड़	कुमति छाड़ नल बावरे	१५०८
करो	करो	पण्डित करो विचार	२८५०
धरो	रखो	सुमिता धरो संभारि	७८०
धोयले	धोय लो	कह मीता मन धोयले	१५४
निहुरे	झुको		३०५५
भजिए	भजिए	भजिए राम दुहेले	१७४७
खोज	खोजो	अबहु सठ खोज करतारा	५८७
भजले	भजो	भजले राम सजीवन मूरि	७३०

क्रिया विशेषण (अव्यय):

मुख्यत: क्रिया विशेषण के चार रूप होते हैं -

(१) काल वाचक

(२) स्थान वाचक

(३) रीति वाचक

(४) परिमाण वाचक

काल वाचक:

शब्द	दोहा । पद	संख्या
जब	काढ़ बदी जब देय	२१६०
अब	अब मोहि पिया धुनि लागी	२७५
तब	पाक होईं तब दीन	३०६७
तौं लग	तौं लग हरि ना पाईं	९७८
अंते	अंते नहीं उबारा रे	४७६
कबहुं	कबहुं होईं हर स्वाना रे	१६२६
तबौ	तबौ न सूझै हो	२४८७
अंत	अंत दुख देखा रे	२६५६
तबका	हो तो रबका, तबका	८०८

स्थान वाचक:

शब्द	दोहा । पद	संख्या
जहां	जहां काल डर नाहीं रे	२००२
ह्यां	ह्या ते कूद व्हां गए	४४२
व्हां	-तदेव-	४४२
पास	जो रहते हैं पास	१२६३
दूर	प्या है बड़ि दूर	३७२
अन्त	अन्त नहीं वह ठौर	८८
भीतर	भीतर भरी भंगोईं	३१६४
बाहरि	घर बाहरि लखी भरी	९७७
वहां	वहां की बाते तब कही	२३६६
तहां	तहां बंदगी कीजे	३६६

शब्द	दोहा । पद	संख्या
तत्वां	रवि शशि सम तत्वां किये	३०३
ऊपर	जैसे उपर तैसे भीतर	१६३०
तख्यां	चौथा माल टिकाना तख्यां	५४७
तहं	कह मीता ठवली ने भय तहं	२८३६
यहां	यहां की बानि तब हम छाड़ि	६६४
उहां	उहां है दुख घनेरा	३४८८
बीच	नदिया बीच भयानक	६३७
अंते	अंते नहीं उबारा रे	१२४८

रीति वाचक:

शब्द	दोहा । पद	संख्या
जैसे	जैसे मकरी जाय	३२४६
तैसे	जैसे ऊपर तैसे भीतर	१६३०
ऊपर	-तदेव-	१६३०
तैसा	-तदेव-	१६३०
ज्यो	ज्यो अगिनि हीड़ डारा	६३२
अस	अस है पंथ हमार	२४८३
ऐसा	ऐसा पद आये	२३८
ऐसे	सतगुरु ऐसे ऐसे	१६३४
कैसे	रामगति समुझ परे हो कैसे	२५१२
निश्चय	नाहि त निश्चय नाके जे हों	७७६
नाहक	नाहक जन्म गवावई	२३०६
हाति	हाति करो भलाई	३३३

शब्द	दोहा । पद	संख्या
अथ	अथ-उथ सौदा करी	१३४२
उथ	-तदेव-	१३४२
नाहीं	नाहीं बूड़ी है सब संसारा रे	२७७
नहीं	नहीं है रूप नहीं रेखा	११७५
जिन	जिन तन धनवारा	२६२६
मत	मत रावा है गोया	३२४८
काहे	मनुवा काहे तु भूला	४३८
येहि विधि	येहि बिधि भक्ति न होई	८०३

परिमाण वाचक:

शब्द	दोहा । पद	संख्या
अधीकी	अधीकी जाय भुलाय	१७१४
बिना	बिना उसीला चाकरी	३८५
न्यारा	जगत ते न्यारा रे	३८१५
अपार	रुस हवे पंथ अपार	६६८

स मा स:

कर्मधारय समास:

शब्द	दोहा । पद	संख्या
कुमति	कुमति जाति गुरु ज्ञान	३८३५
पार ब्रह्म	पार ब्रह्म नैनन छवे	६६६
अगमपुर	मीता पहुंचा अगमपुर	१३०६

शब्द	दोहा । पद	संख्या
हरि टट्टी	टट्टी हरी देयके	३२६८
सतगुरु	सतगुर ना पतियाय	३२७
हीरा काया	हीरा काया भीतर	२१६४
अमर वस	अजर अमर वस सोजु	१४८
अजर वस	-तदेव-	१४८
अनूप रूप	रूप अनूप महबूब का	५२२
परम सुख	सतगुरु पाया परम सुख पावै	१४६४
नैक नजर	नैक नजर साहब पहचाना	२७३३
अच्छा कपड़ा	अच्छा कपड़ा मोल न गावै	२३५३
खोटे दाम	सठ बाधे खोटे दाम	४४८
अनहद सिंगी	अनहद सिंगी अनहद राग	१६४२
अनहद राग	-तदेव-	१६४२
अलख पुरुष	अलख पुरुष सो निसदिन दृष्टि	७५६
पाखंड भेष	पाखण्ड भेष सकल जग भूला	१६४६

द्वन्द्व समास:

शब्द	दोहा । पद	संख्या
छापा-माला	छापा माला भरम है	१६५४
सुर -ससि	सुर ससि बेधिके	६४४
नेम-धर्म	नेम-धर्म क्रिया तप संयम	१६२८
काम-क्रोध	काम क्रोध धरियार तहाँ है	१६२८
देव-मुनि	ब्रह्मा विष्णु महेश देव मुनि	२८४६
वेद-कितेब	वेद कितेव की गम नाहीं	३३१
तुलसी-सुरा	तुलसी सुरा की कविताई	३४२२

शब्द	दोहा । पद	संख्या
हिन्दू-तुरक	हिन्दू तुरक का एकुई पीर	१५३७
पचीसो-चोर	चोर पचीसो जागत भागे	२०४४
दीन-गरीबी	दीन गरीबी रहे समाना	५४१
मास-मछरिया	मास मछरिया खात है	१६४२
ध्रुव-प्रहलाद	अम्बरीश और ध्रुव प्रहलाद	२०८६
नारद-व्यास	सनक सनन्दन नारद व्यास	६५
जीव-जन्तु	जीव जन्तु काहु न दुखावे	१६२३
कामी-क्रोधी	कामी-क्रोधी ना तरे	३४२२
गोरख-भर्थरी	गोरख भर्थरी, गोपीचन्द	७७६
नामा-पीपा	दास कबीरा नामा-पीपा	१२४८
संध्या-होम	संध्या होम देखाई सोई	३२८
खान-पियन	खान-पियन का पाखण्ड	१८४०
नरक-सरग	नरक सरग की कछु सुधि नाही	२६८६
प्रेम-भक्ति	प्रेम भक्ति रहे मंगलाल	६७५
अल्ला-राम	अल्ला-राम करिमा केरि	१७५०
राग-द्वेष	राग द्वेष मिट जावे	३०८४
आवा-गमन	आवा गमन मिटावई	४३७

तत्पुरुष समास:

शब्द	दोहा । पद	संख्या
गुरु ज्ञान	कुमति नाहि गुरु ज्ञान	१७४३
मन दरिया	मन दरिया तब हाथे आवे	२०४६
लोक लाज	लोक लाज तजि जगत की	३६

शब्द	दोहा । पद	संख्या
काल मुख	काल मुख जे परे	२०७७
जग जीवन	जग जीवन उआर में है	१४०
प्रेम प्रकास	प्रेम प्रकास तब सहज होई	
संत संगति	संत संगति का भरम न पाए	१२६४
गरभ-वास	गरभ वास तो नरक है	११८६
मन माल	मन माला हरदम का जपना	८५६
अमीय रस	और मद अमीय रस चखा	३६५
मेहर-दया	मेहर दया बिन पीव न पावै	१६६०
जल-तरंग	जल-तरंग जबही मा मिलिया	६२६
प्रयाग-अयोध्या	प्रयाग-अयोध्या तहते नाही	२१७५
मानुष-जलम	मानुष-जलम नसाई	८८
भेष-संग	भेष संग हम भटकै	१०४२
सुख-सागर	कह मीता सुख सागर भेटै	३१०३
ब्रह्मशिला	ब्रह्मशिला तब खोलई	१७२०
प्रेम-पियाला	प्रेम-पियाला पीजिया	३८१

पिंड:

शब्द	दोहा । पद	संख्या
चौदहपुर	चौदहपुर भवसागर	३२८
एक कवल	एक कवल मा ब्रह्म है	२१६०
अष्ट कवल	अष्ट कवल दल ब्रह्म निवास	३२०८
त्रिकुटी	त्रिकुटी तर वर भेटिया	२८४
एक तार	काढ़ तार एक तार तो	३३७७
अठारह वरन	वरन अठारह औ दसबीस	४४०

शब्द	दोहा । पद	संख्या
पांच तत्व	पांच तत्व के सकल सरीर	२०७६
एकुई पीर	हिन्दू तुरक का एकुई पीर	५३६
सूद्र-गंवार	जहां कुमति सो सूद्र गंवार	१३१६
चौबीस-अवतार	ऊपरी चौबीस अवतारा	४३७
पांच-ककरी	ककरी पांच हुवे जीव भीतर	२९७०
नवलख जल के जीव		३८२
दसे पंछी	दसे पछी परवाना	४२६
तीस स्थावर	तीस स्थावर विस्थारा	३१६४
बीस लाख पसु-प्रानी	बीस लाख पसु प्रानी	२५८४
चारि मानुष	चारि मानुष तन प्रानी	२९८०
छः भेष)) कानबे पाखण्ड)	छः भेष छानबे पाखण्ड	३२१
चादेह कोटि ज्ञान)) एक कोटि भूसी)	चौदह कोटि ज्ञान तेहि केरा एक कोटि जग भूसी राखी	४२६ १६२६

अव्ययी भाव:

शब्द	दोहा । पद	संख्या
अज्ञानी	अज्ञानी निंदा करै	४२६
अन्तकाल	अन्तकाल जम मुगरा मारिहै	२०२

अभिव्यंजना-शैली:

शैली काव्य का एक प्रमुख अंग है । जिस काव्य की शैली जितनी प्रभावशाली होगी वह काव्य उतना ही लोक-प्रिय होगा । भीखा साहब ने दोहा,

सोरठा, चौपाई, पद, बावै, गीत, गारी आदि छंदों में अपने काव्य का सृजन किया तथा अपने समय की प्रचलित सभी शैलियों को अपनाया एवं उनका अच्छी तरह निर्वाह किया । मीता साहब की शैली को हम निम्नलिखित रूपों में विभक्त कर सकते हैं -

(१) सामान्य निरूपण शैली :

इस शैली में किसी बात को बहुत ही सरल ढ़ंग से कहा गया है ।[१]

(२) प्रस्थापन शैली :

इस शैली में ब्रह्म की स्थिति का निर्धारण किया गया है ।[२]

(३) स्वानुभाव प्रकाशन शैली :

इस शैली का सहारा लेकर मीता साहब ने अपने आध्यात्मिक अनुभवों को संसार के समक्ष प्रस्तुत किया है । व्यक्तिगत अनुभूति ही इस शैली की आत्मा है ।[३]

(४) साक्ष्य प्रस्तुतीकरण शैली :

मीता साहब ने इस शैली के माध्यम से ऐतिहासिक एवं धार्मिक साक्ष्यों द्वारा अपने तर्क को प्रमाणित कराया है ।[४]

---

[१] तिमुर आति रविदरस ते, कुमति जाति गुण गान ।
हस्तलिखित ग्रंथ, मीतादास, पदसंख्या-५५५

[२] हम तो सिखन हारा जानै, आनि मनै नहीं मानै ।
ह०लि० ग्रंथ, मीतादास, पद संख्या-१३११

[३] अब मै तत्व मते बौराना, काह करौ वे ग्याना ।
ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, पद संख्या-८२५

[४] भक्ति सरि और नहीं कुछ कारी, सठ का जानिन जाई । वही ७२६

(५) विरोध व्यंजना:

मीता साहब ने इस शैली के माध्यम से समाज के दो विरोधी आचरणों पर व्यंग करते हुए उसकी निन्दा की है।[१]

(६) प्रत्यादान शैली:

मीता साहब ने अज्ञानी पण्डितों, मुल्लाओं आदि के ज्ञान में इस शैली के माध्यम से एक चुनौती दी है।[२]

(७) अनुताप-प्रकाशन शैली:

मीता साहब ने इस शैली में अपनी त्रुटियों का उल्लेख किया है।[३]

(८) शब्दावृति शैली:

मीता साहब ने इस शैली में किसी विशेष श० को बार-बार दुहराकर उसके दुर्गुणों के प्रति सजग रहने का कहा है।[४]

---

[१] मन हस्ती मां चढ़त है काम न टट्टू होय ।
ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, पद संख्या- १९२६

[२] साहब सब महलन बसे तु केही करे हलाल,
काजी मारत दाद न लागा नाम धरा दावेश ।
ज्येही थपावे तेहि मारे बिहस्त की आशा लावे ।
ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, पदसंख्या- १७११

[३] निज गति कहो तो को पतियायी, जग का जानि न जाइ ।
ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, पदसंख्या- १६२८

[४] और भरम मा ना परै, यह नौका सुकृत नाबरे ।
ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, पदसंख्या- ६८७

(९) प्रबोधन शैली :

मीतादास ने गुरु का आसन ग्रहण करके गुरुभगादी है इस शैली में लोगों को उपदेश दिया है[१]।

(१०) प्रतिबोधन शैली :

जहां एक ओर प्रबोधन शैली सरल शब्दों में उपदेश निहित है वहीं दूसरी ओर मीता साहब ने प्रतिबोध शैली में भय दिखाते हुए डांट-फटकार कर संसार के नश्वरता का चित्र खिंचते हुए उपदेश दिया है । अत: मीता साहब के काव्य में प्रतिबोधन शैली के तीन रूप दिखाई देते हैं[२] -

(क) भय प्रदर्शन:- इस शैली में मीता साहब ने लोगों को काल का भय दिखाकर उसे सच्ची भगवद्भक्ति की ओर प्रेरित होने का उपदेश दिया[३]।

(ख) निन्दा शैली :- इस शैली में ओझाओं के कुकर्मों की भर्त्सना करते हुए मीता साहब ने लोगों का सत्य की ओर आह्वान किया है[४]।

---

[१] बरन अठारह का करै ब्रह्म सकल घट माहि ।
बरन दूसरा है नहीं पंडित करो विचार ।।
- ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, पदसंख्या-१३७६

[२] नेकी भिश्त बदी है ते ठीक करो रे भाई ,
मुल्ला पण्डित दोउ ते हरिजन का मत न्यारा ।
-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, पद संख्या-५४६

[३] दीन हो तजु तजु लोक बड़ाई येहि सरिहै कुछ नाहिं ।
भक्ति सरि और नहीं कुछ बाही, सट् का जानि न जाई ।।
-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या-८२८

[४] रामगति समुझ र परै हो कैसे, सतगुरु से पे ऐसे ।
जग मे अधरिन हाट लगाई --------------- ।।
-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या-2011

(ग) नश्वरता प्रकाशन शैली :- इस शैली में इस संसार को नश्वर, व्यर्थ, सारहीन बताते हुए इससे विरत होने का उपदेश दिया गया है ।[1]

(११) सम्बोधन शैली :

सम्बोधन शैली के अन्तर्गत मीतादास जी स्वयं को एवं लोगों को सम्बोधित करते हुए उपदेश दिया है । इसे दो रूपों में विभाजित कर सकते हैं -

(क) लोक सम्बोधन शैली :- इस शैली में संसार के लोगों को सम्बोधित करते हुए मीता साहब ने उपदेश दिया है ।[2]

(ख) आत्म सम्बोधन शैली :- इस शैली में स्वयं को सम्बोधित किया गया है ।

(१२) प्रश्नोत्तर शैली :

इस शैली के पदों में प्रश्न पूछा गया है एवं स्वयं ही उसका उत्तर दिया गया है । यह बहुत ही प्राचीन शैली है ।[3]

---

[1] लाग राम सों नेहा रे बाबा, बिसरा तन दसरोहा ।
-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या-१२६०

[2] (क) मिया मनु हाथ नहीं है का भए वेद कहे हैं ।
-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या-३८६
(ख) सधुवा के वे संगत ताकर जाके संग मिलै अविनाशी ।
-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या- १३३६

[3] कब साहब धरिया अवतारे ।
(ख) राम रूप विशाल मुख केहि बिधि देखन पावों ।
-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या-८२१

(१३) प्रश्न शैली :

इस शैली में प्रश्नों के माध्यम से ही उत्तर को भी व्यक्त किया जाता है । उत्तर सदा प्रश्न के साथ ही ध्वनित होता है ।[१]

(१४) संवाद शैली :

इस शैली में नाटक जैसे संवाद का उल्लेख किया जाता है जैसे मंच पर नाटक विस्तार से खेला जा रहा हो ।

मायाा-पीपा सो कहो, तुम बाहर का जाव ।
-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या-२१

(१५) खण्डन शैली :

इस शैली में किसी चिर-परिचित तथ्य को नवीन तर्कों से काटा जाता है जैसे -

रामचन्द्र अभिमान किया जब धनुष तोर ।
राम न मारा रावना, ना उन सीता ब्याही ।
परम पुरुष नहीं कैसे मारा नाउन

(१६) निषेध शैली :

समाज में किस प्रकार आचरण हितकर हो ऐसे अहितकर आचरणों का निषेध इस शैली में किया गया है ।[२]

---

[१] भजन बिन कौन तरा रे भाई ।
-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या- ६२३

[२] कवी भेष पाखण्ड है इनमें संत न होय ।
देह दगाई द्वारिका गोकुल पड़ गए फफूका ।।
-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या-११९७।

(१७) फारसी निष्ट शैली:

इस शैली में मीतासाहब ने कुछ अरबी फारसी शब्दों में अपने उपदेशों का भाव प्रकाशन किया है जैसे -

मियां मनु आये हाथ नहिं है का भये वेद कहे हैं ।

-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या-३८६।

(१८) प्रतीक शैली:

प्रतीकों के माध्यम से अपने भावों को व्यक्त करना भारतीय ही नहीं अपितु वैदेशिक कवियों, लेखकों का भी दृष्टिकोण रहा है । कबीर दास जी जैसे संतो ने तो प्रतीकों का इतना अधिक प्रयोग किया है कि उनका अर्थ लगाना दुष्कर हो जाता है । इसी प्रकार मीता साहब के प्रतीकों का उनके काव्य में रीढ़ बन गए तो अत्योक्ति न होगी । किसी किसी स्थान पर इसका विशद रूप में प्रयोग किया गया है । उन्होंने परम्परागत प्रतीकों के साथ-साथ अपने स्वयं के प्रतीक का भी प्रयोग किया है । उनके प्रतीकों में गुफा, गंगा, यमुना, गगन, गुड़िया, ससम, पिया, सुवासिन, मंडवा, साधिन, नागिन, कुंवा, बणिज, देवा, सास, ननद, , गढ़, सवा, सिंह, स्यार, मोर, बैल, नदी, नीभर, काग आदि प्रमुख है ।

मीता साहब ने सांसारिकता को भुसि[१] का प्रतीक दिया है । इस दुखमय संसार को नदी एवं उसको पार कराने वाले नाव का प्रतीक भगवद् भक्ति को नाव तथा केवट को गुरु के प्रतीक से सम्बोधित किया है।[२]

---

[१] मीता तत्व निकासिया भुसि दीन्हीं डारि ।

-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या-१८६३।

[२] पार पार सठ कहत है सूझै वार न पार ।
नदी नाहि नइया नहीं, कहा तन जइहै पार ।।

-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या-१३१८।

इस पद में कर्म को झूला (हिंडोला) तथा पाप पुण्य को हिंडोले की दो डोरियों तथा झुलाने वाली नारी को माया का प्रतीक दिखलाया गया है।[1]

मीतादास ने एक पद में चलनी को सारे अवगुणों से युक्त पुरुष एवं दूध को भावभक्ति का प्रतीक माना है।[2] मीतादास ने एक पद में गुरु को श्वसुर माया को घूंघट, ईश्वर को प्रियतम, गांव को नयी नवेली दुल्हन, संसार को नदी, जीवन को डोंगा या नाव एवं गुरु को केवट का प्रतीक माना है।[3] ये प्रतीक कितने सजीव एवं सटीक है कि ससुर की बातों को सुनकर माया का घूंघट हटना अपने प्रियतम परब्रह्म से मिलने भयानक संसार की नदी के बीच केवट रूपी गुरु की सहायता से पार उतरना एवं परब्रह्म रूपी पति को पाकर जीव रूपी दुल्हन का सुहागिन होना वास्तव में एक सरल प्रतीक ही नहीं वरन् रहस्यवाद का सरलीकरण है।

मीता साहब शरीर को मटकी बनाकर योग और युक्ति का दधि डालकर धैर्य रूपी मथनी को स्थिर करके मंथन करना प्रारम्भ किया जिसके फलस्वरूप रवि-शशि रूप तत्व की उपलब्धि हुई जिससे तीनो गुण की कटनी से काढ़कर बाहर निकाला। अब इस तत्व को पीने के पश्चात् मन पचीसो लिप्साओं

---

[1] सतगुरु केवट संग ले अथहा देई थहाय,
करम हिंडोले जा पड़ा पाप पुण्य दोऊ डारे
माया बड़े झुलावई, सुर न सके या ओर।
-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, पद संख्या- २३१०।

[2] चलनी दुहि दूधे चहे कुमति लिए चहे राम।
कलहिनी, नारि कुपंदाकी का करें पिया तन भान।।
- ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या-८०३।

[3] सुन सुसर की बतिया घूंघट हटी पनिया।
- ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या- १०३०।

के वश में हो गयी । संतो के वरदान से गगन में अनहद नाद होने लगा । संसार के निस्सार छाछ (मट्ठे) को जब छोड़ा तभी तत्वरूपी माखन मिल सका ।[1] मीता साहब कहते हैं कि अगम पंथ में जाने पर एक से एक बढ़कर आश्चर्यजनक उपलब्धियां देखने को मिलती हैं । बिना बादल के गगन मण्डल में अनहद नाद के साथ दिव्य बिजली का प्रकाश दिखाई देता है । बिना वर्षा के मनरूपी तालाब में प्रसन्नता रूपी पानी की वृद्धि होती है ।[2]

मीता साहब ने ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव को नाई, बारि के प्रतीक से सम्बोधित किया है ।[3] मीता साहब ने इस संसार को दुल्हन का नैहर एवं परमेश्वर के घर को प्रीतम का घर का प्रतीक मानते हुए कहते हैं कि हम जीव रूपी दुल्हन का मन इस नश्वर संसार के नैहर में नहीं लग रहा है । उसे अपने प्रियतम की धुन लगी है, मूलाधार में धैर्यरूपी माड़े को स्थिर करके पांच इन्द्रियां एवं पचीस लिप्साओं को वश में करने पर अनाहद नादरूपी अगणित बाजे बजने लगते हैं तथा दुल्हन का शरीर हल्दी के रंग का हो जाता है । प्रियतम के वियोग में दुल्हन का शरीर जलकर राख हो रहा है । दूर देश के वासी प्रियतम ईश्वर से जीव-दुल्हन का गवना हुआ है । इस प्रकार दोनों का स्नेह उमड़ सका है ।[4]

---

[1] अब तत्व मते बौराना, कहि करो ले ग्यान ।
-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या- १८३० ।

[2] सखि एक देखा अजब तमाशा ------
-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या- ६४० ।

[3] एक नउवा दुई बरिया, जुआ आप फंस जग फांसा रे ।
-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या- १७६२ ।

[4] अब ना नैहर मन लागे, पिया पिया धुनि लागे ।
-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या- ३६२ ।

रहस्यवाद:

प्रतीक शैली का एक रूप रहस्यवाद भी है । ईश्वर से साक्षात्कार एवं सिद्धियों का वर्णन उन्होंने अपने रहस्यवाद के माध्यम से किया है ।

भीखा साहब का रहस्यवाद कबीर के रहस्यवाद से किसी भी प्रकार कम स्तर का नहीं है । ईश्वर से साक्षात्कार के रहस्य को समझाते हुए भीखा साहब कहते हैं कि कर्म को नष्ट करने के पश्चात् मैंने योग और मुक्ति पर विचार किया जिससे मेरे अन्दर का सारा भ्रम मिट गया । मैंने निशंक होकर ईश्वर के साथ रति क्रीड़ा की नींद, भूख, तृष्णा आदि को भूलकर मैं रातदिन जागता रहा जिससे ब्रह्म अग्नि का मेरे घट के भीतर उद्गार हुआ एवं अमृत रस की निरन्तर वर्षा होने लगी । मूल द्वार पर दिव्य प्रकाश की ज्योति जलने लगी । सुषुम्ना मार्ग से होता हुआ मैंने गगन मण्डल में प्रवेश किया अर्थात् मेरी कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्ना मार्ग से गगन मार्ग में प्रवेश कर गयी । जहाँ अष्ट कंवल दल के भीतर मेरे प्रियतम से साक्षात्कार हुआ जिसके कारण इस संसार में मेरा आवा-गमन समाप्त हो गया । जिसे अपने प्रियतम से मिलने की पीड़ा होगी वही इस रहस्य को समझ सकता है । यह संसार तो इससे अलग-थलग है । वह काल का क्रीत दास बना हुआ है[1] । भीखा साहब जीव रूपी कुमारी को ईश्वर से भँवरी रचाकर साक्षात्कार करने का वर्णन करते हुए कहते हैं कि उस असीम ब्रह्माण्ड नायक के साथ भँवरी रच जाने पर जीव आनंद मनाने लगता है । मूलाधार चक्र में निरंजन ब्रह्म से भँवरी रचाने का लग्न सोधा गया । गंगा यमुना रूपी इड़ा पिंगला के बीच धैर्य रूपी माड़ो को स्थिर करके पांचो इन्द्रियों को वश में करके छाजन दिया गया । इतना हो जाने पर पचीसो इन्द्रियों की दासियाँ सेवा के लिए संलग्न हो गयी । तत्पश्चात् जीव-कुमारी अगम के स्थान में जाकर अपने प्रियतम को

---

[1] सत्यनाम झाकारे, काम कागज फारि डारा अगम ताकारे ।
-ह०लि०ग्रंथ, भीखादास, पद संख्या-४८६ ।

प्राप्त किया । प्रियतम परब्रह्म को प्राप्त करने पर उनके साथ रति का परमानन्द प्राप्त किया । अब मेरा आवागमन पुन: इस संसार में न होगा ।[1]

अपने रहस्यवाद को और स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि हे साधु तुम्हारे अभ्यंतर में ब्रह्माग्नि का उद्गार कैसे होगा क्योंकि बिना ब्रह्माग्नि के उद्गार के तुम्हारा कल्याण सम्भव नहीं है । माला लेने से कोई लाभ नहीं । यह मत सत्य है कि अभ्यंतर में ब्रह्माग्नि के उद्गार से ही जीव का कल्याण सम्भव है । जब द्वादश कमल उलटकर अष्ट दल कमल की ओर अग्रसर होगा तभी दिव्य प्रकाश होगा । जब सुरति और निरति लगेगी तभी अष्टदल कमल का बन्द कपाट खुलेगा एवं ब्रह्म से साक्षात्कार हो सकेगा । तभी काल से मुक्ति मिलेगी एवं मनुष्य भवसागर से पार हो सकेगा ।[2]

छंद:

मीता साहब के विषय में यह कहना कि वे पढ़े लिखे न थे कुछ उचित नहीं जान पड़ता । उन्होंने चिर-प्रचलित बहुत से छंदों का प्रयोग किया है -

सार:

इसके प्रत्येक चरण में १६ और १२ के विराम से २८ मात्राएं होती हैं । अंत में दो गुरु रहते हैं । इसे ललित पद भी कहते हैं ।

---

[1] आनंद मंगल गाइया पार पै नाह ।
-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या - २५०३ ।

[2] रे सधुवा कहु कैसे पार जाइया ।
- ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या- ६२५ ।

SIS I I IS I IS II II I SI II S S
रामचन्द अभिमान किया बहु, धनुष तोर जब डारा
ताही दोष हरी गै सीता, न्याव करै करतारा
दशरथ के मन ऐसी आई, जो न रखी करतारा
बन का पठै जानकी खोई, गरब तोर सब डारा ।

तारक:

इसके प्रत्येक चरण में ३० मात्रायें होती हैं । १६ और १४ पर विराम होता है । अंत में मगण (SSS) रहता है ।

II S S I I IS S S S II S SS I SS S
घर माहि हरि मिलै रे बौरे, बन को जाई गवारा रे ।
सन्तन संग प्रिति के किन्है, तन मन धन जिन वारा रे ।।
संसौ सोग कबहुना छूटै, छूटै हरि दरबारा रे ।
जहाँ ससौ तंह मुक्ता नाही, मुक्ता राम पियारा रे ।।

\+ + + +

कपट चाल हाथै ना आवै, संतन के रजधानी रे ।
कपट चाल नरक निज होइहै, तौहि परै ना जानी रे ।।
कपरा न रंग किसी कैसे, छल बल कै ना आने रे ।
हर मानिषा हवै बादे फिरि हो, किसी के रे झाड़ो रे ।।

चौपई:

इसके प्रत्येक चरण में १५ मात्राएं होती हैं और अंत में (S I) होता है -

II S S I IS II S I S II S II I IS S I
भज ले राम सजीवन मूरि, आखिर या तन मिलिहै धूरि ।
अब की निकट फिरि है दूरि । और देह मां मिलीन मूरि ।
तदपि माया है भरि पूरी । स्य हाथी और सबक हारि ।

चौपाई:

इसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राएं होती है । तुकांत में जगण (।S।) अथवा तगण (SS।) का निषेध होता है । अंत में प्राय: दो गुरु वर्ण रखे जाते हैं ।

S। S। ।। ।। S S ।। SS S SS SS
राम नाम भजु अंतर ध्यानी, छूटि जाइं चौरासी हानी ।
कन फुकवे सो, परै न जानी, या तो नाम मित्र निरवानी ।।

अरिल्ल:

इसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राएं होती है । अंत में भगण (S।।) या यगण (।S) होता है ।

।।। ।।। S। ।। S SS S।। S S S ।। SS
अगम विधुन प्रभु जन के टारे, दासन के वे है रखवारे ।
अदना देव ते काह सरे रे, समरथ साहब राम हमारे ।।

वीर या आल्हा छंद:

इसके प्रत्येक चरण में ३१ मात्राएं होती है । १६,१५ पर विराम होता हैं । अंत में S। होना आवश्यक है ।

।।। S। S S S। S। S S ।। ।। SS S।
अगम पंथ का जो कोइ जाय, सो या अवनिज देखे आय ।
किरी उटव धारि ले आय, उटंवा महलन नाचे आय ।।

गीतिका:

इसके प्रत्येक चरण में १४-१२ पर यति देकर २६ मात्राएं होती हैं ।

चरण के अंत में लघु तथा गुरु होना आवश्यक है ।

S । । ।S S। S S ।।। S ।। ।। ।S
पांच सखियां संग ठिल्हो, निरख के तह मिल गई ।
S। S ।। S । S।। ।। । S SS ।S
कुंभ का जल नाय छागर, सुमति ले बाढ़ी भई ।।
S । S।। S । ।।S S । S S ।। ।S
मेटि आवन जान सखियो, काल फांसी कट गई ।
।S S S S । ।। ।। ।S ।।S ।। ।S
कहै मीता बाद लघु नल, बिना करनी सुख नहीं ।।

दिग्पाल:

१२,१२=२४ मात्रे की रेखता भी इसी तरह होता है । यह आंचलिक भाषा भोजपुरी का छंद है । इसमें कुल मात्राएं होती हैं । १२,१२ पर विराम लगता है अन्त में दो गुरु होते हैं ।

।। ।S SS S। S S।। SS S
गुरु मिले सैनी राम, तो मंगल गावो हो ।

कबीरा नानिक कोटि तिन्हे समुझाऊ हो ।

कह मीता हरीदास, तिन्हे समुझाउ हो ।

राधिका:

इसमें कुल ३२ मात्राएं होती हैं । १३,८ पर विराम होता है । अन्त में लघु गुरु का कोई विशेष नियम नहीं है ।

S । S। S ।। ।S S S।। S ।
पार ब्रह्म पारस भले, जो मिलई कोय ।
S S ।।। ।S । ।। ।।। । S ।
आवा गमन मिटावई, फिर भवन न होय ।।

दोहा:

इसमें चार चरण होते हैं । पहले और तीसरे में १३,१३ और दूसरे तथा चौथे में ११,११ मात्राएं होती हैं । विषम चरणों में जगण (।S।) होता

होता है और सब चरणों के अन्त में गुरु लघु (ऽ।) होना चाहिए ।

सोरठा:

इसमें चार चरण होते हैं पहले और तीसरे में ११,११ और दूसरे तथा चौथे में १३,१३ मात्रायें होती हैं । विषम चरणों में जगण (ऽ।।) होता है और सब चरणों क अन्त में गुरु व लघु (ऽ।) होने चाहिए ।

> मीता हरिका दास, जो देखा हरि भाखिया ।
> ना मानै विश्वास भुला जग औधा ह्वै ।।

अलंकार:

मीता साहब ने अनपे काव्य में बहुत से अलंकारों का प्रयोग किया है । अलंकारों का प्रयोग उन्होंने अनावश्यक रूप से काव्य को सजाने के लिए नहीं किया वरन् स्वाभाविक रूप से उनकी अभिव्यक्ति हो गयी है ।

छेकानुप्रास:- जहां एक या अनेक अक्षर की आवृत्ति केवल एक बार हो वहां छेकानुप्रास होता है ।

> भरम भुलाना साधवा, कविता॰ मन लाय ।
> मरम न पाया जीव का, क्रोध-कहां ते जाय ।।

वृत्यानुप्रास:- जहां एक या अनेक वर्णों की आवृत्ति कई बार हो वहां वृत्यानुप्रास अलंकार होता है ।

> हरि हीरा हिरदै बसै का खोजै बड़ी दूर ।
> कह मीता सतगुरु बिना, मुंह में परिहै धूर ।।

<u>श्रुत्यानुप्रास:</u>- जहाँ तालु कण्ठ, दन्त्य आदि स्थानों से उच्चारित होने वाले व्यंजनों की अर्थात् एक स्थान से उच्चारित होने वाले वर्णों की समानता हो उसे श्रुत्यानुप्रास कहते हैं ।

> तिमिर जाति रवि दरस ते, कुमति जाति गुरुज्ञान ।
> सीठ जाति सन्मान बिनु, भगति जाति अभिमान ।।

उपर्युक्त दोहे में अधिकतर दन्त्य अक्षरों का समावेश है अतः यह श्रुत्यानुप्रास अलंकार है ।

<u>अंत्यानुप्रास:</u>- प्रत्येक छंद में कम से कम चार चरण होते हैं । चारों चरणों के अंत्याक्षर को तुकांत कहते हैं । दोहे में केवल दूसरे और चौथे चरण में तुकांत होता है । इस तुकांत को अंत्यानुप्रास कहते हैं ।

> राम नाम जाके मन आवै, सो रामिते तुरत मिल जावै ।
> जीभ रहे रामै ना पावै, गाई बजाय जात भरि जावै ।।
>
> \+ + + +
>
> पार ब्रह्म नैनन लखे, सब देवन के देव ।
> मीता पारस पाइया, करो न पाहन सेव ।।

<u>पुनरुक्तिप्रकाश:</u>- भाव को अधिक रुचिकर बनाने के लिए एक ही शब्द जहाँ कई बार कहा जाय वहाँ पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार होता है ।

> डार डार बारी फिरे, पात-पात फिरे कूर ।
> मीता मूठे पाइया, हरि के रहे हजूर ।।

<u>वक्रोक्ति:</u>

कहे हुए वाक्य का श्लेष से या काकु से और अर्थ कल्पित किया जाय

अर्थात् किसी कहे हुए वाक्य का अर्थ वक्ता कुछ लगावे और श्रोता कुछ । वहां वक्रोक्ति अलंकार होता है । इसके दो भेद होते हैं -

(अ) श्लेष वक्रोक्ति:- जहां पर वक्ता की कही हुई बात को श्लेष द्वारा वक्ता का आशय से भिन्न अर्थ समझ लिया जाय वहां श्लेष वक्रोक्ति अलंकार होता है -

लैकुरि नहीं चली पनिहे कुअना है बड़ी दूरि ।
पनिया हाथ न अइहै, मुख मां परिहै धूरि ।।
+ + + +
मयका लगै सुहावन हो, जो का ससुरे न जाय ।
ससुरे के हो आवन हो, औरन मन हवै जाय ।।

(ब) काकु वक्रोक्ति:- जहां शब्द के उच्चारण में कंठ ध्वनि से कुछ और अर्थ निकले वहां काकु वक्रोक्ति अलंकार होता है -

सूकरि करै अतर की पारिख, मुर्गी मांछिले फारै ।
कुकुरा बैठे पोथी बांचै, सुनै मछरिया ज्ञानै ।।

श्लेष:

जहां ऐसे शब्दों का प्रयोग हो जिनके एक से अधिक अर्थ होते हों वहां श्लेषालंकार होता है ।

सुनि सुनि नवै बहुत सठ लागै, भीतर भीतर भरी भंगोरैं ।
चित्रा, चोर, कमानि नवति है, नवे विदुन की लोरैं ।।

अर्थालंकार:

उपमालंकार:

जब दो वस्तुओं में पृथकता रहते हुए भी कोई समता वर्णन किया जाय तब उपमालंकार होता है -

राम गति सतगुरु परे धौ कैसे ।
सतगुरु सेये ऐसे ।
माया-मोह की टूटी फांसी ।
तितुक होय रहु जैसे ।

लुप्तोपमालंकार:

जहां उपमा के चारो अंगों (उपमेय, उपमान, साधारण और वाचक) से किसी एक दो अथवा तीन का बोध हो वहां लुप्तोपमालंकार होता है ।

धर्मलुप्तालंकार:

जहां उपमेय, उपमान और वाचक हो धर्म का कथन न हो वहां धर्मलुप्तालंकार होता है ।

चाहे बड़ाई जगत में, ते नर बड़े न होय ।
मीत दीनता जो करे, हरि समान सो होय ।।

प्रतीकालंकार:

जहां उपमेय की अपेक्षा उपमान में लघुता का वर्णन किया जाय वहां प्रतीक अलंकार होता है -

कोटि भानु छवि ना जुरै, ते देवन्ह के देव ।
सो मीता यह जानिया, सतगुरु केरी सेव ।।

रूपक अलंकार:

जहाँ उपमेय को उपमान का रूप कहा जाय वहाँ रूपक अलंकार होता है +

अभेद रूपक:- जहाँ उपमेय और उपमान की पूर्ण रूप से एकरूपता दिखायी जाय वहाँ अभेद रूपक अलंकार होता है -

पांच पचीसो की लहर, जो बाधै सो ज्ञानी ।
मन-दरिया तब हाथे आवे भेटै अन्तरजानी ।।

सांग रूपक अलंकार:- जहाँ उपमा के समस्त अंगों का आरोप उपमेय में किया जाय वहाँ सांग रूपक अलंकार होता है -

मुख ब्राह्मण कर क्षत्रिया पेट वैश्य पग शुद्र ।
ई संग सबही नवन मैं, को ब्राह्मण को शुद्र ।।
मूल डोर मन लाइया, बंध धरन मा दीन ।
त्रिकुटी तरवर भेटियां, मीता भाखै बीन ।।

निरंग रूपक:- जहाँ पर केवल उपमान के प्रधान गुण का आरोप उपमेय पर किया जाय वहाँ निरंग रूपक अलंकार होता है -

चौदहपुर भव-सागर बसै ते दुखिया लोग ।
मीता पहुंचा अगमपुर, सतगुरु दीन्हा जोग ।।

यहाँ पर भव को समुद्र का रूप स्वीकार कर लिया गया है उसके और भेद नहीं बताए गये हैं ।

परंपरित रूपक:- परंपरित शब्द का अर्थ है सिलसिलेवार । इस रूपक में पहले एक रूपक बनाया जाता है और उस रूपक के आधार पर एक दूसरे रूपकों का वर्णन या निरूपण होता है । इसमें प्रधान रूपक का कारण दूसरा ही रूपक होता

है । इसे परंपरित रूपक अलंकार कहते हैं ।

नदी एक बाढ़ी अगम अपार, माया मोह है कगार ।
नाव नवलै नीर नहीं फरिया बूढ़ति है संसार ।।
काम-क्रोध धरियार तहां है वेद रवे रखवार ।
नाधि न सकै आनि ताहि की, तीन गुनन की धार ।।

परिणाम:

जहां पर उपमेय से सम्बन्धित क्रिया का सम्बन्ध उपमान से हो जाय वहां परिणाम अलंकार होता है -

हरिनाम सुधारस पीजै रे, जाते जुग-जुग जी जैरे ।
धरनी मूल कंद दीज रे, तब घटहिं रसायन की थे रे ।।

उल्लेख:

किसी कारक से किसी का वर्णन बहुत प्रकार से किया जाय वहां उल्लेख अलंकार होता है -

मारु रे मारु जाने नहि पावे, काम क्रोध दोनो दक्या रे ।
हं जमु मांही, जनु बन मांही, येहि बड़े दुख दक्या रे ।।

स्मरण अलंकार:

जहां पूर्व समय में देखी हुई वस्तु (उपमेय) के समान दूसरी वस्तु के देखने से उसकी स्मृति हो जाय वहां स्मरण अलंकार होता है -

मयका लगै सुहावन हो, जौ लग ससुरे न जाय ।
ससुरे के हो आयन हो, मन औरे न हो जाय ।।
गौने ते आयी री दोनो, चितै-चितै मुसकाय ।
कोउन कहै दोनों जानै सेजार के रे सुभाय ।।

कारक दीपक अलंकार:

क्रियाएं कई एक हों पर उनका कर्ता एक हो वह कारक दीपक अलंकार कहलाता है ।

> अगम विगुन प्रभु जन के टारे, दासन के वे हैं रखवारे ।
> मदना देव ते काह सारे, समरथ साहब राम हमारे ।।

दृष्टांत अलंकार:

दृष्टान्त में दो वाक्य होते हैं एक उपमेय और दूसरा उपमान । दोनों वाक्यों का पृथक-पृथक धर्म होते हुए भी एक बिंब तथा दूसरा उसका प्रतिबिंब जान पड़ता है । दोनों के बीच यह समता बिना वाचक शब्दों के प्रतीत होता है -

> बड़ा बड़ाई ना तजे, वाका होई इतराय ।
> भानु तपै तिहुं लोक मां, बारु जारे पांय ।।

उदाहरण अलंकार:

कोई साधारण बात कहकर दिखलाई जाय वहां उदाहरण अलंकार होता है -

> छापा माला भरम है, पाखण्डीन का जारि ।
> जसे टट्टी हरी देय कै, बधिक लेत जीव मारि ।।

निदर्शना अलंकार:

जहां दो वाक्यों के अर्थ में विभिन्नता रहते हुए भी समता का ऐसा भाव प्रदर्शित किया जाय कि दो एक से जान पड़े वहां निदर्शना अलंकार होता है -

चलनी दुहि दूधें चहै, कुमति लिो चहै राम ।
कलहिनी नारि कुलदानी, का करे पिया जनमान ।।

उत्पेदाा अलंकार:

किसी वस्तु के अनुरूप बलपूर्वक कोई उपमान कल्पित किया जाय वहाँ उत्पेदाालंकार होता है -

दाम दिये, अस्तुति करे, बिन पाये करे निंदा ।
कह मीता तेही नहीं न गन्यि, मानों कुरी पुतरा ।।

विनोक्ति अलंकार:

जहाँ 'बिना' 'रहित' आदि शब्दों के सहारे एक के बिना दूसरी वस्तु की शोभा अथवा अशोभा का वर्णन किया जाय वहाँ विनोक्ति अलंकार होता है -

जो तुम चाहो रामका, सुनिश धरो संभारि ।
बिनु सुमिता हरिना मिले, मीता कही विचारि ।।

परिकर अलंकार:

जहाँ कोई ऐसा विशेषण लाया जाय जो उस पद की क्रिया से सम्बन्ध रखता हो वहाँ परिकर अलंकार कहा जाता है -

भव जल अगम अगाधि, पार कैसे पावै हो ।
नहीं केवट नाहि नाव, तो कौन उबारे हो ।
सतगुरु केवट सेव, नाम करु नौका हो ।
करु पांचो का डाड़ि पचीसो खेवा हो ।।

विभावनालंकार:

जहाँ कारण और कार्य के सम्बन्ध में चमत्कारपूर्ण कल्पना की जाय वहाँ विभावनालंकार होता है -

सखि एक देखा अजब तमाशा, अगम पंथ जब ताका ।
बिनु बादर बहु दामिनी दमकै, बिनु बरखा सर बाढ़ा ।।
बाल अग्नि पर शारका बाढ़ी, बिनु बासा बासा सराबाढ़ा ।।
बालन हार किन फिर देखा, चरन कमल अभिलाषा ।

विशेषोक्ति अलंकार:

परिपूर्ण कारण के होते हुए भी जहाँ कार्य का उद्भव न हो वहाँ विशेषोक्ति अलंकार होता है -

झलक झलकै कोटि रवि शशि सुरद चन्दा तह नहीं ।
देखि छबि मैं भई भवरि, जगत हाँसी तब भई ।।

विचित्र अलंकार:

जहाँ किये गये कार्य के विपरीत फल की इच्छा करे वहाँ विचित्र अलंकार होता है -

कुमति छाड़ नर बावरे, क्यो बदै का होय ।
छोटे दामन देय कै, हीरा चाहै लोय ।।

अधिकालंकार:

जहाँ पर कोई वस्तु छोटे से आधार पर रख दी जाय वहाँ अधिकालंकार होता है -

जो कुछ चौदह लोक माँ सो सब हमरे आय ।
राम दया ते पाइया, अब को लई छुड़ाय ।।

प्रत्यनीक अलंकार:

जहाँ पर शत्रु मित्रता का व्यवहार करने लगे और मित्र शत्रु का वहाँ प्रत्यनीक अलंकार होता है । -

सुमति सोहागिन मारन लागी, देखो भाग्य हमारी रे ।
बारि धाट्ट कोई रोकत नहीं, भये चोर सब सारे रे ।।

अर्थांतरन्यासालंकार:

जहां किसी साधारण बात को कहकर पुन: उसको किसी दृढ़ उदाहरण से प्रकट किया जाय वहां अर्थांतरन्यासालंकार होता है -

मन का मौजी जो करे पावै पद निरमान ।
साकठ मुंह का मूंद के, चालत है सो जान ।।

विकस्वर अलंकार:

पहले कोई विशेष बात कही जाय । पुन: उसके समर्थन में साधारण बात कही जाय पर इससे भी संतुष्ट न होकर विशेष उदाहरण से उसकी पुष्टि की जाय वहां विकस्वर अलंकार होता है -

अगम विपुन प्रभु जन के रखवारे, दासन केवे हे रखवारे ।
अदना देव तो काह सके रे, समरथ साहब राम हमारे ।।
सेनि स्वरुप तुरत माया के हरि अज्ञा ले नृप के द्वारे ।
मरदन करत राजा सुख पाये, धन दीन्हा ले सेनि बिचारे ।।
निरपति राना ले कालिका, मीरा के गर माहि डारे ।
सो पाहन के हारा, कब साहब धरिया अवतारे ।।

विषादन अलंकार:

जब इच्छित वस्तु के विरुद्ध फल प्राप्त हो वहां विषादन अलंकार होता है -

मुक्ता तेही कहावई, जियत मुक्ति जे होते ।
मुये मुक्ति की आशा राखे, ते नर नरके पाते ।।

अवज्ञालंकार:

जहां पर दूसरों के गुण-दोष से दूसरों में गुण-दोष का बोध नहीं हो पाता वहां अवज्ञालंकार होता है -

खर का इनवावई, श्वान चंदन अंग ।
साकट का उपदेशिये, जाकी गति है भंग ।।

सद्गुण अलंकार:

जहां पर कोई अपने गुण को छोड़कर दूसरे के गुण को ग्रहण कर लेता है । वहां सद्गुण अलंकार होता है -

लिली फूल एकई भई, जो बस संगी होय ।
मोहि रही जब बास में, ताते पदवी होय ।।

गुढ़ोत्तर अलंकार:

जहां पर कोई प्रश्न किया जाय एवं उसका तुरन्त गूढ़ उत्तर दिया जाय वहां गुढ़ोत्तर अलंकार होता है -

कस सखि अनुमन धनमानि सबै सुख तु भारि ।
कौन सूल तोहि एवै दुवारि तु बरी ।
संपति साल मोहिं व्यापे, ननद बहुत दारुनि हो ।
कलहू करे दिन राति, महे दुख भारी हो ।
जिन सकु जाइ सेंजरिये, तो सास बोलावे हो ।
दाद न जाने मोह विरह तन जारे हो ।

काव्य के गुण

रस के धर्म एवं उत्कर्ष को काव्य का गुण कहा जाता है । गुण का शाब्दिक अर्थ है उन्नतम आकर्षण एवं अशोभनीय दोषों का अभाव । साहित्य

दर्पण में काव्य के प्रधानभूत रस-धर्मों को ही गुण के रूप में स्वीकार किया गया है[1]। जिस प्रकार वीरता, शूरत्व, चेतन आत्मा के धर्म हैं उसी प्रकार रस का धर्म गुण है। गुण रस के उत्कर्ष के कारण होते हैं और इनकी स्थिति अचल होती है[2]।

गुण और अलंकार:

अलंकार और गुण में बहुत अन्तर है। अलंकार काव्य के वाह्य रूप में स्थित होता है जबकि गुण की अभिव्यक्ति आन्तरिक है। अलंकारों के द्वारा गुण को प्रदर्शित किया जा सकता है लेकिन अलंकार गुण की आत्मा नहीं कही जा सकती है। बिना किसी अलंकार के काव्य में रस की अभिव्यक्ति संभव है लेकिन बिना गुण के रस की कल्पना निरर्थक है। गुणों की संख्या के विषय में विद्वानों में सदा मतभेद रहा है। आचार्य भरत मुनि ने गुणों के दस भेद बताए हैं - श्लेष, समाधि, औदार्य, अर्थ-व्यक्ति, कांति, सुकुमारता, समता, प्रसाद, माधुर्य और तेज[3]।

महाकवि दण्डी ने यद्यपि गुणों की संख्या और नाम तो भरत मुनि के अनुसार ही लिया लेकिन उनका दिया हुआ गुणों का लक्षण भरत मुनि के लक्षण से भिन्न था। गुणों का लक्षण बताते हुए दण्डी कवि कहते

---

[1] 'रसस्याङ्गित्वमाप्तस्य धर्माः शौर्यादयो यथा' - साहित्य दर्पण

[2] ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः:
उत्कर्ष हेतवस्ते स्युर चलस्थितयो गुणाः।
रसस्य विपर्मग गुणाः काव्येषु कीर्तिताः

[3] नाट्यशास्त्र, अध्याय-१५(९२-१०३)।

है कि -

> काव्ये दोषा, गुणाश्चैव, विज्ञातव्या, विचक्षणैः
> दोषा विपत्ते तत्र गुणाः सम्पत्ये यथा ।।[1]

आचार्य वामन ने गुणों को अपनी स्वतंत्र सत्ता के रूप में स्वीकार किया है । उन्होंने गुण को काव्य की शोभा के कारण मूल तत्व के रूप में स्वीकार किया है । उन्होंने काव्यालंकार रूप में काव्य की शोभा को गुण के धर्म के रूप में माना है । 'काव्य शोभायः कर्तारो धर्मागुणाः' उन्होंने शब्द के दस और अर्थ के दस गुण स्वीकार किये हैं[2] । आचार्य मम्मत ने केवल तीन गुणों को ही स्वीकार किया है[3] । उन्होंने शेष सात गुणों के इन्हीं तीन के अन्तर्गत माना है । उनकी अलग स्थिति को दोष के रूप में उन्होंने स्वीकार किया है[4] ।

पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भी केवल गुण के तीन रूपों को स्वीकार किया है[5] । डा० विजयपाल सिंह ने भी माधुर्य, ओज एवं प्रसाद गुण के अन्दर ही सारे गुणों का समावेश स्वीकार किया है[6] । यही मत डा० राजेश्वर प्रसाद

---

[1] काव्यादर्श परिच्छेद (१।४१-६३) ।

[2] काव्यालंकार सूत्र अधिकरण (३), अध्याय प्रथम और द्वितीय ।

[3] सरस्वती कंठाभरण, प्रथम परिच्छेद ।

[4] काव्य प्रकाश, अष्टम उल्लास ।

[5] पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, काव्यांग कौमुदी (तृतीय कला) ।

[6]- डा० विजयपाल सिंह, काव्यांग प्रकाश ।

चतुर्वेदी एवं डा० मनहर गोपाल भार्गव का भी है।[1] मीता साहब के काव्य में माधुर्य, ओज तथा प्रसाद इन तीन गुणों का समावेश है। उचित उदाहरणों के माध्यम से इसे सिद्ध किया जा सकता है।

(१) माधुर्य गुण:-

कोमल एवं सानुनासिक वर्णों से युक्त रचना सरसता एवं माधुर्य होता है। इसमें लम्बे समासों का प्रयोग वर्जित है। ट वर्ग को छोड़कर और सभी आनुनासिक वर्ण इसके माधुर्य में निरन्तर वृद्धि करते रहते हैं। कविता का यह गुण माधुर्य गुण कहा जाता है। प्राय: यह गुण संयोग-शृंगार, विप्रलम्भ शृंगार करुण तथा शान्त रस में पाया जाता है -

मयका लगे सुहावन हो जो लग ससुरेन जाय
ससुरे के हो आयन हो, मन औरन हो जाय ।।

+ + +

कस सखि अनमन, धनमानि सबै सुख तु अरि

+ + +

रे भाई हरि बिसराये बूड़ा का माये में भूला ।

(२) ओज गुण:

जिस काव्य रचना के श्रवण से मन में तेज (उत्साह) उत्पन्न होता है उस रचना में ओज गुण होता है। इसमें वीर, रौद्र, भयानक और विभत्स रस की अधिक उदीप्ति होती है। ओज गुण में द्वित्व, संयुक्त, अर्द्ध "र" कार वर्णों के साथ ट वर्ग के कठोर वर्णों का प्रयोग होता है। इसमें लम्बे लम्बे समासों और कठोर वर्णों की अधिकता होती है।

ज्ञाति का भेद ले, मूल मां माहि रहे, मूल का मरम गुरु
सेई पावे ।
काम दल जीति के, क्रोध को मारि के मदन को जारि
सारि गगन छावे ।।

+ + + +

मुर्दा जुरै रसोई भीतर या देखो उजराई ।
या विधि चले ते अमन कहावे केहि कारन करई ।।

(३) <u>प्रसाद गुण:</u>

सरल, सरस तथा सामान्य शब्दों द्वारा व्यक्त की गयी रचना में प्रसाद गुण पाया जाता है

राम की सरण मिलि सुखदाई, छाड़ो लोक बड़ाई ।

<u>काव्य के दोष:</u>

`काव्य प्रकाश` में मुख्यार्थ हीन को दोष बताया गया है । कवि जो कुछ लिखना चाहता है उसे उसका मुख्यार्थ कहते हैं । मुख्यार्थ की प्रतीत में जो अवरोध होता है उसे हीनता कहते हैं । यह हीनता विभिन्न प्रकार की होती है - जैसे (१) वास्तविक अर्थ स्पष्ट न होना (२) विलम्ब से अर्थ का स्पष्ट होना (३) जिस रस के निमित्त रचना का सृजन हो उस रस की अभिव्यक्ति न होना आदि ।

दोषों को हम तीन भागों में बांट सकते हैं -

(१) शब्द दोष (२) अर्थ दोष (३) रस दोष

शब्द दोष:

शब्द दोष मुख्यत: निम्नलिखित प्रकार के होते हैं -

श्रुति कटु:- कानों को अप्रिय लगने वाले कठोर वर्णों का रचना में प्रयोग श्रुति दोष कहलाता है । मीता जी ने अपने पदों व दोहों में इस दोष को स्थान न देने का प्रयास किया है जिसके कारण संस्कृत के क्लिष्ट शब्द तो उनकी रचना में स्थान न पा सके लेकिन अरबी, फारसी के शब्दों के प्रयोग से अनेक स्थानों पर यह श्रुति कटु दोष स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है -

> मियाजी तब किताब को बाचे जब साहब सो राचे ।
> बिसरे देह जपे को तसबी, प्रेम पियाले दारे ।।

उपर्युक्त पद में कोतसबी, गाजे, स्वाब्दि आदि अरबी के शब्द हैं जो प्रवाह में कटु लगते हैं ।

च्युत संस्कृति:- व्याकरण के लक्षण के विरुद्ध रचना में च्युत संस्कृति दोष होता है । मीता साहब की रचना में कहीं-कहीं यह दोष आ गया है -

> रे भाई हरि बिसराये बूड़ा का माये में भूला

उपर्युक्त पद में `माया में` के स्थान पर `माये में` का प्रयोग च्युत संस्कृति दोष का उदाहरण है ।

अप्रयुक्त दोष:- काव्य में ऐसे शब्दों का प्रयोग जो कोश व्याकरणादि से सिद्ध होने पर भी काव्य में प्रयुक्त न होते हों वहां अप्रयुक्त दोष होता है । मीता साहब ने फारसी के `तफाउत`, `दावेश`, `हक्क, `तेहरीक` जैसे शब्दों का प्रयोग किया है जो `व्याकरणो से सही है लेकिन अवधी और ब्रज में उनका प्रयोग नहीं होता ।

जोजख में ते उपरे, जे काहु दुख देई ।
कह मीता दरगाह में, भला तफाउस होई ।।
बकरी मारत दरद ना लागा, नाउ धरा दरवेश ।
कह मीता साह ब है हक्क तहां न जररपेश ।
नेकी भीश्त वही है तेहकीक करो रे भाई ।
मुल्ला पाण्डे दोउ भुलाने, जीव पर छुरी चलाई ।।

निहितार्थ:- जब किसी शब्द के दो अर्थ हो तो जो अप्रसिद्ध अर्थ में प्रयोग करने से निहितार्थ दोषहोता है -

भली गरीबी दीनता जो रहे दिलो बीच छाई हो ।
हरि का तुरत मिलावई तब काल न आवे
पूरब के रे पुरबियारों, और कुदीन भागि

उपर्युक्त पद में पूरब का रहने वाला निवासी अत्यधिक ध्वनि होता है उसके निहित गुढ़ अर्थ की अपेक्षा जिसके लिए यह प्रयुक्त होता है । इस पद का अर्थ वे शरीर के पूर्व भाग में उनका स्थान है मुश्किल से ही ध्वनित होता है । अत: यहां निहितार्थ का दोष कहना गलत नहोगा ।

निरर्थक:- जहां छन्द पूर्ति के लिए अनावश्यक शब्द रख दिया जाय वहां निरर्थक दोष होता है -

बड़ा अभागी मरम न जाने, शम्भु विशनु गोहरावे ।
सखिया भये पुकार करत है, लोक करत है हांसी रे ।।

अश्लील:- जहां पर लज्जासूचक, घृणा प्रदर्शक, अथवा अमंगलवाची शब्द का प्रयोग हो वहां अश्लील दोष होता है । मीता साहब ने झूठे गुरू के लिए भी बहुतही अश्लील शब्द का प्रयोग किया है जो बहुत ही असंसदीय है ।

ग्राम्य दोष:- जहाँ केवल लोक व्यवहार (ग्रामों) ही चलने वाले शब्दों का प्रयोग हो वहाँ ग्राम्य दोष होता है । मीता साहब के रचनाओं में यह दोष सर्वाधिक है ।

एक नउवा, दुई बनिया, जुआ आप फसे जग फांसा रे ।
जग की जाल परे सब बंधुवा, बाचे सन्त सुजाना रे ।।

+ + +

रे सधुवा कहु कैसे घर जरिया,
जिन्ह घर जो कुसल है नाही का माला ले करिया
वे तरिया ते जियते तरिया मुअते कोउ न तरिया

+ + +

टाड़ा वादा अगम नगर का, जहाँ न सुर मुनि जायी ।
चौखा माल बिकाना तरिया, मैं बनिजा मय भायी ।
सब कोई हसे देवा ला निकला, हम तो साही पायी ।
हरि दरवाजे कोठा कीन्हा, हुण्डी अदल चलायी ।
जगत साहु जम लूटत देखे, मोहि डर लागा भाई ।
या की सौदा मीता छाड़ी, कोई दूर कहाई ।

+ + +

देह दगाई दागिका गोहन पड़ गये फलुका ।
मुड़ मुड़ाये भाड़ हो आये, मन तैसे का तैसा ।।

उपर्युक्त पदों में 'नउवा', 'बनिया', 'सधुवा', 'जरिया', 'करिया', 'तरिया', 'टाड़ा', 'चोखा माला', 'तलवा', 'देवाला', 'कोठा', 'हुण्डी', 'सौदा', 'दगाई', 'गोहन', 'फलुका', 'मुड़', 'भाड़' आदि ग्रामीण शब्द हैं जिनके कारण मीता साहब की रचनाओं को ग्राम्य दोष से मुक्त नहीं किया जा सकता ।

अर्थ दोष:

जब कविता में ऐसे अर्थों का प्रयोग हो जो अभिष्ट अर्थ की पुष्टि न कर सके वहाँ अर्थ दोष होता है । इसके भी कई भेद हैं -

कष्ट दोष:- जहां अर्थ का ज्ञान सरलता से न हो सके वहां कष्ट दोष होता है ।

साधि एक देखा, अजब तमाशा, अगम पंथ जवराका ।

क्रिया विरुद्ध दोष:- जहां शास्त्र के विरुद्ध बात कही जाय वहां क्रिया विरुद्ध दोष होता है ।

कांहा गुंडा नन्द ग्वाल का ब्रज में कीन्हि चोवारी
कामी कुटल रता मन मैला वेकाया संसारि
नन्द कन्हैया मरम न जाने गीता केरि बानी
तिनुका ओट पहार देखा, संतन कीन्ह बखानी
अर्जुन फासे क्रोध मा, कान्हा फासे काम
तहां ज्ञान कैसे रहा, गीता है निष्काम ।

सहचार भिन्न दोष:- जहां सजातीय वस्तुओं के बीच विजातीय वस्तु का भी उल्लेख हो अर्थात् उत्कृष्ट के साथ अपकृष्ट का भी वर्णन हो वहां सहचर भिन्न दोष होता है -

खरका काहन वावई, स्वान चंदन अंग ।
साकत का उपदेशिये, जाकी गती है भंग ।।

रस दोष:

रसों के आस्वादन में अपकर्ष, विरोध, विलाप और व्याघात उत्पन्न करने वाले तत्व रस दोष कहलाते हैं । इसके कई भेद होते हैं

स्वशब्द वाच्यता:- जहां पर स्थायी भाव, संचारी भावों को उन्हीं के वाचक शब्दों में प्रकट किया जाय वहां स्वशब्द वाच्यता दोष होता है -

नदिया बीच भयानकि, डोंगवा ना जाये ।
उई तो पहले पार है कैसे मिलिहो जाय ।।

उपर्युक्त पद में भयानक रस की अभिव्यक्ति के वाचक धर्म आदि का प्रयोग न करके सीधे उस रस-शब्द का प्रयोग कर दिया गया है अत: यहां स्वशब्द दोष है ।

विभावानुभावों की कष्टसाध्य कल्पना दोष:- जहां पर विभाव, अनुभावों की क्लिष्ट कल्पना में रस की प्रतीत होने लगे वहां क्लिष्ट कल्पना दोष होता है -

मोहि पिया पिया धुनि लागी
मुझे महुवा छावा हो लाधे पाच पचीस

उपर्युक्त पद में शान्त रस की अभिव्यक्ति के साथ किसी प्रियतमा के विप्रलंभ श्रृंगार रस की भी काल्पनिक अनुभूति होती है अत: यहां कष्टसाध्य कल्पना दोष है ।

प्रकृति-रस-विरोधी विभावानुभावों की वर्णना दोष:- जहां पर प्रकृति या मुख्य रस के प्रतिकूल या विरोधी रस के विभावानुभावों का वर्णन होने पर प्रकृत रस विरोधी विभावानुभावों की वर्णना दोष होता है -

उध मुख करे पवन अहारा, ते होइहे विषधर अवतारा
मुसुक संग देहँ तजु जारी, तेऊ चकोरी होइहे नारी ।

उपर्युक्त पद में ऊर्ध्व मुख करके पवन का आहार करने वाला से शान्त रस की अभिव्यक्ति होती है जबकि उसका विषधर की योनि में जन्म लेने से भयानक रस की अनुभूति होती है । इसी प्रकार जहां अपने मृत पति के साथ सती हो जाना, करुण रस की व्यंजना प्रस्तुत करता है वहीं उस दुखित नारी का चकोरी बनना करुण रस के विपरीत अन्य रस की व्यंजना है, यहां पर प्रकृत रस विरोधी विभावानुभावों की वर्णना दोष है ।

अंगभूत रस का पुन: पुन: दीप्ति दोष:- जहां किसी रस की अभिव्यक्ति हो जाने पर पुन: उसी रस का वर्णन किया जाय वहां अंगभूत रस का पुन: पुन: दीप्ति होता है ।

लगा राम सो नेहा रे बाबा, किसरा तन धन गेहा

उपर्युक्त पद में शान्त रस का परिपाक हो जाने पर भी मीता साहब उसको आगे बढ़ाते ही जाते हैं अत: यहां अंगभूत रस का पुन:पुन: दीप्ति दोष होगा ।

शब्द शक्ति

किसी व्यक्ति अथवा पदार्थ को व्यक्त करने के लिए शब्दों की आवश्यकता अपरिहार्य है । शब्दों में इतनी सामर्थ्य होनी चाहिए कि वे किसी भी वस्तु का चित्र प्रस्तुत कर सके । शब्दों की इस सामर्थ्य को शब्द शक्ति कहते है । शब्द शक्ति के तीन प्रकार विद्वानों ने स्वीकार किये हैं -

(१) वाचक
(२) लक्षक
(३) व्यंजक

साहित्य दर्पण में शब्द शक्ति के उपर्युक्त तीन अर्थ बताये गये हैं[१] । डा० विजयपाल सिंह ने भी इस मत को स्वीकार किया है एवं उनके अनुसार

---

[१] लक्ष्यश्च व्यंग्यश्चेति त्रिधामता: , साहित्य दर्पण ।

(१) अभिधा (२) लक्षणा एवं (३) व्यंजना के रूप में विस्तृत विवेचन किया गया है।[१]

(१) वाचक का वाच्यार्थ:

पूर्व संचित ज्ञान अथवा व्याकरण शब्दकोश आदि के आधार पर कहे हुए शब्द के सुनते ही जिस अर्थ का सबसे पहले बोध होता है उसे वाच्यार्थ कहते हैं। इस अर्थ को बताने वाला शब्द वाचक कहलाता है और जिस शक्ति के द्वारा यह अर्थ ज्ञात होता है उसे अभिधा कहते हैं।[२] वास्तव में अभिधा शक्ति वह शब्द शक्ति है जिसके द्वारा अनेकार्थी शब्दों का एक उपयुक्त अर्थ प्रतिपादित किया जाय यह प्रतिपादित अर्थ ही शब्द का मुख्य सांकेतिक अर्थ प्रकट करता है। इस प्रकार के सांकेतिक अर्थ संयोग, वियोग, साहचर्य, विरोध, अर्थबल, प्रकरण, सामर्थ्य, औचित्य, देशबल, कालबल अन्य संनिधि और लिंग के निर्णय से लिये जाते हैं।

मीरा साहब ने भी अपनी रचना में इन शब्द शक्तियों को स्थान दिया है। लेकिन उनकी रचना में यह प्रयोग बलात नहीं है अपितु भाव प्रसंगानुकूल बन पड़ा है। अभिधा शक्ति के अर्थ का उन्होंने भी सभी निर्णयों से किया है।

(क) संयोग: - जहां अनेकार्थी शब्दो से केवल एक अर्थ का निर्णय किसी अभिन्न वस्तु के कारण किया जाय वहां संयोग होता है -

---

[१] डा० विजयपाल सिंह, काव्यांक प्रकाश।

[२] पं० विश्वनाथ मिश्र, काव्यांक प्रकाश।

हरिजन सबही ते बड़े इनते बड़ा न कोय ।
जहाँ तीनों के गम नहीं, संत मिलावै सोय ।।

उपर्युक्त दोहे में हरि शब्द के ईश्वर, इंद्र, सर्प, सिंह आदि अनेक अर्थ है लेकिन `जन` के संयोग के कारण इसका केवल एक अर्थ `ईश्वर` लिया जा सकता है क्योंकि इन्द्र, सूर्य, सिंह आदि के सेवक सबसे श्रेष्ट नहीं होते ।

(ख) वियोग:- जहाँ अनेकार्थक शब्द के एक अर्थ का निश्चय किसी अभिन्न वस्तु के वियोग से लिया जाय वहाँ वियोग होता है । जैसे-

जो तुम चाहो राम का, सुमिता धरो संभारि ।
बिनु सुमिता हरि ना मिलै, मीता कही बिचारि ।।

`हरि` शब्द के अनेक अर्थ है लेकिन सुमिता के वियोग के कारण इसका केवल एक अर्थ `ईश्वर` हो जाता है । बिना सुमिता के `हरि` के अनेकार्थक इन्द्र, सर्प, सिंह आदि से साक्षात्कार हो सकता है लेकिन ईश्वर से नहीं । अत: यहाँ हरि का अर्थ ईश्वर हुआ ।

(ग) साहचर्य:- जहाँ किसी के साथ रहने से किसी शब्द के अनेक अर्थों में से एक अर्थ नियत किया जाय वहाँ साहचर्य से अर्थ का निर्णय होता है । साहचर्य और संयोग के निर्णय में लगभग समानता होती है -

यों सुज्जन माया बिना गुरु सुभाव न जाय ।
कुज्जन घर मौती भरै, सुज्जन ना हो जाय ।।

इसमें गुरु का अर्थ शिक्षक, धर्मगुरु, तथा भारी, बुरा, गरुआ आदि होता है लेकिन सुभाव के साहचर्य के कारण इसका अर्थ `बुरा` हो जाता है ।

(घ) विरोध:- जहां किसी प्रसिद्ध विरोध के कारण एक अर्थ का निर्णय हो जैसे-

हिरनाकुश का पेट फराये, कहते राम बरग हे धाए ।

यहां `राम` का अर्थ दशरथ का बेटा राम नहीं वरन् विष्णु हैं क्योंकि हिरनाकश्यप से विरोध विष्णु का था ।

(ङ.) अर्थबल:- जहां पर क्रिया के अर्थबल से एक अर्थ का निश्चय हो यथा-

मनका धोऊ धोय का काया ।
मन धोये हरिदर्शन पाये, कहु सधुवा तोहि कै भरमाये ।।

इस पद में `मनका` अर्थ माला और मन का है । `धोऊ` क्रिया से अर्थ स्पष्ट होता है कि मन को धोने के लिए कहा गया है । अत: यहां अर्थबल से निर्णय का होना प्रमाणित होता है ।

(च) प्रकरण:- जहां किसी प्रसंग के कारण अनेक अर्थों मेंसे एक अर्थ का बोध हो वहां प्रकरण से वास्तविक अर्थ का निर्णय किया जाता है जैसे -

सूर हरै मैदान मां, कोई जूझन हारा ।
कूरा तहां ठहरै नहीं का करै लबारा ।।

उपर्युक्त पद में सूर का अर्थ वीर और अंधा है । लेकिन युद्ध के मैदान में जूझने के प्रकरण के कारण इसका अर्थ `वीर` लगाया गया है । इसी प्रकार `लबारा` का अर्थ बकवासी और बड़ा-कावट है लेकिन `करै` के प्रसंग के अनुसार इसका अर्थ बकवासी लगाया गया है । अत: यहां `सूर` से अर्थ वीर और लबारा का अर्थ `बकवासी` प्रकरण से लिया गया है ।

(छ) सामर्थ्य:- जहां किसी पदार्थ के सामर्थ्य से एक अर्थ का निर्णय कर लिया जाय जैसे -

उदद मुख करे पवन अहारा, ते होइहे विषहर अवतार ।

उपर्युक्त पद में विषहर का शाब्दिक अर्थ विष + हर अर्थात् विष दूर करनेवाला है लेकिन वाराणसी भोजपुरी में विषहर (विषधर) बहुत ही विषैले सर्प को कहते हैं जो केवल वायु-आहार पर निर्भर रहता है । विषधर के (सांप) अर्थ का पता हमें पवन आहार से निर्णीत होता है ।

(ज) औचित्य:- जहां किसी योग्यता के कारण समुचित अर्थ का निराकरण किया जाय जैसे -

जिनका साँची लव परे, जग लागे तेही फीक ।
मीता मीठी भक्ति है, और नहीं अस मीठ । ।

यहां`फीक` का अर्थ फीका है लेकिन जग के फीका लगने का अर्थ संसार से उदासीन होना या सांसारिकता से विरक्ति की ओर अग्रसर होना है । `मीठा` का अर्थ `मधुर` या सरस अथवा `प्रेम` करना है । मीठी भक्ति का अर्थ भक्ति से प्रेम बढ़ाना है । यहां फीका का अर्थ उदासीनता एवं मीठा का अर्थ मधुर प्रेम औचित्य निर्णय से किया गया है ।

(झ) देश-बल:- जहां किसी विशेष स्थान के कारण अनेकार्थी शब्दों के एक अर्थ का निश्चय किया जाय वहां देश-बल से निर्णय लिया जाता है यथा-

कुंभ का जल नाप सागर, सुमति है बाढ़ी भई ।
मैटि आवन जान सखियो, काल फांसी कट गई ।।

उपर्युक्त पद में जल का अर्थ पानी, जीवन, प्राण आदि है और सागर का अर्थ समुद्र या ईश्वर का निवास आदि है । लेकिन यहां `कुंभ` जल का अर्थ ईश्वर के निवास स्थान के कारण प्राणवायु है । यहां देश बल से निर्णय

(२) लक्षणा:

तीव्र भावों और विचारों में कथन की रमणियकता में अभिधा शक्ति निष्फल सिद्ध होती है । ऐसी अवस्था में प्रयोग के सामर्थ्य लक्षणा शक्ति ही रमणीयकता लाने में सक्षम होती है अत: शब्द के मुख्यार्थ अर्थात् अभिधा द्वारा अर्थ ग्रहण किया जाता है और उसी से सम्बद्ध अर्थ ग्रहण किया जाता है । जिस शब्द से इस अर्थ का बोध होता है उसे `लक्षक` कहते हैं और इस अर्थ को बतलाने वाली शब्द शक्ति का नाम लक्षणा है । लक्षणा के दो भेद होते हैं :-

(अ) रूढ़ि लक्षणा:- जहां प्रचलित परम्परा के कारण शब्द के मुख्य अर्थ से भिन्न लक्षार्थ का बोध हो वहां रूढ़ि लक्षणा होती है । मन हस्ती मा

मन हस्ती मां चढ़त है, क्रम न टट्टू होय ।
नाक पड़े की विधि करे, मुक्ति कहां ते होय ।।

उपर्युक्त पद में मन कोई जीव नहीं है जो हाथी पर चढ़ सकता है और कोई जन्तु नहीं है जो घोड़े का रूप ले सके । ये सब बाते परम्परा के अनुसार कही गयी है । अत: यहां रूढ़ि लक्षणा से अर्थ का निर्णय किया जायेगा ।

(ब) प्रयोजनवती लक्षणा:- जहां किसी प्रयोजन के कारण शब्दों के मुख्यार्थ से भिन्न लक्ष्यार्थ का बोध हो वहां प्रयोजनवती लक्षणा होती है जैसे -

पूंजी राखे सब चले, इवे जगत की रीति ।
राम नाम पूंजी करे ते जग्यै जग जीति ।।

यहां राम नाम की पूंजी कहा गया है । पूंजी का अर्थ धन-दौलत है । यहां पूंजी का अर्थ रामनाथ की भक्ति है । यह लक्ष्यार्थ कवि की भक्ति

सूचित करने से प्रयोजन है ।

मीता तत्व विचारिया, भूंसी दिहीं डारि ।
भूंसी गुर जीव नारक के, लेते गोद पसारि ।।

उपर्युक्त पद में भूंसी का अर्थ भूंसी भी है तथा नारक के लिये बुराइयों का अंबार भी है । अतः यहां पर मीता साहब ने भूंसी का अर्थ प्रयोजनवती लक्षणा से किया है ।

प्रयोजनवती लक्षणा के दो भेद होते हैं - (१) गौणी
(२) शुद्धा ।

(क) गौणी :- जहां सादृश्य अर्थात् समान गुण या धर्म के कारण लक्ष्यार्थ का बोध हो वहां गौणी लक्षणा होती है । यथा-

चौदहपुर भव-सागर, बसै ते दुखिया लोग ।
मीता पहुंचा अगमपुर, सतगुरु दीन्हा जोग ।।

यहां पर भव-सागर में गौणी लक्षण है । भव (संसार) सागर (समुद्र) कैसे हो सकता है । भव को सागर कहने में मुख्यार्थ के भाव में बाधा जान पड़ती है । सागर की दुरुहता, उसके पार करने में अगणित कठिनाइयां आदि गुणों से लक्ष्यार्थ बोध होता है । यहां भव को सागर कहने का तात्पर्य यह है कि भव सागर के सदृश दुरुह एवं दुष्कर कष्टप्रद है ।

(ख) शुद्धा :- जहां सादृश्य-सम्बन्ध के अतिरिक्त किसी अन्य सम्बन्ध से लक्ष्यार्थ का बोध हो वहां शुद्धा लक्षणा होती है जैसे -

पांच पचीसो की लहर, जो बाधे सो ज्ञानी ।
मन दरिया तब हाथें आवै, मेटै अन्तरजानी ।।
मन दरपन को मांजै, धानि तब छब परै ।
बहुरि न आवै हाट, काल मुख ना परै ।।

उपर्युक्त दोहे में मन दरिया में शुद्ध लक्षणा है मन और दरिया सादृश्य सम्बन्ध नहीं है ।

> मीता के मारग चले कबीर सरीखा होय ।
> मीत कबीरा एक है, कहवे के हैं दोय ।।

मीता का मार्ग रास्ते में कंकड़-पत्थर से बना कोई सड़क नहीं है बल्कि इसका अर्थ है मीता साहब की ईश्वरोपासना का ढंग । इस प्रकार यहां 'पथ' शब्द ने अपना एकदम अर्थ छोड़कर दूसरा अर्थ ग्रहण किया है । बल्कि दोनों के कार्य में समान तारतम्य है । यहां भी मुख्यार्थ की रुकावट है क्योंकि मन वास्तव में दरिया नहीं है मन के सभी कार्य जैसे स्वछन्द रूप से बहना चंचलता, चपलता दरिया (नदी) की भांति ही है । इसी प्रकार दूसरे दोहें में मन और दर्पण में किसी प्रकार से समानता नहीं है लेकिन दोनों द्वारा संपादित कार्यों में समानता है । ईश्वर प्रदत्त मन स्वच्छ रहता है लेकिन संसार की बुराइयां उसे उसी प्रकार काला कर देती है जैसे धूल मिट्टी दर्पण को । अत: मन को दर्पण की तरह मांजकर साफ करने में दोनों के समान कार्य का तारतम्य है । दोनों के मुख्य धर्म में रुकावट है । अत: यहां पर शुद्धा के द्वारा लक्ष्यार्थ तक पहुंचा जा सकता है । शुद्धा के भी दो भेद होते हैं - (१) लक्षण लक्षणा और (२) उपादान लक्षणा ।

<u>(१) लक्षण लक्षणा</u>:- जहां प्रयोजन प्राप्त कार्य की सिद्धि के लिये मुख्य अर्थ को एकदम छोड़कर अन्य अर्थ को ग्रहण किया जाय वहां लक्षण-लक्षणा होती है ।

> माया मोह की फांसी काटी, तोरी लाज जंजीर ।
> धनी मिला पारिख भई, मीता भये फकीर ।।

मोह की फांसी वास्तव में रस्सी का बंधा कोई बंधन (डोरी) नहीं है जिसको किसी छुरी, चाकू रूपी माया से काटा जाय । यह एक प्रकार से भावों का व्यापार है जिसको छोड़ना बहुत कठिन है । इसी प्रकार लाज की जंजीर कोई लोहे जैसे लाज के पदार्थों से बनी जंजीर नहीं है जिसको बल लगाकर तोड़ने की आवश्यकता

है । यह भावमय स्नेह का एक व्यापार है अत: यहां फांसी और जंजीर अपने अर्थ बदलकर दूसरा अर्थ ग्रहण कर लिये हैं ।

(२) उपादान लक्षणा:- जहां प्रयोजन अर्थ की सिद्धि के लिये मुख्यार्थ को न छोड़ते हुए अन्यार्थ अर्थ ग्रहण कर लिया जाय वहां उपादान लक्षणा होती है ।

राम की भक्ति दुहेली भाई, कोटिन में कोई पाई ।
पाषाण के ये हाथ न आवे, का भये पद दस गाई ।।

यहां पर भक्ति कोई गाय, बकरी नहीं है जो वह दुहेली (दुधारी) खूब दूध देने वाली हो । अत: दुहेली का अर्थ सब प्रकार कल्याणकारी है जैसे दूध दुहेली गाय का दूध होता है अत: यहां दुहेली में उपादान है ।

(३) व्यंजना:

वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ दोनों के अतिरिक्त जिस किसी प्रयोजनीय अन्य अर्थ का बोध होता है इसे व्यंग्यार्थ कहते हैं जिस शब्द से ऐसे अर्थ का बोध होता है उसे व्यंजक कहते हैं । जिस शब्द शक्ति से उस अर्थ का बोध होता है उसे व्यंजना कहते हैं । व्यंजना के दो भेद होते हैं - (१) शाब्दी व्यंजना (२) आर्थी व्यंजना ।

१- शाब्दी व्यंजना:- इसमें व्यंगार्थ शब्द पर आधारित रहता है ।

गीता वेदो ना लिखी, जो कह गया जुलाहा ।
तिनु देव जहां नहीं पहुंचे, तहां की थाही थाहा ।।

उपर्युक्त दोहों में जुलाहा के द्वारा व्यंगोक्ति है । जुलाहा का अर्थ कपड़ा बुनने वाला है तथा इड़ा पिंगला के ताने बाने से शरीर का ताना बाना समझने वाले योगी कबीर भी जुलाहे का अर्थ है । इस प्रकार यहां जुलाहा शब्द से

शाब्दिक व्यंजना हुई । शाब्दी व्यंजना के भी दो रूप होते हैं -

(क) अभिधामूलक शाब्दी व्यंजना:- अनेकार्थी शब्दों का संयोग, वियोग, आदि द्वारा एक अर्थ नियंत्रित हो जाने पर जिस शक्ति द्वारा व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है उसे अभिधामूलक व्यंजना कहते हैं यथा-

रूप अनूप महबूब का, काया धारी नाय ।
तन सोधे सो पाव्या, सतगुरु देवै बताय ।।

उपर्युक्त दोहा में महबूब का अर्थ पति है लेकिन `कायाधारी` नहीं होने से उसका अर्थ ईश्वर हो जाता है । अत: यहां पर अभिधामूलक शाब्दी व्यंजना है ।

(ख) लक्षणामूलक शाब्दी व्यंजना:- जिस प्रयोजन के लिए लाक्षणिक शब्द का प्रयोग किया जाता है उस प्रयोजन की प्रतीति कराने वाली शक्ति को लक्षणामूलक शाब्दी व्यंजना कहते हैं जैसे -

बोझ न पउवा ले चले, सीस मनन का देय ।
कह मीता गज भार का, गदहा कैसे लेय ।।

प्रस्तुत पद में पउवा का अर्थ पाव भर है । और मनन का अर्थ मनो है लेकिन लाक्षणिक रूप से पउवा अर्थात् बहुत थोड़ा और मनन अर्थात् अधिक व्यंजित होता है और यहां लाक्षणिक व्यंजना है ।

२- आर्थी व्यंजना:- अनजाने व्यंग्यार्थी की प्राप्ति अभिधा और लक्षणा से होने पर आर्थी व्यंजना होती है जैसे -

बिलारि ऊंटवा धरि ले जाय, ऊंटवा मच्छन नाचै आय ।
तब पानी मां आग लगाय, ससा भून सिंह का खाय ।।

उपर्युक्त पद में बिलारी और ऊंटवा का अर्थ सामान्य रूप से बिल्ली या ऊंट नहीं है । इसी प्रकार पानी में आग लगाना एवं खरगोश को शेर को भूनकर खाना के अर्थ आर्थी व्यंजना के निर्णय की वस्तु है ।

ध्वनि:

वास्तव में ध्वनि की महत्ता का श्रेय उन तत्वों को नहीं प्राप्त हो सकता जिसको कवि ने लिपिबद्ध किया है । यद्यपि कवि के शब्द से लोक व्यवहार और शास्त्र का व्यापार संपादित तो हो जाता है लेकिन शब्दों की रमणीयता ध्वनि के शब्दों का प्रधान विषय नहीं बन सकती । अत: कवि के शब्दों में एक रमणीयता होती है जो उसके शब्दों के अर्थ की व्यंजना में निहित होती है । जहां पर शब्द और अर्थ अपने को गौण बनाकर एक नवीन अर्थ की व्यंजना करते हैं उसे ध्वनि कहते हैं । जिस प्रकार किसी रमणी की रमणीयता उसके किसी विशेष अंगपर केन्द्रित न होकर उसके सभी अंगों से प्रस्फुटित होती है उसी प्रकार ध्वनि शब्दों और अर्थों के सीमित क्षेत्र में कैद न होकर काव्य के प्रत्येक क्षेत्र से प्रस्फुटित होती रहती है । डा० राम सागर त्रिपाठी ने ध्वनि शब्द के पांच अर्थों को स्वीकार किया है[1]। ध्वनतीति ध्वनि: । इस व्युत्पत्ति से ध्वनित करने वाले दो तत्व आ जाते हैं - शब्द और अर्थ । 'ध्वन्यते इति ध्वनि:' से रस आ जाता है और 'ध्वननम् ध्वनि:' अर्थात् ध्वननम् ध्वनि: अर्थात् ध्वनन की प्रक्रिया को ध्वनि कहते हैं । इसमें समस्त व्यंजक प्रक्रिया आ जाती है । पांचवा अर्थ है इन सबका समूह काव्य ।

जहां काव्य में व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ से अधिक चमत्कारक उत्पन्न करे वहां ध्वनि होती है । ध्वनि के दो भेद बताये गये हैं - (क) अविवक्षित वाच्य ध्वनि तथा (ख) विवक्षित वाच्य ध्वनि ।

(क) अविवक्षित वाच्य ध्वनि:- जहां वाच्यार्थ का उपयोग किये बिना ध्वनि निकले वहां अविवक्षित वाच्य ध्वनि होती है । जहां पर वाच्यार्थ की उपेक्षा

---

[1] डा० रामसागर त्रिपाठी (डा० शान्ति स्वरूप गुप्त द्वारा सम्पादित), वृहद् साहित्यिक निबन्ध ।

नहीं होती वरन् जहां उसका उपयोग नहीं किया जाता वहां यह ध्वनि होती है । जैसे-

तनु हारो दुख संग, रहोगी न्यारा हो ।
पिऊ राख्यो उर लाय, काह संसारा हो ।
करिहो बहुत उपाय पिया के काजे हो ।
जनम अकारथ जाये, जुवारि जाने हो ।

उपर्युक्त पद के चतुर्थ चरण में `जुवारी` का अर्थ जुआ खेलने वाले व्यक्ति से न होकर उस व्यक्ति से है जो अपने बहुमूल्य जन्म को व्यर्थ की सांसारिक लिप्सा में व्यतीत कर देता है ।

(ख) विवक्षित वाच्य ध्वनि:- जहां वाच्यार्थ का उपयोग करते हुए ध्वनि निकलती हो वहां विवक्षित वाच्य ध्वनि होती है यथा-

पांच सखिया संग लिन्ही, निरत के तहां मिल गई ।
कुंभ का जल नाय सागर, सुमति ले बाढ़ी भई ।।

यहां पर यौगिक पक्ष में इसका अर्थ है कि कुण्डलिनी शक्ति पांच तत्वों को साथ लेकर साधना को समाधि समाधिस्थ करके प्राणवायु को ब्रह्म में विलीन कर दिया सखियों, कुंभ, सागर आदि प्रचलित शब्दों के कारण इसका एक और अर्थ हुआ कि पांच सखियों को साथ लिया जो नृत्य करते हुए आपस में मिलाप करने लगी एवं घड़े में लाये जल को सागर में डालकर शिष्टता की पात्र बन गयी । अत: यहां गूढ़ शब्दों के वाच्यार्थ से दो अर्थ हुए ।

अविवक्षित वाच्य के भी दो भेद होते हैं -

(१) अर्थांतर संक्रमित:- जहां पर शब्द का अर्थ प्रसंगानुसार मुख्यार्थ को छोड़कर दूसरे अर्थ में चला जाता है वहां अर्थांतर संक्रमित वाच्य ध्वनि होती है । इस ध्वनि में वाच्यार्थ को छोड़कर शब्द किसी दूसरे अर्थ को ग्रहण कर लेता है जैसे -

बकरी भैंसा बड़े बटाकड़, कहे वेद फुरमावे रे ।
मास खाय ज्यों स्वान अघाना, देखो कुलीना आवे रे ।।

यहां पर 'कुलीना' शब्द में लोगों के कुल के विरुद्ध किये गये दुर्गुणों पर व्यंग है यहां पर कुलीना का अर्थ कुलीन न रहकर उसके विपरीत ध्वनित होता है ।

(२) <u>अत्यंत तिरस्कृत</u>:- जहां वाच्यार्थ की पूर्णतया उपेक्षा किया गया हो अर्थात् विधि वाक्य निषेध के लिए एवं निषेध वाक्य विधि के लिये प्रयुक्त हुये हों वहां अत्यंत तिरस्कृत ध्वनि होती है । जैसे-

सुकरि करै अतर की पारिख, मुर्गी मंडिले फांदै ।
बकुला बैठे पोथी बांचै, धुनै भइंसिया ज्ञानै ।।

उपर्युक्त पद में दुर्गन्ध से युक्त सुकर का अतर के गंध को पहचानना, मुर्गी का ऊंची मीनार को फांदने का स्वांग करना, बकुले का ध्यान लगाकर वेद पढ़ना और कुण्ठित बुद्धि की भैंसा का ज्ञान का उपदेश सुनना वास्तव में समाज के लोगों पर कठोर व्यंग्य है क्योंकि ठीक इसके विपरीत कार्य ही करते हैं अतः यहां अत्यंत तिरस्कृत से अर्थ किया गया है ।

विवक्षित वाच्य ध्वनि के भी दो भेद होते हैं -

(१) असंलक्ष्यक्रम और (२) संलक्ष्यक्रम

(१) <u>असंलक्ष्यक्रम</u>:- जहां वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ तक पहुंचने का क्रम लक्षित न हो वहां असंलक्ष्यक्रम वाच्य ध्वनि होती है । इस ध्वनि में यह लक्षित होता है कि वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ तक पहुंचने का क्या क्रम होता है । जैसे

दीनता भाग्य बड़े ते होई, धन्य धन्य घट सोई ।
काट भया सबका सिर नाये, भीतर भरी भंगोई ।।
सुनि सुनि नवै बहुत सठ लागे, सांचु बिना का होई ।
जैसे मोर पीउ रे बोले, बिषहर लीले लोई ।।

(२) संलक्ष्यक्रम:- जहां वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ तक पहुंचने का क्रम लक्षित हो वहां संलक्ष्यक्रम वाच्य ध्वनि होती है ।

औचित्य:

डा० रामसागर त्रिपाठी जी ने प्राक्तन काव्य शास्त्र में वर्णित औचित्य सिद्धान्त के बीजों के दो रूपों को स्वीकार किया है । उनका कहना है कि काव्य के विभिन्न तत्व लोक-वृत्त-व्यतिरिक्त नहीं होने चाहिए[१] । उसका अर्थ यही है कि काव्य-रचना का सृजनात्मक दृष्टिकोण ऐसा होना चाहिए कि पाठकों को पाठ्य से अनौचित्य की अभिव्यक्ति की व्यंजना न हो जाय । अत: दोषयुक्त तत्व में अनुचित होने पर अनौचित्य के अभाव में दोष नहीं रहता है । वास्तव में दोष केवल एक कल्पित वस्तु है अनौचित्य की उपस्थिति में सारे दोष लुप्त हो जाते हैं ।

औचित्य सम्प्रदाय पर सर्वप्रथम स्पष्टीकरण भरत मुनि ने प्रस्तुत किया है । उन्होंने देशकाल समय के अनुसार वर्णित नाट्यशास्त्र को ही तत्कालिन समय के निमित्त उचित माना है । भरत मुनि उस विषय में कहते हैं कि -

> लोकसिद्धं भवेत्सिद्धं नाट्यं लोकस्वभावजम् ।
> तस्मा न्नाट्यप्रयोगे तु प्रमाणं लोक इष्यते ।।[२]

जो बात लोक में सिद्ध है वही नाट्य में भी सिद्ध है । जिस नाटक में लोक की भावना स्वभाव के अनुसार वर्णित होती है वही नाट्य लोगों द्वारा प्रशंसित होता है क्योंकि उसमें समाज, देश-काल की भावना का औचित्य होता है ।

---

[१] डा० रामसागर त्रिपाठी, वृहत् साहित्यिक निबन्ध ।

[२] भरत मुनि, नाट्यशास्त्र ।

भरत मुनि पुन: औचित्य पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि -

> ना ना शीला: प्रकृतय: शीले नाट्यं प्रतिष्ठितम् ।
> तस्माल्लोक: प्रमाणं हि कर्तव्यं नाट्ययोक्तृभि: ।।

(लोगों का शील स्वभाव देशकाल के अनुसार विभिन्न प्रकार हुआ करता है । अत: उन्हीं के शील व्यवहार में वर्णित नाट्य की प्रतिष्ठा होती है । अत: नाटक के प्रत्येक पात्र एवं कथोपकथन तत्कालीन देश-काल, पात्र एवं वर्ग के अनुसार होनी चाहिए)[1] ।

भरत मुनि औचित्य के विभिन्न उपयोगों पर प्रकाश डालते हैं । वे कहते हैं कि -

> उदेशजो हि वेषस्तु न शोभां जनयिष्यति ।
> मेखलोरसिबन्धे तु हास्यायै दोष जायते ।।

(जो देश-काल के अनुरूप नहीं होता उसमें सुन्दरता को लेशमात्र भी नहीं कहा जा सकता । कमर में पहनने वाली मेखल (करधनी) कभी गले का हार बनकर शोभा नहीं पा सकती । वह केवल हंसी का पात्र बना सकती है ।)

महान विद्वान क्षेमेन्द्र ने भी भरत मुनि की उक्ति को ही अपनी वाणी का विषय बनाया एवं औचित्य पर अपना प्रकाश डालते हुए कहा है कि -

> कण्ठे मेखलया: नितम्बफलके तारेण हारेण वा ।
> पाणौ नुपूर बन्धेन चरणे केयूरपाशेन वा ।।[2]
> शौर्येण प्रणते, रिपौ करुणाया, नायान्ति के हास्यताम्
> औचित्येन बिना रुचिं प्रतनुते नालंकृतिर्नौगुण: ।।

---

[1] भरत मुनि, नाट्यशास्त्र ।

[2] वही ।

कण्ठ में कमर की मेखला, कमर में विशाल हार, हाथों में नूपुर-बन्धन, चरणों में केयूरपाश ये सभी हंसी के पात्र होते हैं । उसी प्रकार विनयी तथा शरणागत के प्रति शौर्य, शत्रु के प्रति करुणा प्रदर्शित करना हंसी का पात्र समझा जाता है । अर्थात् जहां पर जैसा औचित्य हो वैसा न प्रदर्शित करने वाला लोक निंदा और हंसी का पात्र बनता है ।

इस प्रकार क्षेमेन्द्र जी ने औचित्य के स्वरूप को परिभाषित करते हुए काव्य के अर्थ, शब्द, अलंकार, गुण, रीति, वृत्ति, वक्रोक्ति आदि सभी तत्वों को उनके औचित्य के अनुसार ही प्रयोग की आवश्यकता पर बल दिया है अन्यथा उसके रसास्वादन में बाधा उत्पन्न होने का भय निश्चित है । क्षेमेन्द्र जी ने औचित्य के कई भेदों पर प्रकाश डाला है । ये सभी वर्गीकरण ध्वनि, वक्रोक्ति आदि काव्य शास्त्रों के वर्गीकरण पर आधारित है ।

<u>औचित्य सिद्धान्त (क्षेमेन्द्र-मीता साहब के संदर्भ में):</u>

क्षेमेन्द्र जी ने औचित्य के जिन विभेदों को स्वीकार किया है उनको मीता साहब ने कितना अपनाया इस पर प्रकाश डालना उचित होगा -

(१) <u>मीमांसा-दर्शन के क्षेत्र में आने वाले तत्व:</u>- पद विचार, वाक्य विचार और प्रबन्धशार्थ विचार । मीता साहब ने पदों का प्रयोग विषय के अनुकूल किया है । सारी रचनाओं में अनेक पद ऐसे हैं जिससे पूरी रचना का उत्कृष्ट रूप परिलक्षित होता है । स्त्री वाचक और पुरुष वाचकों शब्दों के बहुत से पर्यायवाची होते हुए भी उनका प्रयोग ऐसे ऐसे स्थानों पर किया है जहां उसकी उपयुक्त व्यंजना ध्वनित होती है । नारी शब्द को कई बार मीता ने प्रयोग किया है लेकिन प्रत्येक बार उसका यथोचित रूप प्रतिबिंबित होता है यथा-

काया सुन्दर बहु बनी, मिली सुलछनि नारि ।
घर बाहर लछमी भरी, बिना भगति अंधारि ।। [1]

मनु एकई सो रम रहा, कोई नारि कीऊ दाम ।
दूजा कहवां पाइये, जौन मिलावैं राम ।। [2]

कलनी दूहि दूधे बहे, कुमति लिये बहै राम ।
कलहिनी नारी कुलदानी, का करै पिया सनमान ।। [3]

विधवा नारि जिन तप ठाना, तेऊ विश्वा होई निदाना
पुरुष न भोगवै जगु डर माना, औरै जन्म बहुतै मनमाना ।। [4]

मृत्युक संग देई तनु जारी, तेऊ बकोरनी होइहै नारी । [5]
'गनिका' पापी ना हती, पापी कहता तौन ।
सुरति, डिगिअयां अकारी, फिर पहुंची धरि गौन ।। [6]

प्रथम दोहे में सुन्दर शरीर वाले पुरुष के निमित्त सुलक्षणों से युक्त बहुरानी का स्पष्ट यथोचित रूप प्रतिबिम्बित होता है । दूसरे दोहे में मन को आकर्षित करने वाली किसी सामान्य नारी का चित्र है । तीसरे दोहे में प्रियतम का सम्मान न करने वाली नारी का कलहिनी एवं कुलदानी स्वरूप में सामाजिक चित्र का औचित्य प्रतिबिंबित होता है । इसी प्रकार विधवा नारी का सभी श्रृंगार त्याज्य कर योगी जैसा बन जाना एवं पति मरने पर चिता में जलने के निमित्त सती होना वास्तव में नारियों के चित्र ऐसे हैं जैसे किसी कैमरा मैन (छाया चित्रक) भिन्न-भिन्न कोणों से भिन्न-भिन्न चित्र एक ही वस्तु के

---

[1] सीतादास, ह०लिखित ग्रंथ, दोहा संख्या- २१४ ।

[2] वही, दोहा संख्या-११०६ ।

[3] वही, दोहा संख्या- ६५६ ।

[4] वही, दोहा संख्या-११७४ ।

[5] वही, दोहा संख्या-६७ ।

[6] वही, दोहा संख्या-१७५० ।

आयोजित किये हों ।

मीता साहब शब्द के साथ-साथ वाक्य रचना में भी चमत्कार पैदा कर वाक्यौचित्य को ध्यान में रखा है । जब कवि स्वयं के प्रतिभा के बल पर नयी कल्पना के द्वारा मानो समस्त प्रबन्ध को आप्लुप्त करने वाली अमृतवर्षा से भर देता है वहां प्रबन्ध औचित्य कहा जाता है ।[१] मीता साहब की रचनायें इस प्रबन्ध औचित्य से भरी पड़ी हैं । अपनी रचनाओं में उन्होंने स्वयं अन्वेषित मौलिक तथ्यों को औचित्य माना है । चिर-प्रचलित कथायें समस्त लोग जानते हैं कि दुर्योधन ने भरी सभा में द्रौपदी को विवस्त्र करने के निमित्त दुःशासन से उनका चिर हरण करवाया था और भगवान ने वस्त्र बढ़ाकर द्रौपदी की लाज बचायी थी । मीता साहब अपनी प्रबन्ध कौशलता में इस तथ्य को मान्यता न देकर इसको कर्मों का फल का औचित्य बताते हैं । द्रौपदी के चिर हरण एवं वस्त्रों द्वारा उसकी लाज बचना वास्तव में मीता साहब की नयी प्रबन्ध कौशलता का औचित्य है -

जो काहु की हंसी करें तो हंसी ताहु की होई ।
सच्चा साहब न्याव करतु है गरब न राखे कोई ।।
विश्वकर्मा जब धाम रचा दुजोधन देखन आये ।
ताल देखि भल हंसी द्रौपदी तब हरिपाप लगाये ।।
तोंने पाप चीर मा खैंचा, पुन्न सहायी आये ।
दुर्वासा का वस्तर दीन्हा, कान्हा नहीं बढ़ावे ।।

आम्लान प्रतिभा और मौलिक कल्पना द्वारा नये प्रबन्धात्मक तत्वों का सृजन करना मीता साहब की बचन-वाणी का प्रमुख विषय रहा है । सन्त-विचार धारा के सन्त कवियों की उड़ान मीता साहब के प्रबन्ध स्तर को छूने में असमर्थ जान पड़ती है । राम का वनवास एवं सीता हरण आदि को कर्मों का फल स्पष्ट करते हुए मीता साहब के द्वितीय मौलिक प्रबन्ध औचित्य

---

[१] डा० रामसागर त्रिपाठी, वृहद् साहित्यिक निबन्ध ।

का उदाहरण अधोलिखित पदों में द्रष्टव्य है -

> रामचन्द्र अभिमान किया कछु धनुष तोर जब डारा ।
> ताही दोष हरी गै सीता, ब्याव को करतारा ।।
> दशरथ के मन ऐसी आयी, जौन रची करतारा ।
> बन का पठै जानकी खोई, गरब तोर सब डारा ।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कर्मों के अच्छे बुरे फलों के परिणाम से सबको भुगतना पड़ता है । इस विषय में अपने नवीन तथ्यों को प्रतिपादित कर मीता साहब ने अपनी नूतन प्रबन्ध कौशलता के औचित्य का सफल प्रदर्शन किया ।

(२) <u>व्याकरण सम्बद्ध तत्व- जैसे क्रिया, कारक, लिंग, वचन, विशेषण, उपसर्ग, निपात और काल का औचित्य:</u>

काव्य की शोभा के लिए व्याकरण के तत्वों का काव्य में प्रयोग अपरिहार्य है । कर्ता के अनुसार उचित क्रिया ही शोभा पा सकती है । अत: काव्य में क्रिया का औचित्य आवश्यक है । मीता साहब ने अपनी रचनाओं में क्रिया के औचित्य पर विशेष ध्यान दिया है । कर्ता के अनुसार उचित क्रिया का प्रयोग करना और औचित्य के सिद्धान्त को सदा दृष्टिगत रखकर अपने पदों, दोहों आदि का सृजन करना उनकी निजी विशेषता रही है । बनारसी बोली अथवा भोजपुरी के शब्दों के कर्ता का उसके अनुरूप ही क्रिया का प्रयोग हुआ है । यथा-

> सदन कसाई कहन का, रहा पुरातिम हास ।
> सुरति चली जग में परा, फिर पहुंचा हरिपास ।।
> गनिका पापी ना हती, पापी कहता कौन ।
> सुरति डिगि इहां अवतरी, फिर पहुंची हरि भौन ।।

प्रथम दोहे में स्त्रीलिंग गनिका के लिए हती, डिगि, अवतरी, पहुंची आदि स्त्रीलिंग सूचक क्रिया का प्रयोग हुआ है अत: मीता साहब ने क्रिया के औचित्य पर ध्यान दिया है । मीता दास जी की रचनाओं में क्रिया के साथ-साथ कारक

का भी यथोचित प्रयोग हुआ है जैसे -

> चुनि-चुनि नवै बहुत सठ लागे, भीतर भरी भंगोई ।
> चिता चोर, कमानि नवात है नवैं विगुन को लोई ।।

उपर्युक्त पद में भीखा साहब ने चिता, चोर और धनुष का कर्ता के रूप में प्रयोग कर तीनों के साथ एक ही नवै क्रिया का यथोचित प्रयोग किया है । वास्तव में नवै क्रिया के कर्ता चिता का झुककर शिकार पर हमला करना, चोर का झुक कर सेंध में प्रवेश करना एवं धनुष का झुकने के पश्चात् बाणों की वर्षा करना आदि चित्र कारक के औचित्य पर प्रकाश डालते हैं ।

इसी प्रकार कर्म कारक प्रयोग उनकी रचनाओं में एक चमत्कारिक अभिव्यक्ति की व्यंजना करता है ।

जीयत बकरिया का गहि मारा अथवा उलटा शसा सिंह का मारा, मूस बिलारी मारा में स्पष्ट रूप से कर्म कारक के औचित्य की अभिव्यक्ति होती है । भीखा साहब ने करण कारक की विभक्ति (से, द्वारा आदि) के औचित्य को दृष्टिगत रखते हुए इसका व्याकरणबद्ध प्रयोग किया है जैसे -

> पांच तत्व और ब्रह्म ते नर नारी दोऊ कीन्हि ।
> संतन के दोऊ एक ते, जे आतम लवलीनि ।।

जहां एक ओर विशेषण के प्रयोग से काव्य में चमत्कार आ जाता है वहीं दूसरी ओर उसके औचित्य से तनिक भी विचलित होने पर रचना के माधुर्य में विकर्षण उत्पन्न होता है और समस्त औचित्य हीन हो जाता है । भीखा साहब ने विशेष्य के अनुरूप ही विशेषण का प्रयोग किया है । `ननद` तत्कालिन समाज में नवेली बहुओं को व्यंग्योक्ति से प्रताड़ित करती थी । भीखा साहब ने `ननद निगोड़ी जाको` में ननद निगोड़ी (मुई) कहकर विशेषण औचित्य का सम्बन्ध किया है । अन्य पदों में भी-

मीता दुरमति देखि के, नर के निकट न जाय ।
तिनते करिया सांप भला, नाहक काट न खाय ।।

सांप, दुष्ट मनुष्य से अच्छा है । अकारण वह किसी को नहीं काटता । सांप के लिये `भला`, उसके विषैलेपन के लिए विषधर, भयंकर आदि के स्थान पर `करिया` विशेषण का प्रयोग किया है । यद्यपि करिया सांप से भयंकर सर्प (करैत) की व्यंजना होती है लेकिन यह उसके काले रंग (विषहीन) सांप की भी व्यंजना करता है । भला विशेषण के शब्द से काले विषधर की भयंकरता उसकी सरलता में परिणित हो जाती है । समय के औचित्य को सदा मीता साहब ने दृष्टिगत रखा है । उद्ध्र्व मुख करके पवन आहार करने वाला नटकर्मी भी सर्प का जन्म लेता है लेकिन वह विषधर के रूप में, करिया सांप के रूप में नहीं जो मनुष्य से भला है जबकि विषधर और सांप दोनों पर्यायवाची हैं लेकिन दोनों के दो रूप व्यंजित होते हैं -

उरध मुख करो पवन अहारा, ते लौरुहे विषहर अवतारा ।

अतः मीता साहब ने व्याकरण के सभी अंगों, लिंग, वचन, प्रत्यय आदि पर ध्यान दिया है और यथोचित रूप में उसके औचित्य का निर्वाह किया है जिसके बारे में भाषा के प्रकार में विस्तारपूर्वक दर्शाया गया है ।

(३) काव्य शास्त्री सम्बन्धी : गुण, अलंकार रस :- मीता साहब ने ओज, प्रसाद, माधुर्य इत्यादि गुणों में औचित्य का ध्यान रखा है । यद्यपि शृंगार का प्रयोग उन्होंने सामान्य लौकिक अर्थ में नहीं किया है फिर भी उसके माधुर्यता में अनौचित्य लेशमात्र भी नहीं है । `मोहि पिया पिया धुनि लागी` में निर्गुण ब्रह्म की पुकार के साथ-साथ लौकिक प्रियतम के विरह भी द्रष्टव्य हैं जिसका विप्रलंभ शृंगार में एक अपना विशिष्ट महत्व है । इस प्रकार -

मयका लगी सुहावन हो जब लग ससुरे न जाय ।
ससुरे के हो आयन हो औरन मन हो जाय ।।

उपर्युक्त पद में भी श्रृंगार रस का माधुर्य गुण अपने औचित्य को प्रमाणित करता है । यह विवाह पूर्व स्वाभाविक एवं मानवीय प्रकृति के अनुकूल है । कुंवारी लड़की को उसका मायका सुन्दर लगता है लेकिन विवाह के पश्चात् ससुराल ही उसका सुहावन संसार बन जाता है । भीखा साहब के रचनाओं में इस प्रकार के माधुर्य गुणों का औचित्य स्पष्ट परिलक्षित होता है ।

भीखादास ने वीर रसों में ओज गुण को स्थान देकर ओज-गुण को प्रतिपादित किया है -

शब्द का विचार लिया, पांचो का मार, मन का संभारि
मन आया तब हाथ है ।

भीखा साहब ने ओज-गुण को प्रदर्शित कर वास्तव में गुण के औचित्य पर प्रकाश डाला है । अलंकार काव्य की शोभा है लेकिन अनावश्यक अलंकारों का प्रयोग काव्य की शोभा को बढ़ाने के बजाय उसे विनष्ट कर देते हैं । भीखा साहब ने सदा अलंकार के औचित्य पर ध्यान रखा है । अलंकारों के प्रयोग से उनकी रचना में शोभा का पुट परिलक्षित होता है । अलंकार के शीर्षक में उनके अलंकारों की योजना के बारे में विस्तार से वर्णन किया गया है ।

(४) कवि केवल शास्त्र का ज्ञाता और प्रणेता ही नहीं होता वरन् लोकाचार द्रष्टा भी । उसका कथा और लेखन दोनों लोक के कल्याणार्थ ही होता है । लोक औचित्य के अभाव में काव्य समाज का महत्त्वपूर्ण अंग नहीं बन सकता । काव्य सामाजिक प्रचलन के औचित्य का निर्वाह करता है । भीखा साहब ने देश-काल के औचित्य को अपनी रचनाओं में स्थान दिया यही कारण है कि उनका काव्य लोक औचित्य के निर्वाह के कारण जन मानस की भावनाओं के अनुरूप है । भीखा साहब ने पूर्वी उत्तरप्रदेश एवं बिहार में विवाह आदि के पूर्व पांच हरे बांसों का

माड़ो गाड़ना, दुल्हन को हल्दी उपटन आदि के प्रयोग द्वारा लोकौचित्य को स्थान दिया है ।

> मूले मड़वा छाया को, पांच पचीसनी बाधि ।
> अनाम बाजा बाजई, हरद बरन भई दोही ।।

यही नहीं लोक-देश की बारीक रीति-रिवाजों के औचित्य पर भी भीखादास ने ध्यान दिया है । पूर्वी उत्तरप्रदेश एवं बिहार में शादी के पश्चात् लड़की की विदाई नहीं होती वरन् कुछ दिन बाद गवने (द्विरागमन) में ही उसकी विदाई होती है । सभी समाज पर यह रीति-रिवाज प्रचलित नहीं है । तत्कालीन समाज की इस रीति औचित्य को भीखा साहब ने अपनी रचनाओं में स्थान दिया है ।

> गवने से आयी री दोनों चिते मुसकाहि ।
> कोउ न कहे दोनों जाने सेजरि के रे सुभाय ।।

(५) भीखा साहब ने तत्व, सत्व, अभिप्राय, सार, संग्रह, प्रतिभा, अवस्था, विचार आदि अन्तर्दृष्टिकोण सम्बन्धी काव्योपयोगी औचित्य पर भी विचार किया है । भीखा साहब की रचनाओं में मानस की अन्तर्विभूतियों का प्रस्फुरण स्पष्ट परिलक्षित होता है । भीखा साहब ने सदैव काव्य के औचित्य के ऊपर भी सदा दृष्टि रखकर रचनाओं का सृजन किया है ताकि आगे की पीढ़ी तर्कयुक्त प्रमाण से उनकी रचनाओं को उपेक्षित न कर दे । वैष्णव विचारधारा में श्रेष्ठ भगवान श्रीकृष्ण की चिर-प्रचलित मान्यताओं को स्वीकार न करते हुए भी अपनी नयी मान्यता के रूप शास्त्र के विषय के रूप में स्वीकार किया है । जो अनौचित्य की संज्ञा नहीं ग्रहण कर सकता है । शास्त्रों के महापुरुष कृष्ण के औचित्य को तो भीखा साहब ने अपना पूर्ण समर्थन दिया है लेकिन उन पर जमी हुई पाखण्ड की धूल को पूर्णतया तिरस्कृत किया है । भीखा साहब कहते हैं कि गोपियों के वस्त्र चुराने वाला, माखन चुराने वाला, रास लीला रचाने वाला कृष्ण पीताम्बर रखता नहीं हो सकता क्योंकि गीता जैसे निष्काम कर्म ज्ञान ऐसी सतही मनुष्य के वाणी का विषय नहीं । अर्जुन जैसे क्रोधी और कृष्ण

जैसे विषयी मनुष्य की गीता के ज्ञान से सम्बन्ध करना हास्यास्पद है । वे कहते हैं कि -

> कान्हा गुण्डा नंद ग्वाल का पल में कीन्ही चोवारी ।
> कामी कुटिल हता मन मैला, चोर गया संसारी ।।
> अर्जुन फासे क्रोध मां, कान्हा फासे काम ।
> तहां ज्ञान कैसे रहा, गीता है निष्काम ।।
> कृष्ण नाम संत का कहिये, गीता जिनकी बानी ।
> नारद शुकदेव व्यास बोट जे गीता करी बखानी ।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गीता साहब ने काव्य शास्त्रों के औचित्य पर भी पूरा प्रकाश डाला है ।

स प्त म प्र क र ण

मूल्यांकन के विभिन्न दृष्टिकोण

पातन्जल योग-सूत्र का प्रभाव

शौच :

पतन्जलि ऋषि ने योग साधना में शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान ये पांच नियम बताये है[१]। ऋषि भोजदेव ने राजमार्तण्ड वृत्ति में इस शौच की व्याख्या करते हुए लिखा है कि -

शौचं द्विविधं-बाह्यमाभ्यन्तरञ्च; बाह्यं मृज्जलादिभिः कायादिप्रक्षालनम्, आभ्यन्तरं मैत्र्यादिभिश्चित्तमलानां प्रक्षालनम्। सन्तोषस्तुष्टि। शेषाः प्रागेव (२।१) कृतव्याख्यानाः। एते शौचादयो नियमशब्दवाच्याः ।।

अर्थात् शौच (पवित्रता) दो प्रकार की होती है - बाहरी पवित्रता और आन्तरिक पवित्रता। मिट्टी जल इत्यादि से शरीर के अंगों का प्रक्षालन बाहरी पवित्रता है। मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा के द्वारा चित्त में रहने वाले राग, द्वेष, क्रोध, द्रोह, ईर्ष्या, असूया, मद-मोह, मत्सर लोभ इत्यादि मलों कलुषों अशुद्धियों का प्रक्षालन आन्तरिक पवित्रता है। तुष्टि ही संतोष है अर्थात् स्वकर्तव्य का पालन करते हुए, प्रारब्ध के अनुसार, प्राप्त फल से सन्तुष्ट हो जाना तृष्णा का न होना ही सन्तोष है।

मीता साहब की रचनाओं में भी पातन्जलि ऋषि के इस नियम का शत प्रतिशत प्रभाव पड़ा है। वे शौच (पवित्रता) के स्वरूप को स्वीकार करते हैं लेकिन उन्हें योग की प्राप्ति के लिए पातन्जलि जी के अनुसार बाह्य शरीर प्रक्षालन की नहीं अपितु आन्तरिक राग, द्वेष, अहंकार, क्रोध, ईर्ष्या आदि

---

[१] शौच-सन्तोष-तपः-स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः, पातन्जलयोगसूत्रम्, द्वितीय साधनपाद, ३२।

मन की वृत्तियों के प्रक्षालन पर बल दिया है क्योंकि इनकी पवित्रता से ही अखण्ड ब्रह्माण्ड का संयोग प्राप्त हो सकता है । मीतादास कहते हैं कि-

मन का धोऊ धोय का काया ।

+ + +

मन धोये हरि दर्शन पाये ।
कह सधुवा तोहि कै भरमाये ।।

+ + +

काया पानी धोव्या, मन जैहै कैसे धोय ।
कह मीता मन धोय ले सहज परम पद होय ।।

सन्तोष:

मीता साहब ने योग के द्वितीय नियम सन्तोष को भी स्वीकार किया है । बिना संतोष के आशा, तृष्णा का नाश नहीं होता । आशा-तृष्णा के विनाश के बिना दु:ख की समाप्ति असम्भव है क्योंकि ये ही दुख के मूल है । इस पर मीता साहब अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि -

आशा तिष्णा कठिन है छाड़ै विरला कोय ।
मीता हरिमन लगे, दाम न लागै कोय ।।

विद्या-अविद्या:

मीता साहब ने विद्या और अविद्या का निर्धारण भी पातन्जलि योग सूत्र के अनुसार ही किया है । पातंजलि ऋषि कहते हैं कि अविद्या ही मोह का कारण है । आत्म भिन्न वस्तु को आत्मा मान लेना, अस्मिता, राग, द्वेष अभिनिवेश सबका कारण अविद्या है क्योंकि ये दुख के मूल हैं । अत: इन चारो ही की प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न तथा उदार, चार अवस्थायें हैं और अविद्या सबका मूल है उसके अभाव होने पर सभी का अभाव हो जाता है।[1] प्रपंची

---

[1] अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्त-तनु-विच्छिन्नोदाराणाम्, पातंजलयोगसूत्रम, द्वितीय साधनपाद, ४ ।

विनाशशील जगत को नित्य मानता है।[1] अस्थि,स्नायु,मज्जा इत्यादि से निर्मित अपवित्र शरीर को पवित्र मानना, दुखमय भोगों को सुख स्वरूप समझना तथा आत्मा से भिन्न अचेतन नश्वर-शरीर इन्द्रिय इत्यादि को आत्मा मान लेना ही अविद्या है।[2] इस अविद्या के अभाव हो जाने से सभी दुखों के कारण दृश्य दृष्टा का संयोग स्वतः समाप्त हो जाता है। यही संयोग का अभाव ही दुख की निश्चित तथा सार्वकालिक निवृत्ति है। इस प्रकार केवल विशुद्ध चिन्मात्र पुरुष अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। यही कैवल्य मोक्ष है।[3]

मीता साहब ने भी ईश्वरत्व प्राप्ति की विद्या को छोड़कर सभी प्रकार की विद्या को अविद्या के रूप में स्वीकार किया है। जिस विद्या को पढ़ने से जीव को निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त हो जाय वही विद्या है। वह विद्या जिससे मृत्यु का भय समाप्त नहीं होता सभी अविद्या के रूप हैं जैसे -

विद्या सबै अविद्या, बिनु भेटै भगवान।
मीता विद्या सो पढ़ी, पुरुष मिला निरबान।।
विद्या सबै अविद्या बिन, भेटै भगवान।
मीता विद्या सो पढ़ी, पद पाया निरवान।।
पढ़ी विद्या पथरा भये, लखा नहीं तत्व ग्यान।
कह मीता सुन पंडिता, नाहक करत गुमान।।
वा विद्या सठ औरि है, जति काल न खाय।
जाति बड़ाई विद्या-झूठी, बिन सुमिरे रघुराय।।

---

[1] अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या, पातञ्जलयोगसूत्रम्, द्वितीय साधनपाद, ५।

[2] क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः, पातञ्जलयोगसूत्रम्, द्वितीय साधनपाद, १२।

[3] तदभावे संयोगाभावे हानं तद् दृशेः कैवल्यम्, पातञ्जलयोगसूत्रम्, द्वितीय साधनपाद, २५।

कर्म-क्लेश:

पातञ्जलि जी कहते हैं कि इस जीवन में तथा भविष्य में भोगे जाने वाले धर्म तथा अधर्म रूपी कर्म वासनाओं के मूल कारण क्लेश हैं। पंच-विधि-क्लेशों के कारण ही चित्त के साथ इन कर्म संस्कारों का सम्बन्ध होता है।

कर्म पुण्य तथा पाप कर्माशयों से उत्पन्न होने के कारण उनके विपाक जाति आयु-भोग भी उन्हीं के अनुसार हर्ष एवं शोक परिणाम वाले होते हैं। शुभ कर्मों के परिणाम स्वरूप जो जाति-आयु-भोग होते हैं वे सुखमय तथा अशुभ कर्मों के परिणाम जाति-आयु-भोग दुख प्रदान करने वाले होते हैं।[1]

सभी कर्मों के फल दुख के ही स्वरूप हैं चाहे वह पाप हो या पुण्य। अर्थात् जितने भी कर्मजन्य, स्वकृत कर्मों से प्राप्त होनेवाले सुख हैं वे सभी परिणामजन्य, तापजन्य एवं संस्कारजन्य दुखों से मिश्रित हैं। सभी त्रिविध दुखों से मिश्रित होने से तथा सत्व, रजस् तमस् तीनों गुणों के कार्यों में परस्पर विरोध होने के कारण विवेकी ज्ञानी योगी के लिये सभी भोग दुख प्रदान करने वाले हैं अतः त्याज्य हैं।[2]

कर्मफल-भोग:

मीता साहब के ऊपर पातञ्जलि ऋषि के उपर्युक्त नियम का अप्रत्यक्ष: प्रभाव पड़ा है। मीता साहब स्वीकार करते हैं कि जीव को अपने

---

[1] ते ह्लाद-परितापफला: पुण्यापुण्यहेतुत्वात्, पातञ्जलयोगसूत्रम, द्वितीय साधनपाद:, १४।

[2] परिणामतापसंस्कारदु:खैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दु:खमेव सर्वं विवेकिन:, पातञ्जलयोगसूत्रम, द्वितीय साधनपाद:, १५।

द्वारा किये गए पाप-पुण्य का फल भोगना पड़ता है । जहां पुण्य के कारण उसे राजा की योनि में आकर सुखों की उपलब्धि होती है वहीं पाप के कारण नीच पशुओं की योनि में भारी दुख उठाना पड़ता है लेकिन पाप-पुण्य दोनों कर्मों से दुख का छुटकारा नहीं है , क्योंकि इसके द्वारा जन्म-मरण के दुसह दुख जीव को उठाना पड़ता है । अत: दोनों त्याज्य है । जैसे -

पाप पुन्य की खेती करते, हानि नफा उपजाना रे ।
कबहुं राजा होई के बैठे, कबहुं होई खर स्वाना रे ।
उपजत बिन सत बहु दुख पावे, बूझे न मुलुक न दाना रे ।

मीता साहब कहते हैं कि चाहे सद्कर्मों के कारण अच्छी योनि प्राप्त हो या दुष्कर्मों के कारण नीच योनि प्राप्त हो दोनों में जीव को गर्भवास करना पड़ता है जो नरक है । कहते हैं कि -

गरभवास ते नरक है, ताते बचावे कौन ।
कबहुं का सुकर, कुकुर, कबहुं का राजा भौन ।।

अत: मीता साहब संसार रूपी अग्नि में पाप-पुण्य कर्मों के विनाश से ही जीव के मुक्ति के साधन को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि -

जग मीता वन सो किया, वन में लगी दवागि ।
कर्म जरे जीव उबरा, साधो कहो विचारि ।।

यह संसार पाप-पुण्य के डोर से निर्मित कर्म के झूले में झूला झूल रहा है । आवागमन के इस झूले का झूलना माया से प्रेरित है । जब तक पाप-पुण्य की इस डोर को काट नहीं दिया जाता तब तक कर्म के झूले का आवागमन अवरुद्ध नहीं हो सकता । जो जीव के लिये अतिसह दुख का कारण है । अत: पाप-पुण्य के कर्मों का निरोध योगी के लिये आवश्यक है । मीतादास कहते हैं कि -

करम हिंडोले जग पड़ा, पाप पुण्य दोउ डोर ।
माया बड़े झुलावई, छुट न सके या डोर ।।

प्राणायाम:

महर्षि पातन्जलि ने वाह्य तथा आभ्यांतर विषयों का परित्याग करने वाले चतुर्थ प्रकार के प्राणायाम को ज्ञान के प्राप्ति के निमित्त बताया है । वे कहते हैं कि प्राण वायु के बाहरी विषय स्थान नासिकाग्र इत्यादि देश है और उसका आन्तरिक विषय-स्थान हृदय नाभिचक्र इत्यादि है । दोनों वाह्य तथा आभ्यान्तर विषयों का परित्याग करके स्तम्भन रूप श्वांस प्रश्वास प्राण वायु की गति का निरोध ही चतुर्थ प्रकार का प्राणायाम है[१] । तीसरे प्रकार का रेचक कुंभक प्राणायाम और चौथे प्रकार के स्तम्भन प्राणायाम में अन्तर यह है कि गर्म पत्थर पर गिरे हुए जल के समान दाणिक वह प्रभावहीन होता है जबकि चौथा प्राणायाम वाह्य तथा आभ्यांतर विषयों का निरोध कर अविद्या, अस्मिता आदि को क्षीण कर देता है जिसके फलस्वरूप उसे परम पद की प्राप्ति होती है[२] ।

गीता साहब ने भी रेचक कुंभक आदि वाह्य तथा आभ्यांतर विषयों के प्राणायाम के निरोध पर बल दिया है । रेचक, कुंभक तथा अन्य वाह्य तथा आभ्यांतर विषयों के प्राणायाम के शरीर के प्रदेश तक ही सीमित रह पाते हैं । अत: ये षटकर्म से प्रेरित है । जो जीव को मुक्ति के मार्ग पर अग्रसर करने में बाधक है । अर्ध्व और उर्ध्व मुख करके श्वास प्रश्वास की संख्या को सीमित करना, आंत धोना जलाशयी क्रिया, कायाकल्प आदि क्रियायें दाणिक साधन मात्र है साध्य नहीं । अत: इनका निरोध ही ज्ञान है अन्यथा

---

[१] बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थ:, पातंजलयोगसूत्रम, द्वितीय साधनपाद:, ५१ ।

[२] तत: क्षीयते प्रकाशावरणम्, पातंजलयोगसूत्रम, द्वितीय साधनपाद:, ५२ ।

इनके द्वारा जीव को भिन्न योनियों में भ्रमण करना पड़ता है । भीखा साहब कहते हैं कि -

> कोउ चढ़ावै उर्ध मुख पवना, ते होइहैं अजगर के खवना ।
> रेचक, कुंभक कोउ करै ध्याना, ते मरकट नट होई निदाना ।।

भीखा साहब अपने मत को पातंजलि के अनुसार दृढ़ करते हैं । उर्ध्व पवन को चढ़ाना शून्य में काया को स्थिर करना, अजपा जाप तथा अनहद नाद आदि प्राणायाम को व्यर्थ मानकर उसके निरोध पर बल देते हैं यथा-

> भरम पवन चढ़ाई उलटा, मुनिन मन माना ।
> \+ \+ \+
> भरम अजपा धुनी अनहद भरम ना जाना ।

साधना और सिद्धियां:

पातंजलि ऋषि ने प्रातिभ-श्रावण-वेदना-आदर्श-आस्वाद वार्ता रूपी षट् सिद्धियों की उपलब्धि पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि ये सिद्धियां पुरुष के स्वरूप का दर्शन कराने वाली असं-प्रज्ञात समाधि में बाधा पहुंचाने वाली है । परम-पुरुष के स्वरूप का साक्षात्कार असंप्रज्ञात समाधि में ही होता है, जिसमें चित्त पूर्ण रूप से समाधिस्थ रहता है और उसमें केवल [illegible] पुरुष का ही प्रतिबिम्ब रहता है किन्तु स्वार्थ वृत्ति के संयम से इन सिद्धियों की उपलब्धि हो जाने से योगी कृतकृत्य समझकर अखण्ड ब्रह्माण्डनायक स्वरूप के साक्षात्कार का प्रयास नहीं करता । वह इन सिद्धियों में ही लिप्त होकर पुन: सांसारिक वासनाओं के चक्कर में पड़कर आवागमन के झूले में झूला-झूलने लगता है ।[१]

---

[१] तत: प्रातिभ-श्रावण-वेदनादर्शास्वाद-वार्ता जायन्ते, पातंजल-योगसूत्रम्, तृतीयभूतिपाद:, ३६ ।

समाधि-स्थिति:

मीता साहब ने भी इस स्थिति का वर्णन किया है इन अष्ट सिद्धियों को प्राप्त करने के बाद मीता साहब ने सुरति (समाधि) में लीन हो जाने पर बल दिया है ताकि ईश्वरत्व की अनुभूति हो सके । इस सुरति साधना के छिनने पर पुनः जीव को जन्म लेना पड़ता है । गनिका और सदन कसाई इसके उदाहरण हैं । वे अष्ट सिद्धियों को प्राप्त करने के उपरान्त सुरति-साधना से विचलित हो गये जिसके कारण उन्हें पुनः जन्म लेना पड़ा ।

> सदन कसाई कहन का, रहे पुरातिम दास ।
> सुरति चली जग में परा, फिर पहुंचा हरिदास ।।
> गनिका पापी ना हती पायी कहवा तौन ।
> सुरति छिगि इहां अवतरी, फिर पहुंची हरि भौन ।।

मीता साहब कहते हैं कि सुरति की डोर टूट जाने पर जीव समाधि में नहीं रह सकता और आशा, तृष्णा, वासना में रत जीव के रूप में भ्रमण करना पड़ता है यथा-

> टूटी डोरी, जीव निकसा, तहां समाना जाय ।
> जहां आशा तहां वासना, सोई देई पहुंचाय ।।

वायु-वेग और संयम:

पातंजलि ऋषि कहते हैं कि उदर में स्थित जठराग्नि को चारो ओर से घेरकर उसमें स्थित वायु के जय से अर्थात् संयम द्वारा वश में कर लेने से आवरण रहित जठराग्नि का ऊर्ध्व गमन होने से योगी अग्नि तेज से प्रज्वलित होता हुआ प्रतीत होता है । अर्थात् जठराग्नि तथा समान वायु का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है । समान वायु इस अग्नि को आवृत किये रहती है । किन्तु

संयम द्वारा समान वायु के जीत लेने से यह अग्नि आवरणरहित निर्मुक्त हो जाती है । अत: प्रज्वलित इस अग्नि के प्रभाव से योगी का शरीर अत्यन्त तेजस्वी हो जाता है ।

अग्नि:

पातंजलि ऋषि की भाँति मीता साहब ने भी आभ्यांतर की अग्नि को स्वीकार किया है । बिना घर के अन्दर अग्नि के प्रभाव से जीव को साक्षात्कार सम्भव नहीं है । जठराग्नि के आभ्यान्तर में प्रज्वलित अग्नि तेज पुंज से ही सांसारिकता से उसकी निर्लिप्ति होती है यथा -

> रे सधुवा कहु कैसे घर जरिया ।
> बिनु घर जरे कुसल है नाहीं, का माला ले करिया ।
> जब घर जरे तबे जीव उबरी, या मत बिरले धरिया ।।

सांसारिकता और साक्षात्कार:

मीता साहब,पातंजलि ऋषि की ही भाँति सांसारिकता से मुक्ति एवं ईश्वर से स्नेह आभ्यान्तर में जठराग्नि के प्रज्वलित होने के पश्चात् ही मानते हैं । बिना आभ्यांतर की अग्नि के प्रज्वलन से प्रियतम ब्रह्माण्ड नायक से मधुर मिलन सम्भव नहीं है । यह अग्नि का प्रज्वलन होना भी तभी सम्भव है जब जीव अपने इस संसार के मद, मोह को छोड़ दे तथा योगासन में अपने आपको तपाकर मांस मज्जाहीन बना दे । तभी अनाहत नाद के श्रवण के पश्चात् इस अग्नि का प्रज्वलन सम्भव है । मीता दास कहते हैं कि-

> अनहद बाजा बाजई, सबद बान भई देहि ।
> छुधि टरै छन तब भई, तजा ग्रह सनेह ।
> वो अग्नि अभियन्तरा, जरि बरि भई अनेह ।

गोरखनाथ और मीतादास:

ब्रह्म का स्वरूप वर्णन में वेद आदि शास्त्रों की अपूर्णता:- मीता साहब की रचनाओं पर गोरखनाथ जी के बानी-वचनों का भी स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है । गोरखनाथ जी एवं मीता साहब दोनों परब्रह्म के निर्विकार, निर्गुण, निरालम्ब स्वरूप को स्वीकार करते हैं । उनके अनुसार परब्रह्म का ठीक-ठीक निर्वाचन न तो वेद कर पाये हैं और न कुरान । इनके अनुसार परब्रह्म के स्वरूप का ज्ञान वेद, पुराण व शास्त्रों को भी नहीं है ये सब तो (वेद, पुराण, कुरान) एक प्रकार से सत्य पर एक आवरण डालकर ब्रह्म को और भी दुरूह बना देते हैं ।

गोरखनाथ

वेद कतेब न वांणी वांणी । सब ढकी तलि आंणी ।
वेदे न शास्त्रे कतेबे न कुराणे, पुस्तके न बांचा जाई(२)
ते पद जानी बिरला जोगी, और दुनी सब धंधै
लाई ।।६ ।

मीता साहब:

वेद किताब नहीं या लिखी, है अनमय परगासा ।
मीता दीख परम पद पाये, हवे संतन का दासा ।।
मीता वेदो न लिखी, जो कह गया बुलासा ।
तीन देव जहां नहीं पहुंचे, तहां की थाही पासा ।।

धर्माडम्बरों का विरोध:- गोरखनाथ और मीता साहब दोनों ने अपनी वाणी वचनों में हिन्दुओं को ही नहीं अपितु मुसलमानों के धर्माडम्बरों की निन्दा की है । मुसलमानों की हिंसक प्रवृत्ति की दोनों निन्दा करते हैं । मुसलमानों का यह मत, पाखण्ड एवं भ्रम है कि उनके पैगम्बर जीव को मारकर उसका आहार करते थे, मीता साहब और गोरखनाथ दोनों को स्वीकार नहीं है । इस विषय

पर गोरखनाथ कहते हैं कि मुहम्मद साहब लोहे की छुरी से नहीं वरन् शब्दों की छुरी से भौतिक विषय वासनाओं को मारते थे जीव को नहीं । वही मीता साहब उनके मत की पुष्टि के लिये मुसलमानों की हिंसक प्रवृत्ति पर कुठाराघात करते हुए यह प्रमाण देते हैं कि पैगम्बर मुहम्मद साहब ने तो गोवध करना तो बहुत दूर, हरी लकड़ी को भी जीव समझकर उसे नहीं तोड़ा । मुहम्मद साहब ने जिन्हें वध करने का उपदेश दिया है वे मन की पांच चंचल इन्द्रियों (बकरी) और मोह ममता रूपी मुर्गी है । निरन्तर श्वास प्रश्वास की प्रक्रिया में सहायक पचीसों लिप्साओं रूपी गाय को मारने से जीव मुक्त हो सकता है । दूध देने वाली गाय को मारने से नहीं ।

गोरखनाथ:

महंमद महंमद न करि, काजी महंमद का विषय विचार
महंमद हाथि करद जे होती, लोहै घड़ी न सार ।
सबदै मारी सबदै जिवाई, ऐसा महंमद पीरं ।
ताके भरमि न भूलो, काजी सो बल नहीं सरीरं ।।

मीता साहब:

लकरी हरी नहीं तोर मुहम्मद कब गइया मारा है ।
डरते रहो खुदाय असल का, तु का मने धरा है ।।
+ + +

बकरी पांच रहे घर भीतर ममता मुर्गी संगा ।
इनका मारो जीव उबारो, घर ही मे मक्का मदीना ।।
आई गयी गायी को मारो, होई जो ही पर गासा ।
गइया दूधि खान की मारे, दोजख पाइहै बासा ।।

योग-दर्शन:- गोरखनाथ और मीता साहब दोनों मन की उन्मान अवस्था, कामिनी (विषय) से विराग, माया का बन्धन, अजपा जाप, ब्रह्म रन्ध्र (शून्य) में स्थित करना आदि योग पक्ष के विभिन्न स्थितियों का वर्णन करते हैं -

गोरखनाथ:

अह निसि मठे उन्मन रहे गम की छाड़ि
गोरखबानी (१६, १७, १८, १९)

भीखा साहब:

भाती भरी ना ले लागी, ब्रह्म अग्नि उद्गारी रे ।
जोग जुगति का संगम किन्हा, पायी औघट घाटी रे ।।
मरे मदन पाप सब जरि गये, कुमति छाड़ि गई उतारे ।
सुमति सोहागनि, मारग लागी दोनों भाग्य भारी रे ।।

+ + +

सहज शून्य समान, मनुवा उनमुनि लागी रहे ।
जोग जुगति विचार बैठा, भाग्य ते या पदक है ।।

+ + +

और हवै पंथ अपार, जोगी मति को जाने ।
अंदर धुनि ध्यान की, आवै नहीं आन ।
पांच पचीसो, बांधि के, मूले लगो तार ।
प्रेम पियाला पीजिया, जप अजपा जाप ।।

सच्चे योगी :- गोरखनाथ और भीखा साहब योग परक तत्वों में इड़ा और पिंगला को बहुत महत्व देते हैं । इड़ा, पिंगला (चन्द्र, सूर्य) दोनों नाड़ियों के व्यापार को बन्दकर सुषुम्ना के बन्द कपाट रूपी ब्रह्म शिला को खोलकर सुषुम्ना के मार्ग से स्वास का आवागमन कराना तथा राख की भस्म की अपेक्षा सांसारिक (भीतर) जगत के तत्वों को जलाकर उसकी भस्म लगाना ही योगी के लिए श्रेयस्कर है । इस प्रकार नादानुसंधान करने वाला योगी अनाहत नाद के रूप में श्रृंगीनाद बजाता है तथा चन्द्र से झरने वाले अमृत को पीता है वही सच्चा योगी है । दोनों कहते हैं कि -

गोरखनाथ:

चन्द सूर नीं मुद्रा कीन्ही, धरणि भस्म जब मेला ।
नादी व्यंदी, सींगी मकासी, अलख गुरु ना चेला ।।(३)
इली सीधी धरि प्यंगुली पूरी, सुषमां चढ़ असमानं ।
मछिंद्र प्रसादैं जती गोरख बोल्या, निरंजन सिधि ने थानं।५
नीझर झरणें अमीरस, पीवणां षाट दव वेश्या जाय ।
चंद बिहूंणा चांदणा, तहां देष्या श्री गोरख राइं ।।२७१

मीता साहब:

चांद सूरज बीच, अंतरा करै रसा केलि ।
इड़ा पींगला फारि कै ले लागि जोरि ।
क्र शिला तब खोलई, किन्हा रावल भेटु ।
जोगिन जोगी का मिली, गुरु गमी का खेल ।
जगमग जोति बिराजई जब खुले कपाट ।
निरबानी पद पाव्या, पहुंची पिया पास ।।
जोगी परम सुजान, नगरी मैं गाई ले रमिता राम ।
अनहद सिंगी अनबन राग, [illegible] हंसि करत निहाल ।

+ + +

कहै मीता मेरा गुरु सोय, जो या मारा पहुंचा होय ।

नारी:- मीता साहब पर गोरखनाथ जी के बचन वाणी का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। दोनों के मतों में अत्यधिक समानता है । विधवा नारी को तपस्या करने से वंचित करते हुए दोनों सन्त कहते हैं कि -

गोरखनाथ:

राह मुवा जती, ठाये भोजन सती धन त्यागी ।
नाथ कहै ये तीनों अभागी ।

मीतादास:

विधवा नारी जिन तप ठाना, तेऊ विरवा होई निदाना
पुरुष न भोगवै जु डर माना, और जलम बहुते मनमाना ।

गोरखनाथ जी पुन: योग के बारे में उपदेश देते हैं कि हे अवधूत मन हमारी गेंद है और सुरति चौगान[1] अनहद को ग्रहण कर मैं खेलने लगा इस प्रकार ब्रह्मरन्ध्र अथवा गगन या शून्य हमारे लिए मैदान बन गया ।

ध्यान-रूप:- भीखा साहब ने भी लगभग इसी प्रकार के वचन वाणी लिखे हैं । वे पाखण्डियों के षाट योग की बहुत ही हंसी उड़ाते हैं और इन बाह्य क्रियाओं पर व्यंग करते हुए कहते हैं कि कोई तीरथ, दान, तप, जोग आदि में लिपटा रहता है कोई अपना कुल परिवार खोकर भूतों जैसा भेष बनाए फिरता है । कोई षटकर्मी उर्ध्व मुख करके पवन का आहार करता है अगले जन्म में वह अवश्य ही अजगर का बेटा बनेगा । कोई रेचक और कुंभक ध्यान करते हैं मरने पर वे बन्दर का ही जन्म लेंगे । कोई मुंह में पट्टी निगलकर आंत को धोता है वह कुत्ता बनेगा । कोई आकाश के शून्य में ध्यान करते हैं वे चील बनेंगे । कोई जलाशयी क्रिया करते हैं वे मछली बनेंगे । कोई धौती-नेती का व्यवहार करते हैं वे रीछ बनेंगे । जो कायाकल्प के चक्कर में पड़ते हैं वे भूत बनेंगे ।[2]

भीखा साहब ने भी गोरखनाथ की भांति योग के बारे में लिखा है कि ज्ञान रूपी तलवार लेकर मन रूपी महल के भीतर प्रवेश करे तथा गर्व को बाहर निकाल देने पर ही निश्चिंत होकर पांचों इन्द्रियों से मनुष्य लड़ सकता है । धैर्य रूपी खम्भे पर ध्यान गड़ाकर क्षमा की चोट से प्रहार करे ।

---

[1] चौगान एक खेल होता है जो घोड़े पर से खेला जाता है ।

[2] कोऊ करै तिरथ कोउ करै दान कोउ तप जोग वेद लपटाना ।
कोऊ कुल खोय फिरै, गभाना, भेष धरै मन भूत समाना ।
कोउ चढ़ावै उर्ध मुख पवना, ते होइहै अजगर केछवना ।।
— --- --- -- --

- ह०लि०ग्रं०,भीखादास, पद संख्या- २००७ ।

इसी प्रकार अमर लोक की प्राप्ति हो सकती है।[1]

मीता साहब पुन: लिखते हैं कि धरनि (पीढ़ा) को बांधकर चन्द्र सूर्य दोनों नासिका रन्ध्रों को रोककर मन रूपी गेंद को बांधकर चौगान खेले। प्रेम की जोति से जोति मिलाकर उस अगम पंथ को कोई वीर ही जा सकता है।[2]

पुन: मीता साहब लिखते हैं कि धरनि को बांधि मूल मां माड़ि कर मदन को ओटि कर जब रातभर जागते हैं तथा हरा घोड़ा लेकर जीन को मुक्त करके जब चित्त को चाबुक बनाकर प्रेम की लगाम लगाकर ऐड़ लगाते हैं तब तत्व को तलवार बनाकर शील को ढाल बनाकर लय और ध्यान (निरति व सुरति) के धनुष बान से क्रोध को मारकर काल को जीत लेते हैं।[3]

संत जयदेव और मीता साहब:

मीता साहब की वचन-वाणियों में जयदेव जी का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। दोनों ने चन्द्र-सूर्य अथवा इड़ा पिंगला नाड़ी द्वारा कुंभक-रेचक क्रिया का वर्णन किया है। दोनों ने मन की चंचलता को त्यागकर उसे स्थिर करने की आवश्यकता पर बल दिया है। दोनों प्राण वायु रूपी जल को परमात्मा रूपी सागर के जल में लीन कर देने को ही ब्रह्म और जीव का

---

[1] ज्ञान खड्ग लै धसै मइलका ------------ ।
-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या-६२४ ।

[2] धरनि को बाधि कै, सूर शशि बाँधि कै -------
-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या-१३८५ ।

[3] धरनि को बाधि मूल मा माड़ि --------
-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या १०४६ ।

मिलन कहते हैं ।

संत जयदेव:

चंदसत भेदिया, नादसत, पूरिआ, सूरसत साक्सात तु कीआ
-- -- -- --
अब निरवाणु लिवतीणा, पास्या

-गीतगोविन्द,१।२

मीता साहब:

रवि शशि दोनों समके राखे, सोई सुमेरु समाना रे ।
+ + +
चांद, सूरजबीच अतरा, करे हंसा केलि ।
इड़ा, पींगला, फनारि कै, लै लागि जोरि ।।
एक बरत एकादशी रे मन चंचल कधीर ।
+ + +
पांच सखिया संग लिन्ही, निरति कै तहां मिल गई ।
कुंभ का जल नाय सागर, सुमति लै बाढ़ी भरी ।

संत वेणी और मीता साहब:

मीता साहब ने वेणी साहब को अपना गुरु स्वीकार किया है लेकिन वे बेनी साहब कौन थे यह तर्क का विषय है लेकिन संत वेणी (१६२०-१६६३) का मीता साहब की वचन-वाणी पर स्पष्ट प्रभाव पड़ा है । वेणी साहब और मीता साहब दोनों यह स्वीकार करते हैं कि ईश्वर का वही स्थान है जहां अनहत नाद सुनाई देता है । जहां पर सूर्य और चन्द्रमा का अस्तित्व संभव नहीं है । न तो वहां पर पवन है और न पानी । वहां निरन्तर गगन मण्डल से अमृत रस का स्राव होता रहता है ।

संत वेणी:

संत हु तहां निरंजन रामु है, गुरगमि वीन्है विरला कोई

+ + +

देव स्थाने किआ नीसाणी, तहां बाजे सबद अनहद बाणी

+ + +

भेटै तासु परम गुरदेऊ

-आदि ग्रंथ, पदसंख्या-२, गुरू अर्जुन देव द्वारा संग्रहित

भीखा साहब:

झलक झलकै कोटि रवि शशि, सूरज चंदा तह नहीं

+ + +

पाति कोटिन वेद झारि लागी, अभय उचिया जानी ।
अगम अगोचर तहां की बानी, जहां पवन नापानी ।।

संत नामदेव और भीखादास:

संत नामदेव जी का भीखा साहब पर इतना व्यापक प्रभाव पड़ा कि उन्होंने अपने वचन-वाणी में जगह-जगह उनका उदाहरण देकर भक्ति-सिद्धान्तों को पुष्ट किया है । भीखा साहब अनेक भक्ति सिद्धान्तों पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि -

` नामा के हित मन्दिल फेरा, गैया धरी जियाय`

अत: भीखा साहब के ऊपर संत नामदेव जी के भक्ति, दर्शन, विचारों को स्पष्ट प्रभाव से नकारा नहीं जा सकता है ।

संत नामदेव और मीता साहब दोनों की यौगिक क्षेत्र में उपलब्धियां समान है । दोनों संत गगन मण्डल में अनाहत नाद बिना विद्युत के सुनते हैं , बिना सावन के आकाश में बादलों का घनघोर गर्जन उनको सुनाई देता है । बिना बादल के चारो ओर वर्षा होती है । योग की इन तात्विक बातों को विरले ही जान सकते हैं ।

संत नामदेव:

अणभडि आ मदनु जानै, बिन सावण घनहरु बानै ।
बादल बिनु बरखा होई, जउ ततु बिचारै कोई ।।

-आदिग्रंथ, पदसंख्या-१
(गुरु अर्जुन देव द्वारा संग्रहित)

मीतादास:

सखि एक देखा अजब तमाशा अगम पंथ जब तका ।
बिनु बादर बहु दामिनी, दमकै, बिनु बरखा सर बाढ़ा ।।
बात अग्नि पर साखा बाढ़ी , बिन बारि फल लागा ।

संत नामदेव और मीता साहब दोनों अपने इष्ट के प्रति अनन्य प्रेम का संकेत देते हैं । जहां मीता साहब अपने प्रेम को तिरिया के रूप प्रेम एवं कामी के काम के प्रति प्रेम लिप्सा के उदाहरण से पुष्टि करते हैं वहीं संत नामदेव जी परनारी से विषय प्रेम एवं प्रेम-भावना से अपने ईश्वर प्रेम को स्पष्ट करते हैं -

मीता साहब:

तिरिया चाहै रूप का रे, कामी चाहै काम ।
लोभी चाहै दाम कारे, हम चाहै सतिनाम ।।

संत नामदेव:

मोही लागती तावाबेली, बछरे बिनु गाइ अकेली ।

+ + +

जैसे तापसे निसन कामा, तैसे राम नाम बिनु बादरो नामा ।

-आदि ग्रंथ, पदसंख्या-२०
(गुरु अर्जुन देव द्वारा संग्रहित)

स्वामी रामानन्द और मीतादास:

मीता साहब के ऊपर स्वामी रामानन्द के वचन-वाणी का भी स्पष्ट प्रभाव पड़ा है । रामनंद और मीता साहब दोनों संतोष रूपी म्यान से ज्ञान रूपी खड्ग लेकर काल से युद्ध करने के लिए गगन मण्डल में चढ़ते हैं । गगन मण्डल में वे निरति के कमान से लेकर सुरति के बान से क्रोध को मार डालते हैं लेकिन काल, क्रोध से कहीं अधिक शक्तिशाली है वह कुछ समय तक उनसे युद्ध करता है लेकिन अन्ततोगत्वा वे उसे भी पराजित कर भस्म कर देते हैं जिससे उन्हें अमर पद की प्राप्ति होती है । शब्दों के भेद जानने पर ही अमरत्व की प्राप्ति होती है ।

स्वामी रामानंद:

निद्रा काल को ग्यानं संतोष ग्यां क मसकाला ।
सुरति निरति का तीर कृभि बारी का रीता ।।

+ + +

कहि रामानंद सबद सवाया, और सबे घट रीता ।
जो जाने सबद का भेद । आपै करता आपे देव ।।

मीता साहब:

ज्ञान का बरग के, सील का सेल ले काल को मारि
बढ़ि गगन धावे ।

+ + +

तत् बरग किया, सील का सेला किया ।

निरति कमान ले सुरति के बान सो, क्रोध मारा
अमर पद पाये ।

+ + +

शब्द का विचार लिया, पांचों मार मन का -----

स्वामी रामानंद जी एवं मीता साहब दोनों गुरु के महत्व को समानरूप से संपादित करते हैं । भक्त के लिए गुरु की आवश्यकता अपरिहार्य है । बिना गुरु ज्ञान से जीव अपने अभीष्ट लक्ष्य को नहीं प्राप्त कर सकता है । गुरु रूपी केवट के ज्ञान रूपी नाव से ही जीव अथाह भवसागर के दुसह दुख से छुटकारा पा सकता है । दोनों गुरु प्रेम की आवश्यकता पर बल देते हैं ।

संत रामानंद:

(स्वामी जी) सतगुरु मिले तो दरसन सांचा नाहीं त
पद काणां ।
नाव है पण केवट नाहीं किस विधि पार उतरणां ।।

मीता साहब:

पार पार सठ कहत है, मझे वार न पार ।
नदी नहीं नइया नहीं, कहां तन जायो पार ।।
सतगुरु केवट संग लें, अथवा देहें धसाये ।
कह मीता सब्जे तरे, या बिधि पारे जाय ।।

+ + +

दोनों संत कवि हिन्दुओं के तीर्थ, व्रत, दर्शन एवं मुसलमानों के रोजा, नेवाज आदि कर्मों को ईश्वर की प्राप्ति का साधन नहीं मानते हैं वे मन में ही ईश्वर को खोजते हैं ।

रामानंद:

> एकादशी हरि हिन्दू मुल्या, मुसलमान धरि रोजा ।

मीरादास:

> तीरथ व्रत तरेना कोई ना सुनि वेद पुरान ।
>
> + + +
>
> एक व्रत एकादशी रे मन चंचल कर धीर ।
>
> + + +
>
> मिया मनु आए हाथ नहीं है, का भये वेत कहे हे ।
> रोजा रहे नेवाज गुजारे, हरी दीदार नहीं है ।।

संत सेन नाई और मीरा साहब:

मीरा साहब ने अपने वाणी वचनों में संत सेन नाई की उत्कृष्ट भक्ति एवं कर्तव्य परायणता का स्पष्ट उल्लेख किया है । मीरा साहब कहते हैं कि सेन नाई एक राजा के यहां उनके हाथ पैर दबाने की सेवा में रत थे, एक दिन किसी कारणवश वे राजा की सेवा में उपस्थित न हो सके । भगवान् अपने भक्त की होने वाली हानि को समझकर स्वयं सेन नाई का वेश बनाकर उसके दैनिक कार्य को सम्पन्न किया । दूसरे दिन राजा से अपनी अनुपस्थिति की क्षमा मांगने पर राजा को उसकी उत्कृष्ट भगवान भक्ति का पता चला । अत: मीरा साहब के ऊपर सेन नाई के वाणी वचनों का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है ।

मीता साहब और सेन नाई दोनों ब्रह्म और निरंजन में कोई भेद नहीं मानते हैं । वे ब्रह्म को पूर्ण, परमानंद एवं अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक के रूप में स्वीकार करते हैं ।

मीतादास:

आदि जोति और देव निरंजन पारब्रह्म एक अहि ।
अविनाशी ना बिनसै, होई, बिनसै काया सो नहि होई
रामचन्द्र कान्हा, कोटिन होई, परमपुरुष तो एकु होई
जो हरि छाड़ि, और का ध्याई, सो नह निश्चय नाकै
जाई ।।

+ + +

सीस देई फिरि राम दुहाई, और देव की आसन राखौं
और वृक्ष की छाँ ।
अजर अमर है साहब मेरा, बिनस न कबहु जाई ।
जो बिनसै सो मानुष देही, ना मनु भरम भुलाई ।।

सेन नाई:

धूप दीप घ्रित साजि आरती, बारने जाऊं कमलापती

+ + +

मदन मूरति, भैहारि गोविंदे, सैण भणै भनु परमानंदे ।

-आदिग्रंथ, पदसंख्या-२३।२४।२५।२६ ।

संत कबीर दास और मीतादास:

संत कबीरदास जी के वचन-वाणी का मीता साहब के ऊपर व्यापक प्रभाव पड़ा है । कबीरदास जी के वाणी वचनों में पाखण्डियों द्वारा मिलाए गये वाणी वचनों को छोड़कर शेष वाणी वचनों के एक-एक शब्द का स्पष्ट प्रभाव मीता साहब पर पड़ा है । मीता साहब कहते हैं कि -

जो काशी कह गया जुलाहा, सो तो है टकसारी ।
भीता वाकी थाप देत है, जो पहुंचा दरबारी ।।
भीता के मारग चले, कबीर सरीखा होय ।
भीत कबीरा एक है, कहबे के है दोय ।।
कबीरा खोजा सरीर का, भीत बताना सोय ।
जो हमरे मारग चले, कबीर सरीखा होय ।।

भीता साहब और कबीरदास जी दोनों सन्त गुरु की महिमा को अपारम्पार बताते है । बिना गुरु के ज्ञान का होना दुर्लभ है । यह संसार रूपी पतंगे माया रूपी दीपक में अज्ञानता के कारण मरते व जलते रहते हैं । केवल कोई-कोई जीव ही इस माया से छुटकारा पा पाते हैं[1] । कबीरदास जी कहते हैं कि बिना सच्चे गुरु के ज्ञान दुर्लभ है अपरिपक्व गुरु और शिष्य संसार सागर में वैसे ही डूब जाते हैं जैसे पत्थर की नाव पर चढ़कर पार उतरने का स्वप्न देखने वाले यात्री[2] । जिस मूर्ख व्यक्ति का गुरु मूर्ख हो उसे सच्चाई का ज्ञान नहीं है वे दोनों पतन और विनाश के गहरे गर्त में गिरकर अन्तोगत्वा सिसकिया भरते हैं[3] ।

भीता साहब पर कबीरदास की गुरु भक्ति का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है । भीता साहब गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि सारे लोकों के लोग माया के परपंच से दुखी है उन्हें शान्ति नहीं मिल पा रही है । केवल गुरु के योग की दीक्षा से जीवों को इस दुसह दुख से छुटकारा मिल सकता है । वे गुरु के द्वारा ही अमरत्व को प्राप्त कर सकते हैं[4] ।

---

[1] कबीर ग्रंथावली, पद संख्या-२० ।

[2] वही, पदसंख्या-१६ ।

[3] वही, पद संख्या- १५ ।

[4] चौदहपुर भवसागर बसे ते दुखिया लोग ।, कबीर ग्रंथावली, पदसंख्या-८ ।

बिना सतगुरु के राम परब्रह्म की उपलब्धि सम्भव नहीं है । जो व्यक्ति बिना गुरु के ईश्वर को प्राप्त करना चाहता है वह दिवा-स्वप्न देखता है । उसका मनतत्व पूरा न हो सकेगा उसे अपमान का भागी बनना पड़ेगा । सतगुरु से छल-कपट करने वाले को नरक का भागी बनना पड़ता है क्योंकि गुरु से कपट और चोरी महा पाप है जिसका कहीं निदान नहीं।[1] सच्चे गुरु को प्राप्त कर योग के मार्ग पर अग्रसर होना और केवल कान फुकाकर गुरुमुख हो जाने में बड़ा अन्तर है । वे सभी व्यक्ति दुःख और बुराइयों से भरे पड़े हैं जिनको राम का दर्शन नहीं हो पाता । उनका इस संसार में जन्म लेने का कोई कारण सिद्ध नहीं होता है।[2]

बिना सतगुरु की दीक्षा के मन चारों ओर ईश्वर को खोजता फिरता है और उसे निराशा ही हाथ लगती है । ईश्वर रूपी हीरा तो मन के मन्दिर में ही विराजमान रहता है । उसे बाहर ढूढ़ना मूर्खता है । बिना सतगुरु अन्ततोगत्वा निराशाजनक परिणाम ही हाथ लगता है।[3]

इस भ्रममय संसार में सच्चे गुरु को पहचानना बहुत कठिन कार्य है क्योंकि शरीर के षट्चक्रों को भेदकर ब्रह्म से साक्षात्कार करने वाले गुरु विरले ही है जबकि आडम्बर रखने वाले करोड़ों हैं । वे ही सच्चे गुरु कहलाने के योग्य हैं जो दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों प्रकार की तापों से मुक्त है । इन तापों के कष्टों से वे परे हैं।[4]

---

[1] सतगुरु बिनु रामैं चहै, मुख में परिहै छारि ।, ह०लि०ग्रं०, मीतादास

[2] साकत सबै कहावइ जिन्है मिले नहीं राम, ह०लि०ग्रं०, मीतादास पदसंख्या- ६७ ।

[3] हरि हीरा हरदे बसे का खोजे बड़ी दूर, ह०लि०ग्रं०, मीतादास पद संख्या-१२ ।

[4] भेरी गुरु विरले हवे, अभेदि है कोटि, पदसंख्या-६३ ।

सच्चे गुरु को सांसारिकता की चिन्ता नहीं व्यापती न तो वे कभी रोग-ग्रस्त रहते हैं। वे अपने जीवन में योग परक तत्वों के इतने ज्ञानी हो जाते हैं कि शरीर छूटते ही वे प्रसन्न मुद्रा में परब्रह्म के लोक को प्रस्थान करते हैं।[1]

संत कबीरदास जी की भांति भीखा साहब भी ईश्वर के सामीप्य में जाकर अपने आपको मृत्यु से सुरक्षित पाते हैं। कबीरदास जी कहते हैं कि जिसने राम को नहीं जाना वह मर गया। मैंने तो राम को समझ लिया अब मुझको मृत्यु मार नहीं सकती क्योंकि मुझे जिलाने वाला मेरा संरक्षण कर रहा है।[2] भीखा साहब भी उन्हीं के मार्ग का अनुसरण करते हुए कहते हैं कि ईश्वर के सामीप्य ने मुझे यम की बाधा से मुक्त कर दिया। हम ईश्वर के देश के निवासी बन गये। परम ब्रह्म ही जीव को अभय प्रदान करता है।

अब मैं पाये राम समीपी, प्रिति भली तिन्ही।
जाकी प्रित कटी जम बाधा, जग मां बाजी जीती ।।
-भीखादास, पदसंख्या- ९८

भीखा साहब कबीर दास जी की भांति जीव हिंसा का भी विरोध किया है। जहां एक ओर कबीरदास जी सभी जीवों में ईश्वर का निवास बताते हुए हिंसा का विरोध करते हैं। वहीं भीखा साहब हिंसा को ईश्वरी इच्छा के विरुद्ध मानते हैं।

भीखा साहब कहते हैं कि वही दरवेश है वही भक्त है जो जीवों पर दया रखता है। जीवों को मारकर आहार करने वाला तो कसाई कहलाने का पात्र है, दरवेश नहीं है। जो दूसरे के कष्ट से स्वयं पीड़ित हो जाय।

---

[1] फिकिर न व्यापे, जुर नहीं आवे ---, कबीर ग्रंथावली, पदसंख्या-६४।

हम मैन मीहिमारिहे संसार --------, ह०लि०पो०,भीखादास पद संख्या-४३।

[2] मुलां कहि स्यो न्याव खुदाई ----, कबीर ग्रंथावली, पदसंख्या- ६२

ऐमुल्ला तुम जो बकरी को काटकर उसके अन्त समय की आवाज हक्क-हक्क को खुदा का हक्क-हक्क समझकर बध करते हो वह उसकी इच्छा के विपरीत है जैसा तुमको मारते समय दर्द होता है वैसा हर जीव को पीड़ा होती है । जब खुदा अन्त समय में तुम्हारे इस कुकर्म का न्याय करेगा तब तुम्हे कोई तुम्हारे इस दुष्कर्म के पाप से बचाने वाला न मिलेगा । तुम मन रूपी मस्जिद में हज करो तथा जीव पर दया करो तभी तुम्हारा कल्याण है ।

मियाजी सो दरवेश कहावै, जो जीव पर चोट न लावै । (१०५)

मीता साहब और कबीरदास जी दोनों हिन्दुओं के परब्रह्म राम और मुसलमानों के इष्ट खुदा दोनों को एक मानते हैं[१]। कबीरदास जी इस विषय पर स्पष्ट रूप से अपना मत देते हुए कहते हैं कि हमारे लिए रामऔर रहीम, करीम और केशव, अल्लाह और राम वही एक ही सत्य है । विस्मिल्ला के स्थान पर विश्वम्भर कहना एक ही बात है ।

मीता साहब भी कबीर के अद्वैतमत को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि राम या अल्लाह किसी को ईश्वर नामरूप में भेद नहीं है । सच्ची भक्ति से जीव भवसागर से पार उतर सकता है । अठारहो वर्गों और दसो अवतार सब असत्य है । सबका परब्रह्म एक ही अलख निरंजन है । चाहे आप उसे किसी नाम से पुकारे । पांच तत्व से निर्मित सारे शरीरों में एक ही ईश्वर व्याप्त है दस बीस नहीं । हिन्दु और मुसलमानों के भिन्न भिन्न कहे जाने वाले इष्ट क्रमशः राम और रहीम नहीं है । वे दोनों एक ही है । भिन्नता केवल कर्मों का अलग-अलग विचार है जहां पर कुमति है वहां क्षुद्रता है जहां सुमति है वहां ब्राह्मणत्व है ।

का बरनिक है, राम भक्ति करू जीव तरै ।
बरन अठारह और दस बीस, एकुई हतै और सब झूठ ।।

---

[१]हमारे राम रहीम करीमा के सो, अलह राम सति सोई ।, कबीर ग्रंथावली, पद संख्या- ५८ ।

संत पीपा और मीतादास:

मीता साहब ने संत पीपा का स्वयं उल्लेख किया है । मीता साहब एक पद में कहते हैं कि रामानंद जी ने शिष्य पीपा को चारो क्षेत्र की तीर्थ यात्रा का उपदेश देकर भ्रम में डाल दिया । द्वारिका पुरी में स्नान करते समय माया से उनको अपने भ्रम की वास्तविकता का पता चला वे तुरन्त आकर रामानंद को धिक्कारते हुये कबीर के पैरों पर गिरकर उनको अपना गुरु स्वीकार कर उनसे दीक्षा ली । अतः मीता साहब के ऊपर पीपा जी का प्रभाव पड़ना अपरिहार्य है ।

पीपा जी एवं संतमीता साहब दोनों इस ब्रह्माण्ड में प्राप्य चारो कोटि के प्राणियों का निर्माण पंच तत्व से मानते हैं । जीव का शरीर और कुछ नहीं अपितु ब्रह्माण्ड का सूक्ष्म रूप ही है । ये सभी नाशवान हैं केवल परम तत्वरूपी परब्रह्म ही ऐसा है जो ब्रह्माण्ड से भिन्न है । उसकाज्ञान गुरु की सहायता से ही सम्भव है ।

संत पीपा:

> कायउं देवा, काइअउ देवल, काइअ जंगम जाही ।
> \+ \+ -+
> पीपा प्रणवै, परम ततु है, सतगुरु होइ लखावै ।
>
> -आदि ग्रंथ, पद संख्या-३७।३८
> (गुरु अर्जुन सिंह द्वारा संपादित)

मीता साहब:

> बरन दूसरा है नहीं, पण्डित करो विचार ।
> पांच तत्व से सब बना, सब में सिरजनहार ।।
> पांच तत्व और ब्रह्म ते नर नारी दोउ कीन्ह ।
> मीता दोनो एक से, वै आतम लवलीन्ह ।।

संत रैदास एवं मीतादास:

मीता साहब ने अपने वाणी बचनों में रैदास जी को ईश्वर के परम भक्त के रूप में स्वीकार किया है । अपने बचन-वाणी के माध्यम से मीता साहब ने ब्राह्मण और रैदास जी के विवाद का बहुत ही स्पष्ट चित्र अंकित किया है जिसमें राजा दोनों के विवाद को समाप्त करने के लिए दोनों की पत्थर की मूर्तियों को गंगा में फेंक देते हैं लेकिन सच्चे भक्त रैदास जी की मूर्ति पानी से बाहर आती है । मीता साहब पर सन्त रैदास जी के प्रभाव से नकारा नहीं जा सकता है । संत मीता साहब और रैदास दोनों भक्त कर शरीर को हाड़,मांस, मज्जा आदि से निर्मित मानते हैं । यह नश्वर, क्षणिक अनित्य है । यह मरने के बाद दाग में ही भस्म की ढेरी बन जाती है ।

रैदास जी :

जल की भीति पवन के थंभा, रक्त ब्रह्म का गारा ।
हाड मांस नाड़ी को पिंजर, पंछी बसै बिचारा ।।
-आदिग्रंथ, पदसंख्या-४१

मीता साहब:

काया सुन्दर बहु बनी , मिलि सुलदानि नारि ।
घर बाहर लक्ष्मी भरी , बिना भगति संभारि ।।
पांच तत्व और ब्रह्म ते, नर नारी दोउ कीन्ह ।
संतन के दोउ एक ते, जे आतम लवलीन ।।
पांच तत्व से सब बना, सब में सरजनहार ।
कहां अठारह बीस है कह मुरुष सो ग्यान ।।
जीव ब्रह्म का जब मिले, सो जन ब्राह्मण होय ।
कोके ब्राह्मण झूठ है, भूले है जग लोय ।।

संत रविदास और मीतादास:

मीता साहब और संत रविदास दोनों संत ईश्वर को अपने मन के अन्दर ही खोजने का उपदेश देते हैं क्योंकि उसकी स्थिति बाहर सम्भव नहीं है। जिस जीव को आतम राम का बोध हो जाता है उसको क्रोध, लोभ, मोह रूपी नारक के तत्वों से मुक्ति हो जाती है। इस विषय पर संत रविदास एवं संत मीता साहब का बहुत ही स्पष्ट मत दिखाई देता है।

संत रविदास:

हरि हीरा छाड़ि कै, करै आन की आस।
ते नर जमपुर जाहिंगे, सत भाखै रैदास।।

-आदि ग्रंथ, पद संख्या-४४।

मीता साहब:

हरि हीरा हृदे बसै, का खोजे बड़ी दूर।
कहे मीता, सतगुरु बिना, मुंह में पारिहै धूर।।
हीरा काया भीतर, संगत करै सो लेय।
कहै मीता, बन का फिरै, वन में विरले होय।।

संत कमाल और मीतादास:

मीता साहब के वाणी वचनों पर संत कमाल जी का भी कम प्रभाव नहीं है। मीता साहब और संत कमाल जी दोनों कनक, कामिनी, अहं प्रवृत्ति को ईश्वर की राह में बाधक मानते हैं। देश विदेशों में तीर्थ, व्रत भी ईश्वर की प्राप्ति में सहायक नहीं है।

मीता साहब:

मन एकुई में सो फंस रहा कोई नारि कोउ दाम ।
पूजा कहवां पाहर जोन मिलावे राम ।।
तीरथ बरत तरै ना कोई, ना धुनि वेद पुरान ।
कह मीता बिनु संत संगति के, जमपुर होइ पयान ।।
अभिमानी सब बुडिहैं नाक बुलबुला देय ।
+ + +

संत कमाल :

राम धुमारी, राम खुमारी, राम धुमारी भाई
कनक कांता तज कर लाण, आपनी बादशाही ।।

(संत काव्यधारा, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी)

संत नानकदेव और मीतादास:

सिक्खो के आदि गुरु संत नानक साहब की वचन वाणियों का भी मीता साहब पर बहुत व्यापक प्रभाव पड़ा है । दोनों बाहरी ठाट कर्मों, कथा, पूजा, भस्म लगाना, छापा तिलक लगाना, अजपा जाप (मौन व्रत) आदि का विरोध करते हैं ।

संत नानक देव:

जोग न खिथा जोगु न डंडै, जोग न भसम चढ़ाइ जे ।
जोगु न मुंदी मुंडि मुड़ाइ अे, जोगु न सिंगी वाइ अे ।।

- गुरु ग्रंथ साहब-

मीतादास:

भरम गढ़ तोरि हम डारा, ले ज्ञान का साड़ा ।
+ + +
भरम छाप तिलक कंठी, भरम जप माला ।

संत धर्मदास और मीतादास:

संत धर्मदास और मीता साहब दोनों पाप-पुण्य के कर्मों को मुक्ति के मार्ग में बाधक मानते हैं। कर्मों को जलाकर नष्ट करने से ही मुक्ति की प्राप्ति संभव है। प्रियतम ईश्वर के वियोग व्याप्त हो जाने पर ही ममता, मोह, लोभ, मोह का विनाश सम्भव है।

संत धर्मदास:

मोरे पिया मिले संत ज्ञानी ।
ऐसन पिय हम कबहुं न देखा, देखत सुरत लुभानी ।।
-संतकाव्य धारा, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी

मीता साहब:

जब मीत बन सीचिंया, बन में लगी दवारि ।
कर्म नरे जीव उबरा, साधो करो विचारि ।।
हरि वियोग जब व्यापई, तब ममिता मर जाय ।
ममता मारे मन मिले, मन हरि देय मिलाय ।।

संत मीता साहब धर्मदास जी दोनों राम नाम धन को अपनी पूंजी मानकर उसका व्यापार करते हैं। संसार की दृष्टि में उनका व्यापार घाटे का होता है। लेकिन वे कहते हैं कि नहीं, हमारा व्यापार घाटे का नहीं है। इस राम-नाम के व्यापार से हमको बहुत ही लाभ हुआ है। हमारी पूंजी बहुत बढ़ गयी है। भक्तों के बाजार में हमारे धनी होने की साख बढ़ी है क्योंकि सांसारिक पूंजी से व्यय करने वालों की तरह अब यम का भय हमें नहीं रहा।

धर्मदास जी:

हम सतनाम के वैपारी,
कोई कोई लादे कासा पीतल, कोई कोई लोंग सुपारी
-सन्त काव्य धारा, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी

मीता साहब:

नाम धन पूंजी हमरे आयी, सुनि हे साधो भाई ।
राम शाह तेहि नाच नचावे, जिन्ही बड़ी सहाई ।।

संत बीरु और मीतादास:

मीतादास के ऊपर संत बीरु साहब की साधना पद्धति का भी स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है । दोनों त्रिकुटी (इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना के संधी स्थल) पर परब्रह्म की स्थिति स्वीकार करते हैं । इड़ा, पिंगला के नाद में लीन हो जाने पर ही अनाहत नाद की ध्वनि सुनाई देती है । इस अनाहत नाद के परिपूर्ण नाद को छोड़कर ईश्वर की अन्तिम सुरति साधना में लीन हो जाने पर ही प्रियतम (ईश्वर)का दर्शन संभव है ।

संत बीरु :

त्रिकुटी के तीर तीर बांसुरी बजावे लाल,
माल लाल से सबै सुरंग रूप चातुरी ।

-संत काव्यधारा, आ० परशुराम चतुर्वेदी

मीतादास:

मूल ठौर मन लाव्या, बंध धाम मा दीन ।
त्रिकुटी तरवर भेटिया, मीता भाठे लीन ।।
+ + +
आनंद मंगल गाव्या, पाये पै नाह ।
लगन निरंजन सोधिया, मूले लिखि पाति ।।

संत गरीबदास और मीतादास:

संत दादू दयाल के प्रधान शिष्य गरीबदास जी की बचन-वाणी का भी मीता साहब पर प्रभाव पड़ा है। दोनों ईश्वर प्राप्ति के लिए शारीरिक शोधन की आवश्यकता पर बल देते हैं। श्वास की अर्ध्व प्राप्ति का उल्टा करके उर्ध्व रूप में संचालन से मन की २५ लिप्साओं को वश में करके चन्द्र और सूर्य को स्थिर (सम) करके अनाहत नाद को सुनना ही येयोग की सीढ़ियों के रूप में स्वीकार करते हैं। सतोगुण, तमोगुण एवं रजोगुण तीनों को चौथे (ईश्वर) के अष्ट दल कमल में स्थित कर देने से सुरति का निरति में विलय प्रक्रिया को स्वीकार करते हैं। तभी ईश्वर प्रदत्त निर्मल ज्ञान की उपलब्धि सम्भव है।

संत गरीबदास:

तन खोजे तब पावे रे ---
उलटी चाल चले जे प्राणी, सो सहज घर आवे रे।
-गरीबदास की वाणी, एक संकलन।

मीतादास:

रूप अनूप महबूब का काया धारी नाय।
तन सोधे सो पाइया, सतगुरु दैई बताय।।

तुलसीदास, सूरदास तथा मीतादास:

यद्यपि मीतादास जी तुलसी और सूर की बहुत ही कटु आलोचना किया है। उनकी कविताओं को सेमर के फूल के समान क्षणिक प्रभावोत्पादकता की संज्ञा दी है,[1] उनकी कवितायें केवल भलाई करने में असमर्थ हैं फिर भी

---

[1] तुलसी सूर की कविताई, जो सेमर का फूल।
गंध ना लागे बास न आवे, और हृदय का सूल।। मीतादास

तुलसी सूर की कविताओं का उनपर बहुत ही प्रभाव पड़ा है[१]।

तुलसीदास का प्रभाव:

मीतादास जी तुलसीदास जी की भांति[२] भगवान् अर्थात् सतनाम को प्रिय मानते हैं[३]। जहां एक ओर तुलसीदास शून्य की दीवार पर ब्रह्म चित्रकार द्वारा तीनों गुण से निर्मित चित्र को साधारण बुद्धि से परे मानते हैं[४] वहीं दूसरी ओर मीतादास जी संसार की दुरूह नदी में माया मोह रूपी घड़ियाल से घिरे त्रस्त जीव की निरुपाय दशा का रूपकात्मक चित्र प्रस्तुत करते हैं[५]।

सूरदास और मीतादास:

सूरदास जी की भांति[६] मीतादास जी ने भक्ति के मार्ग में दुष्टों को बाधक बताया है। दुष्टों के संग रहने से भजन-भाव में बाधा पड़ती है[७]।

---

[१] तुलसी सूरा की कविताई, भोदुन का अधिकारी ।
सुज्जन है ते नालिश करी करिहैं, मीता करी विचारी ।
-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या-३५३ ।

[२] कामहि नारि पियारी जिमि, लोभी को जिमि दाम ।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागे मोहि राम ।। -तुलसीदास

[३] तिरिया चाहे रूप का रे, कामी चाहे काम ।
लोभी चाहे दाम कारे, हम चाहे सतिनाम ।। - मीतादास, १२८२

[४] केशव कहिन जाय का कहिये ।
देखत तब रचना विचित्र अति समुझि मन ही मन रहिए
शून्य भिति पर रचा------ तुलसीदास

[५] नदी एक बाढ़ी अगम अपारू, मायरू मोह है कगार ।
काम क्रोध घरियार तहां है वेद हवे रखवार ।। -मीतादास, ८४९ ।

[६] तजि मन हरि विमुखन को संग ।
जाके संग कुबुद्धि उपजत है परत भजन में भंग ।। - सूरदास

[७] हरि विमुखन संग ना बैठि भजन बतरा परै - मीतादास

मूल्यांकन के विभिन्न दृष्टिकोण:

मीता साहब के काव्य का मूल्यांकन विभिन्न दृष्टिकोणों से भी अपनी उपादेयता को सिद्ध करता है । यदि हम भौतिक, आध्यात्मिक और साहित्यिक तीनो दृष्टिकोणों से उनके काव्य को परखने का प्रयास करें तो उनमें एक सामंजस्य स्थापित हुआ सा जान पड़ता है ।

सामान्य स्तर का व्यक्ति भौतिकवादी दृष्टिकोण से मीता साहब के काव्य में भौतिक तत्वों को प्राप्त कर संतुष्ट हो सकता है । अपने श्रृंगारिक रचनाओं में मीता साहब ने ऐसे तत्वों का समावेश किया है जिससे भौतिकता की अस्पष्ट छाया प्रतिबिम्बित की जा सकती है । क्वांरी बाला का गुड़ियों के साथ खेलना एवं विवाहित सखियों से सुहागरात के सेज एवं श्रृंगारिक कार्य कलापों को जानने की उत्सुकता वास्तव में श्रृंगारिक भावनाओं की भौतिकवादी पृष्ठभूमि है । श्रृंगार परक तत्वों का अन्वेषण भौतिकवादी दृष्टिकोण से मीता साहब के काव्य में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है ।[१]

मीतादास जी के साहित्य का आध्यात्मिक पक्ष बहुत व्यापक है । योग के तत्वों की उन्होंने बहुत विशद् रूप में व्याख्या की है । योग में चिर-प्रचलित इड़ा, पींगला, सुषुम्ना नाड़ी के सम्मेलन के दुरूहतम क्रिया कलापों का बहुत सरल ढ़ंग से विवेचन करना ही मीता दास जी के आध्यात्मिक पक्ष का उद्देश्य प्रतीत होता है । आध्यात्मिक दृष्टिकोण से परखने पर मीता साहब का सम्पूर्ण काव्य योग का प्रमुख ग्रंथ जान पड़ता है । उसमें सुरति, निरति अवर गुहा बंकनाड़ी, गगन मण्डल, शून्य मण्डल का जितना व्यापक

---

[१] क्वारी खेलन गुड़ियन पूछे सखियन सो बात ।
गवने जाब तो जानो मैं तो कहत लजात ।।
-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या-३८७

और विस्तृत वर्णन है वह अन्य योग-परक रचना में दुर्लभ है । योग के आध्यात्मिक पक्ष को ध्यान में रखते हुए हठयोग के अपभ्रंश रूप षट्कर्म की आलोचना भीखा साहब ने आध्यात्मिक दृष्टिकोण से काव्य को परखने वालों के लिए एक दिव्य दिशा प्रदान किया है ।

साहित्यिक दृष्टिकोण से दृष्टिपात करने पर भी भीखा साहब का साहित्य अपनी प्रौढ़ता और परिपक्वता को प्रदर्शित करता है । रस, छंद, अलंकारों के उचित सम्मिश्रण के साथ-साथ काव्य के गुण दोषों को ध्यान में रखते हुए योग परक काव्य का सृजन जनवाणी में करना आसान काम नहीं है । भीखादास जी ने शब्द-परिवर्तन, अर्थ-परिवर्तन, शब्द-विस्तार, अर्थ संकोच आदि ध्वनि के नियमों का पालन कर अपनी बचन वाणी को व्याकरण के नियमों से शिथिल होने से बचा लिया है । शैली और भाषा के उचित सम्मिश्रण से उन्होंने ऐसे काव्य का सृजन किया है जो साहित्य क्षेत्र में निश्चय ही एक महत्वपूर्ण स्थान पाने का अधिकारी होगा । अतः यह कहना अत्युक्ति न होगी कि साहित्यिक दृष्टिकोण से परखने पर भीखा साहब की रचना के समक्ष कुछ रचनाएं ही रखी जा सकती हैं ।

भीखा साहब का परवर्ती साहित्य पर प्रभाव:

यद्यपि भीखा साहब के वाणी बचनों का स्पष्ट प्रभाव उनके प्रमुख शिष्यों पर पड़ा है साथ ही उनके बाद के सन्त कवियों पर पड़े उनके प्रभाव को अस्वीकार नहीं किया जा सकता ।

भीखादास और संत गरीबदास:

भीखा साहब और संत गरीबदास दोनों अखण्ड ब्रह्माण्ड नायक के स्थान को ब्रह्मा, विष्णु, महेश के पहुंच के परे बताते हैं । सनक, सनन्दन

और नारदमुनि तथा व्यास भी उनके थाह को पाने में सक्षम नहीं है । नारद मुनि तो केवल झूठी प्रपंच गाथा को सुनाने में ही तल्लीन रहे हैं । ईश्वर का दर्शन केवल सच्चे संतों को सुलभ है ।

मीता साहब:

सनक सनन्दन नारद व्यास, इहे साधु इनहीं दास ।
+ + +
ध्रुव प्रह्लाद नही ये संता मौरध्वज रे भाई ।
नारद मुनि पर पंच में भूले, मुंदि बोल सुनाई ।।
रामचन्द्र नहीं तरे कन्हैया कुढो ना गति पाई ।
शिव ब्रह्मादिक की गति नाही, तरिया सदन कसाई ।।

गरीब दास:

सेस महेश मुख गावें साधो, सेस महेश मुख गावे ।
ब्रह्मा विस्नु महेसर थाके, नारद नाद बजावे ।
सनक सनन्दन ध्यान धरत है, इष्ट मुष्ट नहीं आवे ।
लघु दीरघ कछु कहा न जाई, जो पावे सो लावे ।।

मीता साहब और गरीब दास जी दोनों सुरति को निरति में लीन करके द्वादस कमल दल में स्थित जीव उलटकर अष्ट कमल दल में स्थित ब्रह्म से संयोग करने को ही योग साधना का परम लक्ष्य मानते हैं । जब तक सुरति निरति में लीन नहीं हो जाती तब तक जीव को चौदहों भुवनों के रहस्य का पता नहीं प्राप्त कर सकता ।

मीता साहब:

द्वादस कमल जीव का वासा, अष्ट कवलदल ब्रह्म निवास
जीव ब्रह्म को एकई करई, कह मीता सो प्रानी तरई ।
+ + +
बरनो एक रामकु कहरा, सतगुरु का सिर नायी रे
+ + +

राम मिलाना, सहजं किन्हा, तज पाखण्ड ब्योहारा रे ।

गरीबदास:

> सुरत निरत मन पवन करो एकत्र धार ।
> द्वादस उलट समोय ले, दिल अंदर दीदार ।।

मीतादास और संत तुलसीदास:

मीता साहब का तुलसीदास पर भी स्पष्ट प्रभाव पड़ा है । दोनों ने रेखता (छंद) के माध्यम से योग के गहन तत्वों को सरलतम शब्दों में व्यक्त करने का सफल प्रयास किया है । दोनों बहिर्मुखि साधना को मकड़ी दरिया में प्रवेश कर अन्तर्मुखी साधना पर बल देते हैं । षट चक्रों के विभिन्न कंवल दलों को भेदकर सुरति साधना को प्राप्त करना दोनों का परम लक्ष्य है । पांच इन्द्रियों एवं उनकी पचीस लिप्साओं को वश में करके गगन मण्डल में अनाहद नाद को श्रवण करना एवं सुरति साधना को निरति में लीन करके ईश्वर के निवास पश्चिम द्वार से अष्ट कंवल दल में प्रवेश करके ईश्वर के दर्शन करना ही दोनों संत योग की परम उपलब्धि स्वीकार करते हैं ।

मीता साहब:

> पैठि दरिया दरियाव का भेद ले चक्र: बेधि मिले सुरत थाही । ---- ---- -- बाजा अनहद बाजे अस सो मन लागे अस को भेटि गयी तीन तायी ।

संत तुलसीदास:

> पैठ मन पैठ दरियाव दर आय में ।
> \+ \+ \+
> साहब घर अजब अद्भुत बिराजे ।।

मूल्यांकन की समस्यायें:

मीतादास जी के काव्य का मूल्यांकन उतना आसान नहीं जितना प्राय: नये नये कवि के बारे में सोचा जाता है। कबीर दास जी के लगभग ८०० पद और एक हजार दोहे ही साहित्य जगत में उपलब्ध हो पाये हैं। जबकि मीता साहब के ३,५०० दोहे और २,५०० पद हस्तलिखित रूप में सुरक्षित हैं। पदों और दोहों के माध्यम से संसार की नश्वरता, समाज की यथार्थता का जो चित्र उन्होंने प्रस्तुत किया है वह कबीर दास जी से कम नहीं है। सूरदास जी, तुलसीदास जी के सगुण काव्यों को केवल सेमर के फूल के समान क्षणिक प्रभाव वाली बताकर सगुणोपासना पद्धति को निर्मूल करने का उनका उद्देश्य उनको मूल्यांकन की सीमाओं में रखना जान पड़ता है। यहीं पर मूल्यांकन की विभिन्न समस्यायें आ खड़ी होती हैं। निर्गुण संत शिरोमणि कबीर दास जी से मीता साहब को श्रेष्ठ बताना शताब्दियों की मान्यताओं को ध्वस्त करना है तथा मीतादास जी को कबीर से निम्न स्तर का घोषित करना उनके साथ अन्याय करना होगा। कबीरदास जी एवं मीतादास जी के कार्यों को ध्यान में रखते हुए उन्हें समतुल्य भी नहीं कहा जा सकता। अत: मूल्यांकन के तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में एक प्रमुख समस्या हमारे सामने आ खड़ी होती है जिसका निदान सरल नहीं।

साहित्य में एक अभिनव क्रान्ति:

नाथ सिद्ध मत से प्रारम्भ होकर कबीरदास से होते हुए मीता साहब तक आते-आते निर्गुण संत मत पर वाह्याडम्बर और अंध-विश्वासों की गहरी परत सी चढ़ गयी थी। कबीर के नाम पर अनेक पदों का सृजन कर उनके मूल पदों के संग्रह में मिला दिया गया था जिसमें यह निश्चय कर पाना कठिन था कि कबीर का कौन सा पद वास्तविक है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है कि कबीरदास जी का स्वयं लिखना कि 'साधो

बीजकजिन परमाना` इस बात का द्योतक है । मीता साहब जहां एक ओर अपनेको कबीर पंथगामी स्वीकार करते हैं और कहते हैं कि -

मीता के मारग चलं कबीर सरीका होय ।
मीत कबीरा एक है, कहबे के हं दोय ।।

वहीं दूसरी ओर कबीर पंथ में पाखण्डियों द्वारा भ्रम को निर्मूल करने के कारण उनका तिरस्कार करते हुए कहते हैं कि -

तीन घर चोरी भई, भेषिन किन्ही आय ।
कबीर दादू नानिक, जग का ज्ञान न जाय ।।
जो तीनु के ज्ञान का मान लेहं खबार ।
सो सतगुरु सो बिमुख है मीता करी बिचार ।।

अत: पाखण्डों के भ्रम सागर से कबीर के वास्तविक ज्ञान का चयन उसे अपनी बचन वाणी में प्रस्तुत करना साहित्य क्षेत्र में एक अभिनव क्रान्ति कहना अतिशयोक्ति न होगी । मीता साहब के पूर्ववर्ती किसी सन्त कवि में इतना साहस न था कि वह इस कार्य को पूरा कर सके । मीता साहब का अवतरण साहित्य क्षेत्र में इस प्रयास का एक सफल उदाहरण है । यही कारण है कि कबीर-पंथ की भ्रान्तियों को निर्मूल करने के पश्चात् मीता साहब लोगों को चुनौती देते हुए कहते हैं कि -

कबीर खोजा सरीर का, मीत बताना सोय ।
मीत कबीरा एक हैं, कहवे के हैं दो य ।

मीता साहब के इस कार्य की भविष्यवाणी उनके गुरु द्वारा पहले से ही की गयी थी जो उनके इस कार्य पर एक और मुहर लगा देती है । मीता साहब की बचन-वाणी को पढ़ने से कबीरदास जी के बारे में प्रचलित बहुत सी मान्यताएं स्वत: ही स्पष्ट हो जाती हैं ।

पत्नी विषयक भ्रम :

कबीरदास जी की काव्य में पाखण्डियों ने ऐसे भ्रामक पदों का सम्मिश्रण कर दिया जिसके आधार पर कुछ तो भ्रमवश कुछ अतिशयोक्ति रूप में मान्यताएं स्थापित हुई। पदों में `लोई` नामक शब्द आ जाने के कारण उसका सम्बन्ध कबीरदास जी से जोड़ा गया।[1] `लोई` को कबीर की पत्नी के रूप में स्वीकार किया गया।[2] प्रसिद्ध आलोचक डा० रामकुमार वर्मा ने अंत:साक्ष्य के आधार पर `लोई` और `धनिया` नामक दो पत्नियों को स्वीकार किया है।[3] धनिया को रमजनियां के नाम से पुकारा जाता था। वे लोई को कुरूप और रमजनियां को सुन्दरी सुलक्षणा मानते हैं। डा० सरनाम सिंह शर्मा जी भी डा० रामकुमार वर्मा के मत की पुष्टि कबीर ग्रंथावली के पद संख्या २२६ के अनुसार मानते हैं।[4] वास्तव में उपरोक्त पद में जिस पत्नियों को कबीर की पत्नी के रूप में स्वीकार किया गया है। वे `लोई` और `धनिया` नहीं हैं वरन् `कुमिता` और `सुमिता` हैं। कुबुद्धि (कुमिता) के कारण जीव भगवद् भक्ति की ओर प्रेरित नहीं हो पाता क्योंकि यह मन को ऐन्द्रिय सुख में रमाये रहती है। इसके द्वारा जीव शरीर की आकांक्षाओं की पूर्ति में लगा रहता है। इसके द्वारा जीव शरीर की आकांक्षाओं की पूर्ति में लगा रहता है। इसके द्वारा शरीर का विधिवत भरण पोषण होता है। यही कारण है कि कबीरदास जी ने इसे कुलवंती की संज्ञा

---

[1] टूटा ज्ञान कबीर का हो, सोई लोई कहाय।
कह बैनी अस होयगा, तुहि कथनी देई बहाय हो।

[2] डा० सरनाम सिंह शर्मा, कबीर व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धान्त, पृष्ठ-२८।

[3] डा० रामकुमार वर्मा, संत कबीर - प्रस्तावना, पृष्ठ-७२।

[4] डा० सरनाम सिंह शर्मा, कबीर व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त, पृष्ठ-२९।

दी है। दूसरी सुमिता है। सुमिता के कारण जीव शरीर के व्यापार को छोड़ भगवद् भक्ति की ओर अग्रसर होता है जिससे जीव अपने ऐन्द्रिय सुख से वंचित हो जाता है। यह शरीर के विभिन्न अंगों के सुख से जीव को विरक्त कर देती है जिसके परिणामस्वरूप शरीर रूपी गृह के सदस्यों को उनके अनुरूप भोज्य नहीं मिल पाता है। अत: यह कुल (शरीर) को बरबाद करने वाली होती हैं लेकिन जीव के लिए यही परमप्रिय है। इसकी एक बड़ी विशेषता होती है कि इसके घर (शरीर) में आते ही कुलवती कुबुद्धि की मृत्यु (समाप्ति) हो जाती है।[१] वास्तव में इस पद में आये हुए, सास-ससुर, ननद, जेठ, देवर सभी शरीर के विभिन्न अंगों के प्रतीक स्वरूप हैं। दूसरी पत्नी रमधनिया के आने पर लोई का मर जाना वास्तव में और कुछ नहीं बल्कि सुबुद्धि के आगमन से कुबुद्धि की समाप्ति का परिचायक है। डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित, डा० सावित्री शुक्ला तथा डा० राजेश्वर चतुर्वेदी ने भी इसका अर्थ प्रतीकरूप में स्वीकार किया है।

मीता साहब ने अपने पदों में इनको स्थान देकर विद्वानों की इन सभी भ्रान्तियों का निवारण कर दिया है। सर्वप्रथम `लोई` शब्द पर हम विचार करेंगे। डा० सत्नाम सिंह शर्मा ने लोई का अर्थ लोग और पत्नी दोनों रूप में स्वीकार किया है। मीता साहब ने कई स्थानों पर लोई शब्द का प्रयोग कर यह स्पष्ट रूप से सिद्ध कर दिया कि `लोई = लोग` होता है। एक पद में षटकर्मी लोगों के ऊर्ध्व रीति से पवन को अग्रसारित करने वालों के प्रति मीता साहब कहते हैं कि -

उल्टा पवन चढ़ावे लोई, बाजीगर के बन्दर होई।

गाय बकरी आदि बध करने वाले लोगों को सम्बोधित करते हुए मीता साहब

---

[१] कबीर ग्रंथावली, पद संख्या-२२९।

कहते हैं कि -

गाय बंधी ते कहो कसाई, बकरी बधे चिक होई ।
लोई कम तुम्हु तो किहो, समझो अपरो लोई ।।

उपर्युक्त पदों के आधार पर डा० रामकुमार वर्मा का मत स्वत: ही ध्वस्त हो जाता है । वास्तव में लोई का अर्थ लोग हैता है । लोई कबीर की पत्नी नहीं है । अत: अब इसमें जरा भी संदेह नहीं है । डा० वर्मा जी ने योग परक पदों में आये प्रतीकों को लौकिक रूप में अर्थ करके लोई का अर्थ कबीर की पत्नी के रूप में किया जो पूर्णतया भ्रामक है । कबीर के पद संख्या २२६ के अनुसार सास-ननद,जेठ आदि के जिन प्रतीकों के अनुसार ऐसा भ्रामक अर्थ लगाया गया उसी से मिलते-जुलते भीखा साहब के पदों को उद्धृत करने से यह बात और स्पष्ट हो जाती है ।

भीखा साहब कबीर की भांति सखी, सास, ननद, दुल्हन आदि का रूपक बांधते हुए कहते हैं कि जीव को अपने प्रियतम ब्रह्म से मधुर-मिलन न हो सकने के कारण कठोर दुख का सामना करना पड़ता है । क्योंकि मन की लिप्साएं (ननद) उसको नाना प्रकार के कष्टों (तानों, उलाहनों, व्यंग) से परेशान करती रहती है । क्षण मात्र के लिये भी ईश्वर से मिलन माया (सास) को स्वीकार नहीं । बिना प्रियतम के मिलन के जीव की वासना (कुबुद्धि) का दाय नहीं होता है ।[1]

आश्चर्य इसका नहीं है कि लोई और धनिया किवदंतियों के आधार पर कबीर की पत्नी को मान्यता दी गयी आश्चर्य इस बात का है कि डा० त्रिगुणायत[2] और डा० सरनाम सिंहशर्मा जैसे चोटी के विद्वान कबीर वाणी

---

[1] कस सखि अनमन, धनमनि सबे सुख दु आरि ।
-ह०लि०ग्रंथ, भीखादास, दोहा संख्या-४६ ।

[2] डा० त्रिगुणायत, कबीर की विचारधारा, पृष्ठ-४८० ।

में घूंघट के प्रतीक को दृष्टिगत न रखकर कहते हैं कि कबीर की पत्नी लोक लाज से घूंघट काढ़ती थी । कबीर इसके विरोध में थे इसीलिये घूंघट के विरोध में दूसरी को उन्होंने चेतावनी दी।[1]

वास्तव में दूसरी स्त्री के जिस घूंघट का उल्लेख है वह माया-मोह का घूंघट है जिसकी प्रथा को समाप्त न करने पर जीव को अंत में सद्गति नहीं होती । माया-मोह के घूंघट में बहुत कम दिन ही आनन्द आता है । यह क्षणिक और नश्वर है । वास्तव में कबीर दास जी का पद घूंघट के रूप में माया-मोह है पत्नी नहीं ।

मीता साहब के पदों में आये हुए घूंघट से यह प्रकाय पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है । मीता साहब के अनुसार कुकर्मों की घूंघट त्यागने पर ही प्रियतम के संग रास का आनन्द प्राप्त होता है क्योंकि तभी जीव के ऊपर ढके माया-मोह के घूंघट को समाप्त कर पाता है।[2] गुरु ज्ञान को प्राप्तकर माया-मोह के घूंघट की परतों को समाप्त कर देने पर ही प्रियतम ईश्वर का दर्शन सुलभ हो सकता है । अन्य विधि इस हेतु निरर्थक है।[3] गुरु की सेवा से लोक-लाज की मर्यादा की सीमा को जीव बांध सकता है । वे जीव अपरिपक्व अवस्था में हैं जो माया-मोह के घूंघट का टारते देखकर डरने लगते हैं।[4]

---

[1] डा० सत्नाम सिंह शर्मा, कबीर व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त, पृष्ठ संख्या-४८ ।

[2] चाहै जीव तजै जग लज्जा, झिलमिलपिव संग जावै ।
घूंघट टारि अंक भरि लावै, नैन आरति साजै ।।
-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या-६७ ।

[3] सुन ससुरै की बतियां घूंघट टारि टारियां ।
ऐसे पिउ ना पाइहौ, का बथे गवारियां ।।
-वही, पद संख्या-२ ७

[4] लोक लाज छूटे नहीं, सतगुरु सेवे जाय ।
कह मीता ते कानचे, जे घूंघट टारत डेराय ।।, वही, दोहा-७९ ।

उपर्युक्त पदों के आधार पर यह स्वतः ही सिद्ध हो जाता है मीता साहब की भांति कबीरदास जी ने घुंघट का अर्थ माया मोह से किया है किसी स्त्री के लौकिक घुंघट से नहीं । क्योंकि सभी संतों का ईश्वर तत्व समान है ।

गुरु तत्व सम्बन्धी भ्रान्ति:
---

(१) जनश्रुति (२) ज्ञान की हीनता (३) कबीर की निजी उक्ति (४) अन्य महात्माओं की वाणियां तथा प्राचीन कृतियां (५) कबीर के उक्ति संकेत तथा राम नाम के कबीर के आग्रह के आधार पर डा० भण्डारनायक,[१] मि० मैकालिफ,[२] पं० रामचन्द्र शुक्ल,[३] डा० श्यामसुन्दरदास,[४] डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल,[५] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी,[६] डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित,[७] डा० सावित्री शुक्ला, डा० राजेश्वर चतुर्वेदी, और डा० सरनाम सिंह शर्मा[८] रामानन्द जी को कबीर का गुरु स्वीकार करते हैं । जैसा कि पहले कहा जा

---

[१] डा० भण्डारनायक, कलेक्टेड वर्क्स आफ भण्डारनायक, पृष्ठ-२७६ ।

[२] मि० मैकालिफ

[३] पं० रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास(सन् १६४०), पृष्ठ-६३ ।

[४] डा० श्यामसुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली 'भूमिका', पृष्ठ-२५६ ।

[५] डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, पृष्ठ-११२ ।

[६] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ-४८

[७] कबीर ग्रंथावली -टीका, पृष्ठ-२२ ।

[८] डा० सरनाम सिंह शर्मा, कबीर व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त, पृष्ठ-४३ ।

चुका है भीखा साहब (सं० १७४६) तक आते-आते कबीर पंथ विभिन्न भ्रान्तियों का शिकार हो चुका था । अर्थात् कबीर के गुरु सम्बन्धी विवाद भी इससे अछूता न रहा । भीखा साहब ने ईश्वर सामीप्य की स्थिति को प्राप्त संतों में कबीर के गुरु के बारे में स्वयं उल्लेख किया है । `बाल गोबिन्द गुरु कबीर के मीरा रानी सरना` के अनुसार बालगोविन्द का कबीर का गुरु होना स्वतः प्रमाणित हो जाता है ।

गोरख भरथरी गोपीचंदा, सुलतानी धरि बाना ।
सेना कबीर धना रैदास, धरमदास गहि धरना ।।
नामा पीपा, सधुन कसाई, जन कमाल धरि परना ।
बाल गोबिन्द गुरु कबीर के, मीरा रानी सरना ।।
जयदेव, दादू नानिक, पूजा धरा चतुर्भुज भरना ।।

डा० मोहन सिंह, बेस्कट साहब तथा डा० रामप्रसाद त्रिपाठी रामानंद को कबीर का गुरु मानते हैं[१] । डा० मोहन सिंह का कहना है कि कोई लौकिक व्यक्ति कबीर का गुरु नहीं था[२] । वास्तव में डा० मोहन सिंह के मत से भीखा साहब के मत की पुष्टि स्वतः हो जाती है । कबीरदास जी के गुरु `बाल गोविन्द` को उन्होंने ईश्वर का समानार्थी समझकर उसे अलौकिक ब्रह्म मान लिया है तो कोई आश्चर्य नहीं ।

भीखा साहब ने कबीर, रैदास, पीपा तथा रामानंद जी के समकालीन ऐतिहासिक पदों में लिखा है जिसपर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि रामानन्द कबीरदास, पीपा आदि के समकालीन तो थे लेकिन कबीर के गुरु न थे । भीखा साहब कहते हैं कि एक बार संत रविदास और कबीरदास

---

[१] डा० सरनाम सिंह शर्मा, कबीर व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त, पृष्ठ-४० ।

[२] वही ।

जी रामानन्द जी के पास जाकर प्रहसन (हास्य, व्यंग) किये । उन्होंने रामानन्द जी से कहा कि आप सारे संसार को शिष्य बनाते फिरते हैं । हमें भी अपना शिष्य स्वीकार कीजिए । रामानन्द जी उन महान संतों एवं अपनी सामर्थ्य की तुलना कर भय से कंपित हो गये । क्योंकि उनमें अज्ञानियों का ही गुरु बनने की सामर्थ्य थी । रविदास और कबीर जैसे संत-ज्ञानी जनों का नहीं । उनके इस हास्य व्यंग्य का अर्थ अन्य लोग समझ न पाये । उनकी असमर्थता की कठोर शब्दों में भर्त्सना करते हुए कबीरदास जी ने कहा कि यदि तुम परिश्रम करके अपना जीविकोपार्जन नहीं कर सकते तो भिक्षा वृत्ति का आश्रय क्यों नहीं लेते हो । शिष्य परम्परा को अपनी जीविका का साधन बनाना नारकीय कार्य है । जब साधना से तुम "राम" का सामीप्य नहीं प्राप्त कर सके तो किस मुंह से अपने शिष्यों को उसकी प्राप्ति का उपदेश देते हो । रामानन्द तुम्हें हजारों बार धिक्कार है । शर्म करो और अभी से भी अपने आपको सुधारने का संकल्प लो । मीता साहब कहते हैं कि रामानन्द जी पीपा को अपना शिष्य बनाया लेकिन साधना के मार्ग को बताने के बजाय उनको गले में कण्ठी माला बांधकर सारे तीर्थों का भ्रमण कर आने का उपदेश दिया । जबकि साधनारत संत के पैरों की धूलि की समानता करोड़ों तीर्थ नहीं कर सकते हैं । द्वारिका के तीर्थ में स्नान करने के निमित्त पीपा साहब ने नदी में डुबकी लगायी जहां पर उनसे माया की भेंट हुई । पीपा के भलाई हेतु वहां पर माया का प्रादुर्भाव हुआ । माया ने पीपा से कहा कि अब तुम कहीं अन्यत्र गमन का संकल्प त्याग दो । नाना तीर्थों के भ्रमण के भ्रम से तुम्हें बहुत विलम्ब हुआ अब यहीं निवास करो । पीपा ने माया को स्वीकार करते हुए कहा कि तुमको छोड़कर मेरा अन्यत्र गमन निरर्थक है । तुम्हारे सुख का ऐसा सामीप्य पाकर त्यागने की अपेक्षा से मरना उचित है । इस पर माया ने पीपा से कहा कि नहीं मेरे सुख में मत लिप्त हो जाओ यह शरीर नश्वर है तुम्हें भरमाने के लिए मुझे यहां भेजा गया है । यह भोग-लिप्सा सिर का गरुवा बोझ के समान है जो कभी नहीं उतरता । तुम कबीरदास जी के पास जाओ वे ही सच्चे साधु हैं हम तो उनकी चेरी हैं । वे ही तुम्हारा कल्याण करेंगे । पीपा तुरन्त काशी नगर में आकर

कबीर के पैरों पर गिरकर सारे वृतान्त को दोहराया और रामानन्द जी को जब इसका ज्ञान हुआ तो उनके लिए केवल पश्चाताप करनाही शेषरह गया था। कबीरदास जी कृपा करके पीपा को अपना शिष्य स्वीकार कर लिया। लौकिक कष्टों से मुक्त करउसे ईश्वर का अनुभूति कराया। इस पर रामानन्द जी के क्रोध का पारावार न रहा। वे पीपा पर क्रोध करके बोले तुम नाना-प्रकार से तीर्थों से लौटकर मेरे पैर स्पर्श कर आशीर्वाद नहीं लिए। तुम्हारी यह धृष्टता। इस पर पीपा जी ने रामानन्द को सम्बोधित कर कहा - आप अपने गुरुआई के गर्व को त्यागकर कबीर के पैर पाड़िये। वे ही आपका कल्याण करेंगे। रामानन्द का शरीर क्रोध से कांपने लगा। क्रोध में उन्होंने पीपा से पूछा कि शिष्य होकर तुम मुझे शिक्षा देने चले हो। अपने तथ्य को प्रमाणित करो। पीपा जी ने तब स्नेहपूर्वक बताया कि सत्गुरू तो कबीरदास जी है। यह बात तुम्हारे समझ में नहीं आ सकती है। द्वारिका नगर में माया ने कबीर के बारे में मुझे सारी बात बता दी है। पीपा की उक्ति से असंतुष्ट रामानन्द जी ने आश्चर्यपूर्वक कबीर से पूछा कि - ऐ कबीरदास जी आपने पीपा के ऊपर कैसा जादू डाल दिया कि वह आपकी तो स्तुति करता है लेकिन मेरी निन्दा। कबीरदास जी ने रामानन्द को बताया कि पीपा का अहोभाग्य है जो ईश्वर के दर्शन उसे प्राप्त हुए। वह उन्ही में रम गया है। रामानन्द जी द्वारा ब्रह्म की उपलब्धि के बारे में पूछने पर कबीरदास जी ने बताया कि रामानन्द जी आपने अनेक शिष्यों को उपदेश किया लेकिन वे सभी गर्व अहंकार से युक्त हैं। ईश्वर भक्ति में कोई विनम्र भक्त ही सफल हो सकता है। अपनी लघुता को स्वीकार करके ही ईश्वरत्व को पाया जा सकता है। आप तो ज्ञान के अहंकारि. प्रवृत्तियों से भरे हैं। ईश्वर का दर्शन ऐसे सम्भव नहीं। इनसे केवल सांसारिक भोग ही सुलभ है। उसी समय तत्कालीन पतिशाह (सिकन्दर लोदी) जाल् प्रा.... रामानन्द की प्रसिद्धि सुनकर उनके दर्शन हेतु आया। सिकन्दर लोदी के सिर में जानवरों के सिंग जैसा उभार था। भविष्यवाणी थी कि किसी सच्चे संत (फकीर) के दर्शन से ही उसका यह उभार समाप्त हो सकता है। सिकन्दर लोदी

के आगमन को सुनते ही मुसलमान से घृणा करने वाले रामानन्द जी पीठ करके बैठ गये। लोदी भी निराश होकर लौटने लगा कि सच्चे फकीर को प्रभावित करना ठीक नहीं। लेकिन ज्योंहि वह आगे बढ़ा रामानन्द जी लोदी के भय से सर तिरछा करके उसकी ओर देखने लगे। लोदी समझ गया कि यह सच्चा संत नहीं है क्योंकि संत मृत्यु से डरते नहीं। तुरन्त उसने रामानन्द जी का सर कटवा लिया। कबीर दास जी को इस समाचार से बहुत दुख हुआ। इस पर उन्होंने कहा कि रामानन्द जी को मैंने बहुत समझाया लेकिन मूर्खता और अहंकारवश उन्होंने ध्यान न दिया। असामयिक मृत्यु ने अन्त में उन्हें कष्ट से पीड़ित कर ही दिया। गीता साहब पिछले इस इतिहास का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हम वचन-वाणी के माध्यम से कबीर और रैदास के साथी हैं।

यदि हम डा० वृन्दावन लाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यास `मृगनयनी` पर एक दृष्टि डाले तो उपरोक्त रामानन्द जी की मृत्यु की गाथा भी प्राप्त होती है। `बोधन` नामक तार्किक विद्वान ब्राह्मणेतर्क गर्व से सिकन्दर लोदी की सभा में अपना सर कटाने से भी कुछ इसी प्रकार के ऐतिहासिक तथ्यों की पुष्टि होती है। भले ही उपन्यास के तत्वों के आधार पर नाम आदि बदल गये हैं। उपरोक्त तथ्यों के आधार पर रामानन्द जी का कबीर का गुरु होना एवं उनका १२० वर्ष की उम्र की कल्पना प्रमाणित नहीं मालूम होती[१]।

गीता के वास्तविक रचयिता का उद्घाटन:

जगत प्रसिद्ध श्रीमद्भागवतगीता नन्द पुत्र भगवान श्रीकृष्ण की साक्षात वाणी मानी जाती है। गीता साहब इस तथ्य को निरस्त करते हुए

---

[१] डा० सतनाम सिंह शर्मा, कबीर व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त।

इस विषय में वे चमत्कारिक अभिव्यक्ति प्रस्तुत करते हैं । नन्द के बेटे कृष्ण का परम्परागत रूप से ज्ञानी संत ईश्वर के रूप में अस्वीकार करते हुए मीता साहबने उन्हें असन्त एवं जग को भ्रमित करने वाले "गुण्डे" शब्द से सम्बोधित किया है[1] । पुराणों और महाभारत में वर्णित महान योद्धा कृष्णार्जुन मीता साहब की दृष्टि में महान संत नहीं अपितु क्रोधी एवं विषयी क्षुद्र नर से अधिक नहीं है[2] । परम्परागत अर्जुन जैसे क्रोधी एवं कृष्ण जैसे गोपियों के साथ रास रचने वाले कामी पुरुष का निष्काम कर्म के गीता उपदेश देना दोनों हास्यास्पद है । ऐसे क्रोधी एवं विषयी व्यक्ति के हृदय में निष्काम कर्म का ज्ञान होना असम्भव है[3] । निष्काम कर्म को कहने वाले एवं सुनने वाले अक्रोधी एवं अविषयी होते हैं ।

नन्द के सुपुत्र कृष्ण तो सदा काम-क्रोध-लोभ-मोह के बंधन में बंधे रहे । उन्हें गीता जैसे अमृत तुल्य उपदेश का ज्ञान असम्भव है । प्रतीक रूप में स्वीकार करके गीता संतों के वचन-वाणी का विषय है[4] ।

चिर प्रचलित पौराणिक मान्यताओं को ध्वस्त करते हुए मीता साहब तर्क पूर्वक स्वीकार करते हैं कि गीता के वाणी नन्द के बेटे की बानी नहीं बल्कि नारद, सुकदेव, व्यास आदि के माध्यम से सच्चे संतों ने ज्ञान के गूढ़ तत्वों को गीता के रूप में समाहित किया है[5] । यदि पौराणिक तथ्यों को

---

[1] कान्हा गुण्डा नंद ग्वाल का, ब्रज में किन्ही लीवारि ।
कामी कुटिल रता मन मैला, बोर गया संसारि ।।
-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा-२७६ ।

[2] अर्जुन क्रोधी, कान्हा विषयी, हरि रस तजा तिन्ह हम छोड़ें ।
-वही, पदसंख्या- २६ ।

[3] अर्जुन फासे क्रोध मां, काधा फासे काम ।
तहा ग्यान कैसे रहा, गीता है निष्काम ।।
-वही, दोहा संख्या- १५४० ।

[4] नंद कन्हैया मरमन जानै गीता केरि बानी ।
तिनुका ओट पहार देखक, संत कीन्ह बखानी ।।-वही, दोहा-३२७ ।

[5] अगले पृष्ठ पर ।

मान्यता देकर कृष्ण को गीता का प्रणेता मान भी लिया जाय तो वे कृष्ण ग्वाले नन्द के पुत्र न होकर कोई महान संत होंगे जिन्होंने विभिन्न योगों की प्रायोगिक व्याख्या गीता के रूप में की है।[1]

गीता साहब ने रामायण और सभी पौराणिक मान्यताओं का खण्डन कर धर्म क्षेत्र में अपनी नयी मान्यता स्थापित किया जो अपने आपमें एक क्रान्तिकारिक कदम है। 'तुलसीदास' जैसे महान सगुण भक्ति के कवि राम की त्रुटियों को 'समरथ के नहिं दोष गोसाई'[2] कह तर्क के ठोस धरातल से पलायन कर जाते हैं वहीं गीता साहब कर्म के फल के रूप में सारे भ्रमित तत्वों का स्पष्टीकरण प्रस्तुत करते हैं। तुलसी के मर्यादा पुरुष भगवान राम गीता साहब के पुरुष राम के रूप में अपने कर्मों का फल भोगते हैं। धनुष-यज्ञ में धनुर्भंग के पश्चात् जगत सुन्दरी सीता को वरण करने के अभिमान से राम विरत न हो सके। दशरथ द्वारा वनवास एवं सीता का हरण उनके गर्व को चकनाचूर करके उनकी स्वस्थिति का ज्ञान कराता है।[3] अब तक केवल रावण को ही अहं

---

५ (पिछले पृष्ठ का)

गीता है सतगुरु की बानी, समझो नर तन प्रानी।
नारद सुकदेव व्यास औठ दे, जग में बात बखानी।।

- ह०लि०ग्रंथ, गीतादास, दोहा- २१०५।

[1] कृष्ण नाम संत का कहिए, गीता जिनकी बानी।
नारद सुकदेव व्यास औरे दे, संतन करी बखानी।

-ह०लि०ग्रंथ, गीतादास, दोहा संख्या-२१०३।

[2] गोस्वामी तुलसीदास, रामचरितमानस।

[3] रामचन्द्र अभिमान किया धनु बहु, धनुष तोर जब डारा।
— — —

-ह०लि०ग्रंथ, गीतादास, दोहा संख्या-५२६।

प्रवृत्तियों का प्रतीक माना गया था तथा राम को इससे विरत रखा गया था परन्तु भीखा साहब की चमत्कारिक अभिव्यक्ति ने राम को भी ईश्वर के द्वारा दण्डित व्यक्ति के रूप में स्वीकार किया। राम और रावण दोनों को अपने किये गये फल को भोगना पड़ा।[१] उच्च कुल पुलस्त्यनाती महाब्राह्मण रावण को कुकृत्यों के कारण राक्षस(दानव) की संज्ञा दी गयी लेकिन भीखा साहब की दृष्टि में परनारी हरण कर्ता रावण से कम दानव (राक्षस) राम का नहीं थे जिन्होंने हिंसा का मार्ग अपनाकर अनगिनत सेनाओं का वध किया। राम यह हिंसक कार्य राक्षसी प्रवृत्ति का द्योतक है। ईश्वरी नहीं क्योंकि मारना ईश्वर का धर्म नहीं है। ईश्वर तो संसार का पालनकर्ता है।

सगुण भक्ति धारा में अवतारवाद के सिद्धान्तों को पूर्णतया अस्वीकृत करते हुए अपनी नयी मान्यता को स्थापित करते हुए तर्कपूर्ण अभिव्यंजना भीखा साहब की चमत्कारिक अभिव्यक्ति है। अवतारवाद के नायक और खलनायक केवल माया के प्रतिबिम्ब हैं। ब्रह्म के प्रतिबिम्ब नहीं। राम का रावण वध करना एवं सीता से विवाह करना अच्छाई का बुराई पर विजय एवं लौकिक सुख की उपलब्धि का प्रतीक है क्योंकि राम और रावण दोनों माया के शुभ-अशुभ प्रारूप हैं।[२] ब्रह्म प्रेरक माया का नारसिंह रूप सुकर्मों के पुण्य प्रतीक प्रहलाद का

---

[१] रावन रामचन्द्र झगड़ा लाया, किन्हा धनी तमाशा।
दोनों ही के हाथ लगाय, पिढ़वा गास निकासा।।
दानव एक हरी पर नारी, रावन बड़ा कुवारी।
दूसरे दानव रामचन्द्र देखा, सेन बहुत जिन मारी।।
मार तोरि साहब के नाही, उई पालन संसारा।
उनकी इच्छा ते सब होता, ना धरते अवतारा।।

-ह०लि०ग्रंथ, भीखादास, पद संख्या-६२४।

[२] राम न मारा रावना, ना उन सीता ब्याही।
रावन रामचन्द्र दोनो माया, मुरुख जानत नाहीं।।

-ह०लि०ग्रंथ, भीखादास, दोहा संख्या-४८।

दुष्कर्मों के पापमय हिरण्यकश्यप से रक्षा का उदाहरण ब्रह्म का अवतार अंश इसमें लेशमात्र भी नहीं है।[1]

पुराण प्रसिद्ध कृष्ण का कंस वध करना रुक्मिणी के साथ प्रणय लीला परमपुरुष के अवतारवाद की व्यंजना नहीं अपितु संत प्रवृत्तियों का असंत प्रवृत्तियों पर विजय के पश्चात् लौकिक सुख की अनुभूति का सजीव चित्रण है। कृष्ण और कंस दोनों सांसारिक प्रवृत्तियों के प्रारूप हैं। प्रवृत्तियों का सहज गुण ही लौकिक क्रियाओं का ज्वार भाटा है।[2]

ब्रह्म की प्रेरक माया द्वारा बलि के गर्व को चूरकर उसे रसातल में भेजना भक्त के अहं प्रवृत्तियों को निर्मूल करने की योजना का एक उदाहरण है। ब्रह्म के अवतार का इससे कोई सम्बन्ध नहीं। मीता साहब ने अवतारवाद की सारी गाथों को अपनी तर्क पूर्ण व्यंजना शैली से उसे पाप-पुण्य के कर्मों के द्वन्द के उदाहरण रूप प्रस्तुत करके नवीन विचारधारा का सूत्रपात किया जो संत सम्प्रदाय के लिए एक नवीन देन है। जिससे संत मत को वास्तविक धरातल पर सुदृढ़ होने में एक सशक्त बल मिलता है।[3]

---

[1] नरसिंह रूप माया धरा, साहब अज्ञा कीन्ह।
हिरनाकुश का उदर विदारा, प्रह्लादे रक्षा कीन्ह।।
-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या-३७५।

[2] परम पुरुष नहीं कंसै मारा, नाहन रुक्मिनी ब्याही।
कान्हा कंसा दोनों माया, लरब भिरब गुन आही।।
-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या-१९८।

[3] बावन रुपै के माया जानी, अज्ञा कीन्ह गोसाई।
गये रसातल दान देई बलि, मारे गरब बड़ाई।।
-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या-२३।

सगुणोपासक कवियों की आलोचना:

सूर, तुलसी जैसे युग प्रवर्तक महाकाव्य सृजनकर्ता सगुण भक्ति धारा के संत कवियों का काव्य मीता साहब के पूर्ववर्ती निर्गुण संतो की आलोचना का विषय तो रहा लेकिन उनका कलरव पक्षियों के सायंकालीन कलरव से अधिक और कुछ न था । कबीरदास जी के पश्चात् सगुणोपासक संतों की स्पष्ट रूप से आलोचना शीशे के दीवार वाले मनुष्य के दूसरे घर पर पत्थर फेंकने के समान थी । उनकी साधना अपरिपक्व थी अत: सगुणोपासक संतों की कटु आलोचना करने स्वयं हंसी का पात्र बनना उनकी वाणी का विषय न बन सका । मीता दास की साधना के अन्तिम सोपान को पार कर चुके थे । अत: निर्गुण साधना के दूरस्थ भ्रमित भक्तों की आलोचना करके उन्हें साधनारत करना मीता साहब का उद्देश्य था ।

तुलसी सूर जैसे महान सगुण कवियों की आलोचना करके मीता साहब ने एक क्रान्ति का सूत्रपात किया । उनकी क्रान्ति सगुणोपासना पद्धति को समूल नष्ट करने की नहीं अपितु उसकी त्रुटियों को निर्मूल करने की थी ।

तुलसी और सूर की कविताओं को सेमर के फूल के समान क्षणिक प्रभावहीन कह करके उन्हें तिरस्कृत करना वास्तव में उनके वाह्य साधना पद्धति को आन्तरिक निर्गुण संत पद्धति में रूपान्तरित करना था । मूर्ति पूजा के आडम्बरों की भ्रांति को निर्मूल कर ईश्वर के तात्विक रूप का दिग्दर्शन करना ही तुलसी सूर की आलोचना का परम लक्ष्य था । तुलसीदास जी का 'पूजो विप्र सकल गुण हीना' एवं 'ढोल गंवार शूद्र पशु नारि सकल ताड़ना के अधिकारी' मीता साहब को मान्य न था । संत गुणहीन नहीं होते । गुणहीनों की कल्याणकारी तुलसी की कविता वास्तव में मूर्खों[१] के लिए ही कल्याणकारी है सज्जनों के लिए इसकी कोई उपयोगिता नहीं ।

---

[१] कै कविताई कान्ह की, केशव कवि का भूत ।
सोई कुमता कुम का लिखी कह मीता द्रुम्यूत ।।
-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या-२०१ ।

मीतादास की दृष्टि में सगुण कृष्ण काव्य के रचयिता केशवदास भी अछूते न रहे । क्लिष्ट अलंकारिक भाषा में रचे गये काव्य के द्वारा केवल वे काव्य के भूत के अलंकार से विभूषित होने का फल प्राप्त कर सके । ऐसे काव्यों के सृजन से क्या लाभ । जिससे जन-मानस का कोई कल्याण सम्भव नहीं ।

निर्गुण पद्धति में बारहमासा लिखना:

मीता साहब के समय तक श्रृंगारिक काव्यों में बारहमासे लिखने की प्रथा थी । मीता साहब ने नायिका-वियोग के बारहमासे को योग परक तत्वों में ढालकर बारहमासे-पद्धति को एक क्रान्तिकारी दिशा देने का प्रयास किया ।

बारहमासा - मीतादास:

चैत:

चैत चेत धागा मन लागा, करम भरम का मारग त्यागा ।
हरा लाल रंग सेत अपारा, धागा लागै को तारा ।।
घर बाहर बैरी तब लागा, तीन्यु तीरथ किये एक घाटा ।
कहै मीता तन तूरन लागा, मान गुमान तबै सब भागा।

वैसाख:

बैसाखै बस मूल दुवारा, जोग जुगति का पंथ संवारा ।
छिन-छिन धागा पलटन लागा, या धागा का काढ़न गाढ़ा ।।
सतगुरु सेय भक्ति चित लाई, दीन गरीबी रहा समाई ।
कहै मीता या बूझ बिनानी, बिना बूझ भूले नर प्रानी ।।

जेठ:

जेठ जुगती घर जागन लागी, काया सोधे बिरले प्रानी ।
कुमति गयी घर सुमिता आयी, कुन्जी कुरील ध्यान जो लायी ।।
नदी नाव में सेव समाई, चक्र सुदर्शन देखा जाई ।
ससा भून सिंह का खाई, मीता या मत गुरु सो पाई ।।

अषाढ़:

अषाढ़ अध मा डेरा लीन्हा, गाजे गगन नींद मैं लीन्हा ।
भूख मार गहि पांच पठाना, अवाखि घटहि माझ समाना ।।
परवत अचल होय निज ग्याना, बिना भेद का कथे पुराना ।
मीता सांचा पढ़ै पुराना, कम ना मरब मारिहैं बहु ग्याना ।।

सावन:

सावन सुरति सहपुर लागी, कोटिन दामिनी दमकन लागी ।
ब्रह्म अगिन घट भीतर लागी, मदन जरे जरि भूरि लागी ।।
छिन्न भया तब जोग ठेकाना, अब गुन आवै कोनै काजा ।
या बिधि भजन करै बड़ भागी, कहै मीता जम चोट न लागी ।।

भादो:

भादौ वरषै नैन अपारा, नवो दुवारे लगे किवारा ।
दसवां खोल भई उजियारी, जरा मरन का कागज फारी ।।
सुज्जन करै ग्यान का तोरा, पाखण्ड भेष जगत का बोरा ।
कहै मीता सोई ग्यान अपारा, जाते होय गरभ ते न्यारा ।।

कुवार:

कुवार कवल दल फूलन लागा, जीव ब्रह्म मैं जाय समाना ।
करै अगिन जम जार नसाना, अमर लोक का किया पयाना ।।
या मत गहे जो संत सुजाना, नाहक कथे काह बहु ग्याना ।।
कहै मीता जब या मत ठाना, नीरमल भया हमारा ग्याना ।

कातिक:

कातिक अष्ट कवल दल फूला, बाजे अनहद कोटिन तूरा ।
उठै राग सुर शब्द अपारा, छूटन लागे जग व्योहारा ।।
छवो भेष ते या मत न्यारा, गिरही बिरला करै विचारा ।
जन मीता कहै तत्व विचारा, भव सागर ते उतरा पारा ।।

अगहन:

अगहन अग्र अमीय रस चाखा, पदम पत्र किन्ही अभिलाखा ।
काम क्रोध तहां कपटन देखा, ताप गयी सब गये अन्देशा ।।
मुक्तन संग मुक्ता हल देखा, कपट दुवार मरी छ: भेखा ।
जन मीता उबे चढ़ देखा, भेख अलेखी धोखा देखा ।।

पूस:

पूसै पारस परसन लागा, धजा उलटि गुर गम के काजा ।
बज्र शिला का खोलन लागा, खुले शिला के भे सब काजा ।।
उत्तिम मद्धिम चिन्हे काजा, जब ते रैन अकेले जागा ।
कहै मीता मन सो मन माना, हम सो जम सो नाहीन काजा ।।

माघ:

माह मद्धम पीउ का जाना, सहज सुन्न मां जाय समाना ।
सांचा देख सांच मनमाना, झूठी संत त्यागे दाना ।।
राग द्वेष तब दूर पराना, मैं तू किया सकल सुख थाना ।
कहै मीता भे दास सुजाना, तिनका जम निदै किन ग्याना ।।

फागुन:

फागुन फूल परम सुख बाढ़ा, खेल धवारि पुरुष के साथा ।
सील संतोष रहे अब साथा, वाग्ग कवल आये निज हाथा ।।
तिनका नही गर्भ में बासा, जे खेले सतगुरु के साथा ।
विषै विकार तबै सब नासा, मीता तन में करै विलासा ।।

यही खेल सब संत मे, यही खेल है मूर ।
कहै मीता खेलत बने, सोई खेल भरपूर ।।

मीतादास जी कबीरदास की भांति समानार्थी बहुत से पदों का सृजन किया है जिनका संक्षेप में विवेचन नीचे किया गया है -

कबीरदास और मीतादास:

मीता साहब स्वयं लिखते हैं कि -

जो काशी कह गया जुलाहा, सो तो है टकसाली ।
मीता ताकी थाप देत है वो पहुंचा दरबारी ।।

अत: मीता साहब को हम कबीरदास का दूसरा रूप कहें तो अन्योक्ति न होगी । मीता साहब स्वयं लिखते है कि एक बार हमने काशी में जुलाहे के रूप में कहा पुन: दूसरी बार अपने इस रूप में कह रहा हूं । पुन: तीसरी बार महा-प्रलय के समय आकर किसी रूप में अपना उपदेश करूंगा ।

एकदा काशी कहा, दूजा अब अन्य ।
तीजा फिर हम अहवे हो, जब लगना अगिलाय ।।

अत: मीता साहब ने बहुत से ऐसे पद और दोहे लिखे जो भावार्थ में कबीरदास जी के पद से मिलते-जुलते हैं । नीचे कबीरदास जी एवं मीता साहब के कुछ पद दिये जा रहे हैं उनसे स्पष्ट हो जायेगा ।

कबीरदास:

ज्ञान का गेंद कर सुरति का डंडका, खेल चौगान मैदान मांही
जगत का भरमना छोड़ दे बालके, आय जा भेष भगवन्तपाही
भेष भगवन्त की शेष महिमा करे, शेष के सिर चरन डारे
कामदल जीति के कंवल दल सोधि के, ब्रह्म को बेधि के क्रोध मारे
पदम-आसन करे पौन परिचे करे, गगन के महल पर मदन जारे
कहत कबीर कोई सन्त जन जौहरी, करम की रेख पर मेख मारे

मीता साहब:

धरनि को बांधि के सूर शशि बेधि कै, खेलु चौगान मन बाध लेवे
ज्ञान का बरस के, सील का खेल ले, कालु को मारि बढ़ि गगन आवे
प्रेम की डोरी सो जोति सो जोति मिली, अगम का पंथ कोई बीर पावे ।
दास मीता कहै जगत मां यो रहै, पदम के पत्र नहीं नीर आवे ।

कबीरदास:

अवधू सो योगी गुरू मेरा, जो या पद को करै निबेरा ।
तरवर एक पेड़ बिन ठाढ़ा, बिन फूलां फल लागा ।
साखा-पत्र कछु नहिं वाके, अष्ट गगन मुख पागा ।
पैर बिन निरति करां बिन बाजे, जिभ्या हीणां गावे ।
गावणहार के रूप न रेखा, सतगुरु होय लखावे ।
पंछी का खोज मीन का मारग, कहे कबीर विचारी ।
अपरंपार पार परसोतम वा मूरति की बलिहारी ।

मीतादास:

सखि एक देखा अजब तमाशा, अगमन पंथ जब ताका ।
बिनु बादर कह दामिनी दमकै, बिनु बरखा सर बाढ़ा ।
बरस अग्नि पर शाखा बाढ़ी, बिन बारि फल लागा ।
बाजनहार बिन सिर देखा, चरन कवल अभिलाखा ।
धरती बरखै अम्बर भीगै, मछरी चढ़ी अकासा ।
उमड़ा राजा सिंह का मारा, मूस बिलारी त्रासा ।
बेद कितेब नहीं या लिखी, है अभय परगासा ।

यद्यपि मीता साहब ने सूर, तुलसी की आलोचना की है उन्होंने बताया है कि तुलसी और सूर की कविताएं भोंदू (मूर्ख) की ही भलाई कर सकती है । सज्जन लोग कभी इस पर अपना दावा प्रस्तुत कर सकते हैं । तुलसी और सूर की कविताएं सेमर के फूल के समान सुगन्ध न देनेवाली हृदय को कष्ट देने वाली है । लेकिन कहावत है कि जिससे हम प्रेम करते हैं वह हमारे मन को

---

[1] तुलसी सूरा की कवितायी, भोदून का हितकारी ।
सुज्जन हैं ते नालिश करिहे, मीता करी विचारी ।।-दोहा-२६५ ।

पीड़ा पहुचाते हैं।[1]

संत भीखादास और संत परशुराम:

परशुराम जी ने भी भीखादास जी की भांति संत परम्परा को अपनाया। योग के निर्गुण तत्वों को अपनी वाणी का विषय बनाकर उन्होंने भीखादास जी की भांति छिपे सत्य का उद्घाटन किया। साहित्य के क्षेत्र में परशुराम जी का सहयोग यद्यपि भीखादास जी की भाँति नहीं था लेकिन सत्य का अन्वेषण करने में उन्होंने अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है।

संत चन्ददास और भीखादास:

संत चंददास जी ने चन्ददास रामायण राम विनोद में ईश्वर के सगुणोपासना के साथ-साथ योग साधना को क्षेत्र का विकल्प स्वीकार किया है। योग साधना रत जीव को क्षेम योग के बिना सम्भव नहीं है। अखण्ड ब्रह्म स्वयं में परिपूर्ण है इसका निवास घट-घट में है। जीव भ्रम से उसके अस्तित्व को भूलकर अन्यत्र उसकी परिकल्पना करता है।[2] भक्ति के प्रादुर्भाव से ही जीव कर्मों के बन्धन से मुक्ति प्राप्त कर सकता है अन्यथा नहीं। कर्मों के विनाश से ही जीव का उद्धार सम्भव है।

भीखा साहब ने भी जीव के कुशल हेतु योग को ही परम आधार माना है। योगाग्नि के उद्गार के बिना जीव का कल्याण सम्भव नहीं है।

---

[1] तुलसी सुरा की कविताई, है सेमर का फूल।
गंध न लागे बास न आवै, और हृदय का सूल ।।

[2] संत चंददास कृत रामविनोद-उत्तरकाण्ड (सं० डा० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित'), ३३८६।

माला कंठी आदि वाह्य उपक्रम है। इसके द्वारा जीव को ईश्वर की अनुभूति संभव नहीं है जिससे उसका कल्याण हो सके।[1] ईश्वर की सत्ता अखण्ड है। उस पूर्ण ब्रह्म के साक्षात्कार से जीव ब्रह्ममय हो सकता है।[2] उस ईश्वर की उपलब्धि घट में ही संभव है अन्यत्र नहीं। घटवासी ईश्वर की प्राप्ति पाप-पुण्यों के रहते हुए असम्भव है। इनको जलाकर समाप्त कर देने पर ही ईश्वर भक्ति का प्रथम सोपान दृष्टिगोचर होता है।[3]

संत बंददास जी ने सुरपुर में ईश्वर से साक्षात्कार हेतु तन-शोधन की आवश्यकता पर अत्यन्त बल दिया है। गुरु-ज्ञान से क्रोध को निर्मूल कर क्षमा योग-मार्ग में सहायक है। चन्द्र और सूर्य के रन्ध्रों को समान रूप से समायोजित करने पर ही ईश्वर का अहन्नाद में ध्यान एकाग्रचित्त होता है जिसके पश्चात् जीव और ब्रह्म जल और तरंगों की भांति एकरूप हो जाते हैं।[4]

मीता साहब ने भी ईश्वरीय साधना में तन-शोधन को परम लक्ष्य माना है।[5] योगी को ईश्वर की दया, शील, व्यवहार के माध्यम से सहज ही अनुभूति हो जाती है।[6] ईश्वर के साक्षात्कार हेतु चन्द्र सूर्य की श्वास

---

[1] रे खुवा कैसे घर जयिया ------- ।, ह०लि०ग्रं०, मीतादास, २०१ ।

[2] पूरन ब्रह्म जे मिलै---------------।, वही, दोहा संख्या-२४५ ।

[3] जन मीता तन सींचिया-----------।, वही, दोहा संख्या-२०६ ।

[4] मन को सुर करै---------।, बंददास कृत राम विनोद, आरकाण्ड, दोहा संख्या-३३६० ।

[5] तन सोधा सो पाव्या, मीठी आवा जानी ।, ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहासंख्या-१३६ ।

[6] सुज्जन हरि का पावई, सबे अंग ये पूरे ।
क्षमा दीनता शीलते, दाया ते भर पूरे ।।
-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या-८० ।

प्रक्रिया को समान रूप से व्यवस्थित करना परम आवश्यक है।[1] चन्द सूर्य के सम होने पर ब्रह्म के निवास स्थान पर अनाहद नाद की ध्वनि सुनाई पड़ती है।[2] तत्पश्चात् कुण्डलीनी-शक्ति अपने स्रोत परमब्रह्म में विलीन होकर उसी प्रकार एक रस हो जाती है जैसे कुंभ का जल सागर में।[3]

संत चंददास जी परम-भक्ति की उपलब्धि स्थित-प्रज्ञा दशा में संभव मानते हैं। संयम की दशा में सेवक भाव से पूर्ण ब्रह्म में जीव स्थिर हो सकता है। भक्ति के अभाव में छल-मंत्री की भांति सारी उपादेयता व्यर्थ है।[4]

मीता साहब भक्ति के मार्ग में चंचल मन की स्थिरावस्था को स्वीकार करते हैं। सतगुरु के सच्चे सेवक के रूप में प्रेम और भक्ति का भेद प्राप्त कर लेने पर अलख निरंजन की अनुभूति सुलभ है।[5]

संत चंददास जी असंतों के कार्य-कलापों को भगवद्भक्ति में बहुत ही व्यवधान माना है। असंतों की वचन-वाणी बहुत ही कटु होती है और हृदय वीदीर्ण करने के योग्य होता है। दुष्टता उनके अंग-अंग में व्याप्त होती है। वे विषधर की भांति पय (अमृत वाणी) को ग्रहण कर भी विष वमन नहीं त्यागते। उनकी वेद वाणी काग को कपूर चुगाने की भांति अर्थहीन होती है।[6]

---

[1] रवि शशि दोनो सम के राखै सोई सुमेर --------- ।
-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या-६२६ ।

[2] तहां उठै अनहद नाद अगम जोति जगमग ह्वै ।, वही, संख्या-८० ।

[3] अवना आयब जायब हो कुछ नहीं
कुंभ नीर सागर मिला, ऐसे न्यारा हो ।, वही, दोहा संख्या९६ ।

[4] संत चन्ददास कृत रामविनोद, उत्तरकाण्ड(सं०डा० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित'ललित'), पदसंख्या-३२६३ ।

[5] बहुत कठिन है भक्ति दुहेवी -----
एक पल स्कादशी रे मन चंचल काथी । , वही, दोहा संख्या-२१२ ।

[6] संत चंददास कृत रामविनोद,उत्तरकाण्ड,पदसंख्या-३२२८,२८३०-३१ ।

मीता साहब ने भी असंतो के लक्षण बताते हुए कहा है कि दुष्टो के साथ संगति करने की अपेक्षा अकेले स्वकर्म में लीन होना चाहिए क्योंकि दुष्ट सदा अपने नारकीय कर्म में दूसरों का सहयोग चाहते हैं। इनको देखकर विषधर की भांति सावधान हो जाना चाहिए। ये विषधर से भी भयंकर सिद्ध होते हैं। विषधर तो पैर से दबने पर ही काट-खाने को दौड़ते हैं लेकिन ये बिना अपराध के अपने षड्यंत्र में लोगों को फंसाकर मारते हैं।[1]

संत मीतादास एवं अन्य संत अघोरी:

अघोरी संतों में बाबा किनाराम जी का प्रमुख स्थान है। अन्य अघोरी संत लगभग उन्हीं के मत के अनुयायी जान पड़ते हैं। कीनाराम जी मीतादास जी की भांति पण्डितों के मांस भक्षण-प्रवृत्ति की बहुत ही निन्दा की है।[2] उनकी दृष्टि में हाड़ चाम, मांस, रक्त आदि से निर्मित जीव को खाकर तृप्त होने वाला व्यक्ति ज्ञानी नहीं है। वेद, पुरान, कुरान आदि धर्म-ग्रंथों को पढ़ने वाला यदि हिंसक प्रवृत्ति का है तो उसे ज्ञानी या भक्त नहीं कहा जा सकता।[3]

किनाराम जी मीतादास जी की भांति शब्द-ब्रह्म को ही मान्यता

---

[1] दुज्जन संगी सो का बोले, ताते भले अकेले।
-ह०लि०ग्रंथ, मीतादास, दोहा संख्या-९८।

[2] जियत बकरिया का गहि मारा यह देखो ज्वराई।
मुरदा दुरै रसोई भीतर भेद देखो पंडिताई।।

[3] हाड़ चाम अरु रक्त मल, मज्जा को अर्थमानी।
ताहि खाय पंडित कहलावत, वह कैसे हम मानी।
पढ़े पुराण कौरान वेदमता, जीव दया नहिं जानी।
जीवनि भिन्न भाव करि मारत, पूजत भूत भवानी।

देते हैं। उनके अनुसार शब्द ही सत्य पुरुष है। वह ही सारे ब्रह्माण्ड का नियंता है।[1]

---

[1] शब्द का रूप साँचो ज्ञात पुरुष है।
शब्द का भेद कोई संत जाने।
शब्द अजर अमर अद्वितीय पुरुष।
सतगुरु शब्द सुविचार माने॥

संदर्भ ग्रंथों की सूची

हिन्दी पुस्तक

१- डा० ईश्वरी प्रसाद	:	भारतवर्ष का इतिहास
२- डा० एस०शर्मा	:	भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास
३- डा० केदारनाथ द्विवेदी	:	कबीर और कबीर पंथ
४- संत कवि चन्ददास	:	राम विनोद
५- -तदेव-	:	चन्ददास गीता
६- डा० चन्द्रबली पाण्डेय	:	कबीर का जीवन वृ
७- डा० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित	:	टीका राम विनोद
८- -तदेव-	:	टीका चन्ददास गीता
९- गोस्वामी तुलसीदास	:	रामचरितमानस
१०- -तदेव-	:	कवितावली
११- -तदेव-	:	विनय पत्रिका
१२- -तदेव-	:	दोहावली
१३- डा० धीरेन्द्र वर्मा	:	हिन्दी भाषा का इतिहास
१४- आचार्य पं० परशुराम चतुर्वेदी	:	सन्त काव्य
१५- -तदेव-	:	हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय
१६- -तदेव-	:	उत्तरी भारत की संत परम्परा
१७- -तदेव-	:	कबीर साहित्य की परख
१८- डा० प्रताप सिंह चौहान	:	कबीर साधना और साहित्य
१९- डा० पारसनाथ तिवारी	:	कबीर ग्रंथावली

२०- डा० पिताम्बरदत्त बड़थ्वाल : गोरखबानी

२१- डा० बच्चन सिंह : आलोचक और आलोचना

२२- डा० बाबूराम सक्सेना : भाषा विज्ञान

२३- डा० भोलानाथ तिवारी : भाषा विज्ञान

२४- डा० भगीरथ मिश्र : कबीर-बानी

२५- मदन साहब : सुरति-शब्द संवाद

२६- डा० माताबदल जायसवाल : कबीर की भाषा

२७- मुहम्मद मुस्तफा खाँ मद्दाह : उर्दू हिन्दी शब्दकोष

२८- डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी : टीका: कबीर ग्रंथावली

२९- -तदेव- : रस दोष-छन्द अलंकार निरूपण

३०- डा० रामकुमार वर्मा : कबीर रहस्यवाद

३१- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास

३२- -तदेव- : जायसी ग्रंथावली

३३- डा० रामसागर त्रिपाठी : वृहद् साहित्यिक निबंध

३४- डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : हिन्दी साहित्य का इतिहास

३५- डा० विजयपाल सिंह : काव्यांग प्रकाश

३६- स्वामी विवेकानन्द : राजयोग

३७- -तदेव- : कर्मयोग

३८- -तदेव- : ज्ञान योग

३९- -तदेव- : प्रेम योग

४०- -तदेव- : भक्ति योग

४१- आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : काव्यांग कौमुदी

४२- डा० शान्ती स्वरूप गुप्त : वृहद् साहित्यिक निबन्ध

४३- डा० शिवकुमार शर्मा : हिन्दी साहित्य-युग और प्रवृत्तियां

४४- डा० श्यामसुन्दर दास : कबीर ग्रंथावली

४५- डा० सरनाम सिंह शर्मा : कबीर व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त

४६- -तदैव- : कबीर एक विवेचन

४७- डा० सावित्री शुक्ल : टीका : कबीर ग्रंथावली

४८- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी : नाथ सम्प्रदाय

४९- -तदैव- : हिन्दी साहित्य का इतिहास

५०- -तदैव- : कबीर

५१- हनुमान दास : बीजक सुर हस्यम्

संस्कृत ग्रंथ

५२- गौतम बुद्ध : धम्मपद (पालि)

५३- जयदपाल गोयदंका : तत्व चिन्तामणि-संकलन

५४- पातंजली : पातांजलयोगसूत्रम

५५- भर्तृहरि : वैराग्य शतकम्

५६- मार्यशूर : जातक माला

५७- वेद व्यास : श्रीमद्भागवतगीता

५८- वेद व्यास : श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

५९- स्वात्मा-रामयोगी : हठयोग प्रदीपिका

अंग्रेजी ग्रंथ

६०- Bernard Groom : Selection from KEATs

६१- B.R.Mullik : Principles of criticism of great critics

६२- Prof. Frank D'souza : Selections from Keats

६३- George Saintsbury : A short story of English literature

६४- J.M.Mundra : A history of English literature

६५- Matthew Arnold : Essays in Criticism

६६- Dr. Raj Pati : History and Principle of literary criticism

६७- Ramji Lal : William Wordsworth and evaluation of his poetry

६८- Dr. Ram Vilash Sharma : - History and Principle of literary criticism

६९- R.A.Scott-James : The Making of the literature

७०- S.C.Mundra : Principles and History of literaiy criticism

७१- S.C.Agrawal : -do-

७२- Prof. V.H.Kulkarni : Selections from KEATS